प्रकाशक

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर, बीकानेर ३३४००३

प्रकाशन सौजन्य

श्रीयुत सायरचदजी छलाणी, दिल्ली

सस्करण

चतुर्थ	१०००	सन्	१९७६
पचम	२२००	सन्	१९८५
षष्ठम्	११००	सन्	१९९४
सप्तम	५००	सन्	२००६

मूल्य पचास रुपये मात्र

मुद्रक

कल्याणी प्रिन्टर्स

अलख सागर रोड, बीकानेर

दूरभाष २५२६८९०

प्रकाशकीय

साधुमार्गी जेन परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट—परम्परा मे षष्ठम युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व—विभूतियो मे एक उच्चकोटि की विभूति थे। अपने युग के क्रातदर्शी सत्यनिष्ठ तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन वेराग्य से ओत—प्रोत साधुत्व प्रतिभा—सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व—पर—कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नहीं अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज ग्राम नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भॉति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग मे मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उद्‌बोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा मे आबद्ध कर जन—जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन वृत्तान्तो को सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने—सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया हे। अस्तु! आज भी समग्र मानव जाति उनके उद्‌बोधन से लाभान्वित हो रही हे। इसी क्रम मे 'दिव्य दान' किरणावली का यह अक पाठकों के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक् लाभ प्राप्त करेगे।

युगद्रष्टा युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का महाप्रयाण भीनासर मे हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने और आपके कालजयी प्रवचन साहित्य को युग—युग मे जन—जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण कर्मनिष्ठ आदर्श समाजसेवी स्व सेठ चम्पालालजी बाठिया का चिरस्मरणीय, श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासो ओर समाज के उदार सहयोग से श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर की स्थापना हुई। सस्था जवाहर साहित्य को लागत

मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही है और पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व मे सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियों का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया है। बाद में सस्था की स्वर्ण जयन्ती के पावन अवसर पर श्री बालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासो से किरणावलियों की सख्या बढकार 53 कर दी गई। आज यह सैट प्राय बिक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ ने यह निर्णय किया गया कि किरणावलियो को नया रूप दिया जावे। इसके लिए सस्था के सहमत्री श्री तोलाराम बोथरा ने परिश्रम करके विषय अनुसार कई किरणावलियो को एक साथ समाहित किया और पुन सभी किरणावलियों को 32 किरणों में प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी मसा के साहित्य के प्रचार–प्रसार में जवाहर विद्यापीठ भीनासर की पहल को सार्थक और भारत तथा विश्वव्यापी बनाने मे श्री अभा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर की महती भूमिका रही। सघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी सगठन और कार्यकर्ताओं के बल पर जवाहर किरणावलियों के प्रचार–प्रसार और विक्रय प्रबन्धन में अप्रतिम योगदान प्रदान किया है। आज सघ के प्रयासों से यह जीवन निर्माणकारी साहित्य जैन–जैनेतर ही नहीं अपितु विश्व धरोहर बन चुका है। सघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ में समस्त जवाहर साहित्य प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व मे लगभग सभी किरणावलियाँ उनके सौजन्य से प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला सस्करण श्रीमती सुगनीदेवी दूगड देशनोक के सौजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 1 (दिव्य दान) के अर्थ सहयोगी श्री सायरचन्दजी छल्लाणी, दिल्ली हैं। सस्था सभी अर्थ–सहयोगियों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है।

निवेदक

चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बाठिया
मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थादला मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	वि स 1932, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948, माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976, चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976 आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000, आषाढ शुक्ला अष्टमी

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

अर्थ–सहयोगी परिचय

उदारमना गुरुभक्त सुश्रावक श्रीयुत सायरचदजी छल्लाणी

गुरुभक्त सुश्रावक श्रीयुत सायरचदजी छल्लाणी राजस्थान के नागोर जिले के आसावरी ग्राम निवासी धर्मनिष्ठ सरलमना स्वाध्याय के साधक श्रावकवर्य श्री झुमरमलजी छल्लाणी के ज्येष्ठ पुत्र हैं।

गुरुभक्ति समर्पणा सेवा के सस्कार आपको विरासत मे मिले हैं। ब्यावर (राज) मे रहकर आपने बी कॉम किया। इन्होने अपनी अथक लगन श्रमशीलता व प्रखर प्रतिभा से व्यावसायिक सोपान तय किये तो सामाजिक, धार्मिक शैक्षणिक जनकल्याणकारी क्षेत्र मे भी अपनी अमिट छाप अकित की है। सन 1978 मे आपने हस्तशिल्प के निर्यात व्यवसाय मे प्रवेश किया और अपनी विश्वसनीयता व पुरुषार्थ से विदेशो मे अतुल ख्याति अर्जित की। 25 वर्षो के अन्तराल मे 60–70 बार विदेश यात्रा कर आपने भारतीय हस्तशिल्प की विदेशो मे प्रतिष्ठा बढाई।

सन् 1985 मे कृत्रिम आभूषणो का व्यवसाय आरम्भ किया। इस क्षेत्र मे भी आपको महती ख्याति मिली। सन् 1993 व सन् 1999 मे दो बार दिल्ली राज्य से पुरस्कृत हुए और अखिल भारतीय स्तर का पुरस्कार प्राप्त करके आप Hand Crafted Jewellery क्षेत्र की अग्रिम पक्ति मे आ गये।

आचार्यप्रवर श्री नानालालजी म सा के सम्पर्क से नवीन दृष्टि का सचार हुआ जो आपके जीवन का विशिष्ट व महत्त्वपूर्ण मोड था। आपने सामायिक और स्वाध्याय की धाराओ से स्वय को आप्लावित किया। आप प्रतिदिन दो सामायिक करते हैं और आपने लघुदण्डक, जीवधडा गति–अगति गुणस्थान स्वरूप जीव–अजीव पर्याय, गम्मा, काय स्थिति, प्रतिक्रमण, भक्तामर पच्चीस बोल 67 बोल एव अनेक थोकडे कठस्थ कर लिये हैं। अनेक सूत्रो, जवाहर किरणावली जैन धर्म के मौलिक इतिहास आदि ग्रथो का स्वाध्याय किया है।

आपने अपने अर्जित धन से अशदान का नियम धारण किया है। सघ की हर प्रवृत्ति– छात्रवृत्ति जीवदया समता शिक्षा निकेतन साहित्य प्रकाशन धर्मपाल प्रवृत्ति सिरीवाल प्रवृत्ति तथ भगवान महावीर समता चिकित्सालय मे आप मुक्तहस्त से दान देते रहते हैं। आचार्य भगवन नानेश के पट्टधर

वर्तमान आचार्यश्री रामलालजी म सा के प्रति आप अत्यन्त श्रद्धानिष्ठ हैं। अपनी व्यस्ततम दिनचर्या के उपरान्त भी आप सन्त–सतियाजी म सा के दर्शन व प्रवचन श्रवण का अवसर निकाल लेते हैं। बालक–बालिकाओ युवक–युवतियो का आप आध्यात्मिक सस्कारो की ओर प्रेरित करते रहते हैं। सामायिक की नियमितता के लिये आपने श्रावको को सैकडो सामायिक उपकरण भेट किये हैं। आपने आचार्य भगवन् से मात्र 44 वर्ष मे सजोडे शीलव्रत ग्रहण किया। जैन स्तोक भाग एक से चार तक की परीक्षा भी उत्तीर्ण की है।

आपके भ्राता द्वय भी कैलाशचन्दजी छल्लाणी और श्री सुमेरचन्दजी छल्लाणी, उनकी धर्मपत्निया, बच्चे, सभी धमनिष्ठ हैं। धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पाजी प्रतिदिन नियमित सामायिक करती हैं। उदयपुर मे सम्पन्न अखिल भारतीय पदाधिकारी नवतत्त्व (जीवतत्त्व) परीक्षा मे 37 परीक्षार्थियो मे श्रीमती पुष्पाजी ने अपनी लगन और अध्ययनशीलता का परिचय देते हुए द्वितीय स्थान प्राप्त किया।

छल्लाणी परिवार ने धन को धर्म से जोडा है। पूर्ण विश्वास है कि भविष्य मे भी प्रवृत्तियो के विकास, सवर्द्धन और सातत्य मे श्रीयुत सायरचदजी छल्लाणी का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

अनुक्रम

1. प्रार्थना

श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमू सिर नामी तुम भणी।
प्रभु अन्तर्यामी आप मो पर म्हेर करीजे हो।
मेटीजे चिन्ता मन तणी, म्हार काट पुराककृत पाप।।

यहा भगवान् श्री ऋषभदेव की प्रार्थना की गई है। भगवान् ऋषभदेव इस भूतल पर कब अवतीर्ण हुए, यह अज्ञात है। इतिहास उस काल का पता नही देता क्योकि वह धीरे-धीरे भूतकाल की ओर बढ रहा है और अब तक उस अत्यन्त प्राचीन काल तक उसकी पहुच नही हुई है। फिर भी विश्वस्त धर्मशास्त्रो से भगवान् ऋषभदेव का पता चलता है। उनका अस्तित्व धार्मिकता की दृष्टि से देखा जा सकता हे, ऐतिहासिक दृष्टि से नही। फिर भी उनका अस्तित्व असदिग्ध है क्योकि साहित्य भी इतिहास का एक मुख्य अग हे और जेन साहित्य और वैदिक साहित्य दोनो-समान रूप से भगवान ऋषभदेव के अस्तित्व का समर्थन करते हैं।

भगवान् ऋषभदेव इतिहासातीत काल मे हुए हैं। उन्हे असख्य समय व्यतीत हो चुका है। फिर भी हम भगवान् ऋषभदेव का गुणगान करते हैं, उनकी स्तुति करते हैं और ऐसा अनुभव करते हैं मानो वे हमारे सामने ही विद्यमान हो।

प्रार्थना का विषय आध्यात्मिक है। इस आध्यात्मिक विचार के सामने तर्क-विर्तक का कोई मूल्य नही हे। यह विश्वास का विषय है। हृदय की वस्तु का मस्तिष्क द्वारा निरीक्षण-परीक्षण नही किया जा सकता।

यहा जो प्रार्थना की गई है उसका तत्त्व गभीर है फिर भी सक्षेप मे उसे कहता हू। प्रार्थना मे कहा गया है कि- हे नाथ! मै दोनो हाथ जोडकर और मस्तक झुकाकर समभाव से आपको प्रणाम करता हू। प्रभो! आप कहा है? आपका वह स्थान कौन-सा हे जहा मेरा विनय प्रणाम पहुच सकता है?

अध्यात्म दृष्टि से आपका स्थान अन्यत्र कहीं नहीं हे। वरन् अन्तर्यामी हें, इसलिए अन्तर्वासी हैं– आपका स्थान मेरा अन्त करण है। आप अन्तर मे वास करते हैं अतएव अन्तर की बात जानते हें।

यो तो सभी लोग स्तुति–पाठ करते हैं परन्तु वास्तव मे स्तुतिपाठ का अधिकारी वह है जो परमात्मा को अन्तर्यामी मानता है– अनुभव करता हे। परमात्मा को अन्त करण का वासी समझने वाला ही स्तुति बोलने का सच्चा अधिकारी हे।

प्रभो, तू अन्तर्यामी हे, अन्त करण मे विराजमान हे, तो एक कृपा कर! मेरे जिस अन्तर के स्वामी तुम हो उसी अन्तर मे इतनी मलीनता व्याप्त हे ऐसी–ऐसी पाप–वासनाए घुसी हुई हें कि जिन्हे प्रकट करने मे भी में लज्जित होता हू। पाप की यह मलीन वासनाए मेरे लिए कितनी दु खदायी होगी यह बात मेरे सिवाय और कौन जान सकता हे ? तू ही मेरे अन्त करण मे रहता है, इसलिए तेरे सिवाय वहा का हाल जानने वाला और कौन हे ? हे मेरे देवता! मेरी एकमात्र यही आकाक्षा हे कि मेरे अन्त करण को उन मलीनस वासनाओ से मुक्त कर दे।

मैंने एक ओर भगवान को अन्तर्यामी कहा है और दूसरी ओर अन्त करण की मलीनता का विनाश करने की प्रार्थना की है। इसमे यह विरोध न समझा जाये कि जिसका अन्तर्यामी स्वय भगवान् है, उसके अन्त करण मे मलीनता कैसी? वहा दु खो को अवकाश कहा है ?

प्रभो! यदि तू अन्तर्यामी न होता और मैं तुझे अन्तर्यामी न समझता तो तुझे मेरे आन्तरिक दु ख का ज्ञान ही कैसे होता ! वास्तविकता यह है कि तुझे अन्तर्यामी समझने से ही मुझे अपनी मलीनता का आभास हुआ ओर दु खो की प्रतीति हुई है। साथ ही विचार भी आया कि तू ही अन्तर्यामी है और तू ही दु खो का अन्त करने वाला भी है।

जिस घर मे दीपक का प्रकाश नहीं होता अधकार मे उस घर की वस्तुओ का पता नही चलता। उस समय चोर, साप गड्ढा या अन्य कोई विपत्ति का साधन भी दृष्टिगोचर नही होता। इसी प्रकार जब तक मेंने तुझे अन्तर्यामी नहीं समझा था– अपने अन्त करण मे तेरी अखड सत्ता का अनुभव नहीं किया था तब तक यह पता भी न था कि मेरे अन्त करण मे क्या–क्या भरा पडा हे! जिस प्रकार दीपक के प्रज्वलित होने पर घर मे की समस्त वस्तुए दीख पडने लगती हैं–साप बिच्छू, चोर गड्ढा आदि विपत्तिया नजर आने लगती हे उसी प्रकार जब तेरी सत्ता का अन्त करण मे आभास होते ही प्रकाश फेला तो उस प्रकाश मे मेंने देखा कि मेरे अन्त करण मे क्या–क्या भरा

है। जब तेरे प्रकाश मे अपने हृदय का हाल जाना और उसे दु खो से परिपूर्ण पाया तो चिन्ता हुई और सोचने लगा– अब मैं क्या करू ? कहा जाऊ ? किस विधि से अन्त करण की शुद्धि करू? इस प्रकार व्यग्र होकर अपनी अशक्ति को भलीभाति समझकर मे उसके चरण–शरण मे आया जिसने मुझे प्रकाश प्रदान किया हे। जो स्वय आलोक का पुज है वही अन्य को प्रकाश दे सकता है और वही दु खो के अन्धकार से उबारने मे समर्थ हो सकता हे।

मित्रो! अन्त करण मे भी एक प्रकार का अन्धकार होता हे। ज्ञानीजन उस अन्धकार को अज्ञान कहते हैं। जैन परिभाषा मे उसे मिथ्यात्व कहते है। जहा मिथ्यात्व है वहा अज्ञान है। जहा अज्ञान है वहा मिथ्यात्व है। अज्ञान और मिथ्यात्व रूप और रस की तरह सहचर हैं। एक के विना दूसरे की सत्ता नही रहती। मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यात्व का उदय हे ओर ज्ञानावरण कर्मज्ञान से अज्ञान उत्पन्न होता है। किन्तु ज्ञानावरण कर्म का उदय आच्छादन कर सकता है। उसमे ज्ञान को कुज्ञान बनाने का सामर्थ्य नही है। मोहनीय कर्म ही ज्ञान मे मिथ्यारूपता उत्पन्न करता है मिथ्यात्व का ससर्ग पाकर ज्ञान भी मिथ्या बन जाता है।

प्रभो! जब तक मैं मिथ्यात्व के अन्धकार मे निमग्न था, तब तक तो मुझे यह पता ही न था कि मेरे अन्त करण मे क्या–क्या भरा है! उस समय निश्चित होकर बिना किसी प्रकार के खटके के, मनमाना व्यवहार करता था। उस समय बुद्धि मे विपरीतता आ गई थी। जो शत्रु है, वे मुझे मित्र जान पडते थे। हित अहित दिखाई पडता था। जैसे अबोध बालक साप को खिलौना समझ कर उसे हाथ मे लेकर गले मे डाल लेता है उसी प्रकार मैं भी आत्मा के शत्रुओ को बडे स्नेह के साथ गले से लगाये हुए था और उसी मे आनन्द का अनुभव करता था। बुद्धि की विपरीतता ने बुरे कार्यों मे अच्छाई की प्रतीति कराई थी अतएव बुरे कार्यो को ही भला मान बैठा था।

किन्तु जिस दिन से तू अन्तर्यामी हुआ– मैंने तुझे अन्तर्यामी माना उसी दिन से अन्त करण मे ज्ञान रूपी दिव्य दीपक की ज्योति प्रकट हुई। उसी ज्ञान रूपी दीपक की ज्योति के प्रकाश मे मैंने अपने अन्त करण की ओर दृष्टि डाली तो उसमे भयावनी आपत्ति दीख पडी । अब उस आपत्ति से मुक्त होने के लिए विकल हूँ। अतएव प्रभो! मेरी प्रार्थना है कि मुझे उस विपदा से बचाओ।

मनुष्य को जब तक सम्यग्ज्ञान नही होता, तब तक वह साधु के स्थान पर भी धन–धान्य पुत्र आदि सासारिक पदार्थो के निमित्त से होने वाले दु खो

से छुटकारा पाने के लिए साधु के पास आता है लेकिन यह दु ख तो घर पर भी दूर हो सकते है। फिर साधु के स्थान पर आने की क्या आवश्यकता है ?

आप लोग जब तक यहा नही आये थे तब तक की बात दूसरी है। लेकिन जब यहा आ गये हैं तो मुझ पर भी उत्तरदायित्व आ गया है। यदि मैं परमात्मा का स्मरण करके अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करू तो मुझ पर जितना उत्तरदायित्व अपने आत्मा का है उतना ही श्रोताओ के आत्मा का भी है। जैसे मै अपनी आत्मा की शाति के लिये प्रयत्नशील हू, उसी प्रकार श्रोताओ को मैं शाति तभी प्रदान कर सकता हू जब मेरे अन्तरात्मा मे शाति विद्यमान होगी। जो मेरे पास नहीं है, वह में दूसरो को कहा से दे सकता हू ?

सौ– पचास आदमियो की रसोई बनाने वाली बाई रसोई चख कर इस बात का निर्णय कर लेती है कि यह रसोई मुझको अच्छी– स्वादिष्ट लगी है तो दूसरे जीमने वालो को भी अच्छी लगेगी। यही बात यहा भी है। वक्ता के अपने व्याख्यान का विषय यदि स्वय वक्ता के हितकारक है तो श्रोताओ का भी उससे हितसाधन ही होगा क्योकि वक्ता और श्रोता की आत्मा समान है और उन आत्माओ को लगे हुए विकार भी समान हैं।

प्रभो! ज्योहि तेरा स्वर्गीय प्रकाश मेरे अन्त करण मे प्रकाशित हुआ त्योहि मेरे अन्त करण का सशोधन होने लगा।

मैं केहि कहौं विपत अति भारी श्री रघुवीर दीन हितकारी।
मम हृदै भवन प्रभु! तोरा तह आन बसे बहु चोरा।।
अति कठिन करहि बल जोरा, माने नहि विनय–निहोरा।
तम लोभ मोह अहकारा, मद क्रोध बोध–रिपु मारा!
अति करहि उपद्रव नाथा ,मर्दहि मोहि जान अनाथा।।
मै एक, अमित बटमारा, कोउ सुनइ न मोर पुकारा।
भागे नहि नाथ! उबारा रघुनायक! करहु सभारा।।
कहे तुलसीदास सुन रामा, लूटे तस्कर तव धामा।
चिन्ता मोहि एहि अपारा अपयश नहि होय तुम्हारा।।

इस प्रार्थना मे और पहले की हुई भगवान ऋषभदेव की प्रार्थना म कोई अन्तर नही हैं। दोनो की भाषा भिन्न है भाव एक है। इसके अतिरिक्त भगवान् ऋषभदेव जिस सूर्यवश मे उत्पन्न हुए थे उसी सूर्यवश मे राम भी उत्पन्न हुए थे एव राम भी उसी तत्व तक पहुचे हैं जिस परम तत्त्व तक भगवान् ऋषभदेव पहुचे हैं। 'रमन्ते योगिना यत्रेति राम अर्थात जिस तत्त्व मे योगीजन रमण करते ह वह 'राम' हैं हम राम के रूप को मानते ह।

इस पार्थना मे बतलाया गया है कि – हे प्रभो! मने आपको अपना अन्तर्यामी स्वीकार किया है, तब आपसे क्या कहू ? मेरे ऊपर जो विपत्ति है वह कही नही जा सकती। इस विपदा की दशा मे तेरे सिवाय और कौन सहायक हो सकता है? जिस अन्त करण का तू स्वामी है अन्तर्यामी है उसी अन्त करण मे दु ख रूपी सागर मे डुबाने वाले बडे–बडे चोर – डाकू घुसे बैठे है। मै उनसे निहोरे करता हू– विनय करता हू– उनके सामने गिडगिडाता हू, पर वे परवाह नही करते। उल्टे जोर दिखाकर मुझे अधिक घबराहट मे डालते हैं। मैंने तेरा प्रकाश मिलने से अपने अन्त करण को अपूर्ण ज्ञान से देखा तो मुझे अपने अत करण मे भयकर विपत्तिया दृष्टिगोचर हुई।

प्रभो! मेरे अन्त करण मे तुम्हारा वास हुआ इसी से उसमे प्रकाश की आभा चमकी है। उस प्रकाश की आभा मे देखता हू तो प्रतीत होता है कि अभी मेरे अन्त करण मे अज्ञान विद्यमान है। अज्ञान के अस्तित्व ने लोभ और मोह को जन्म दिया है। इन दोनो ने अहकार का सर्जन किया। फिर क्रोध और लाभ रिपु आये जिन्होने सम्यग्ज्ञान का विनाश कर दिया है। इन सबके अतिरिक्त जन्म–मरण की चक्की मे पीसने वाला काम भी वहा विद्यमान है। इस प्रकार यह चोर बहुतेरे है और मै अकेला हू। मे आर्तनाद करता हू पर वे उस पर कान नही देते – मेरी पुकार उनके कानो तक भी नही पहुचती। वे मुझे दबाये चले जाते है। इस गाढे मोके पर तुम्हारे अतिरिक्त अन्य सहायक नही है। मुझे यह सोचकर अधिक पीडा होती हे कि तुम जिस स्थान के अन्तर्यामी हो, उसी स्थान को यह लूट रहे है। इससे कही तुम्हारा अपयश न हो जाये।

आप लोग लोक–व्यवहार की बात जानते है कि मुनीम अपने सेठ की दुकान का अपमान होते देखता है, तो उस समय अपने प्राण निछावर करने को उद्यत हो जाता है।

क्या मुनीम ऐसे समय मे, जब कि सेठ की दुकान के अपमान का मौका हो, मजा–मोज करने के लिए अन्यत्र चला जा सकता है ? नही अगर कोई मुनीम चला जाये तो उसे क्या कहा जायेगा ? नमकहराम।

कोई सेनिक युद्ध के समय अपने प्राणो के लोभ से, कायरता धारण करके किसी बहाने से युद्धभूमि से हटना चाहे तो क्या वह सैनिक क्षत्रिय–धर्म का रक्षक कहा जा सकता है ?–कदापि नही।

भगवती सूत्र मे वर्णन आया हे कि वर्णनाग नतुवा श्रावक बेले–बेले पारणा करता था अर्थात दो दिन उपवास किया करता और एक दिन भोजन करता था। वह श्रावक बडा तपोवीर और धर्म को जानने वाला था। एक बार

उसके स्वामी पर सकट आ पडा। स्वामी ने उसे आदेश दिया कि युद्ध करने जाओ। वह बिना किसी आना–कानी के तत्काल युद्ध मे जाने के लिए तेयार हो गया। उसने यह नहीं कहा– मैं तपस्वी हू। लडाई के लिए कैसे जा सकता हू ? वर्णनाग नतुवा ऐसा कहता तो उसका समर्थन करने वाले भी अनेक मिल जाते। {श्रोताओ को लक्ष्य करके} अगर आप लोग उस समय वहा होते तो शायद युद्ध का आदेश देने वाले महाराज चेडा {चिटक} को कहते कि राजा कैसा दुष्ट है–कितना अविवेकी है, जो एक तपस्वी को रणभूमि मे लडाई करने भेज रहा है! भला तपस्वी को लडाई से क्या वास्ता है! पर वहा वर्णनाग नतुआ था धर्म का मर्म समझने वाला। उसने ऐसा कहकर टाल देने का प्रयत्न नही किया। उसने यह नहीं कहा कि मैं तो घर और ससार के प्रति अपना ममत्व न्यून से न्यूनतर कर रहा हू, मुझे लडाई से क्या लेना–देना है।

जैन धर्म का उपदेश कितना महान है। आदर्श कितना उच्च है! पर क्या हो रहा है? यह धर्म –वीरता का उपदेश देने वाला है। प्राचीन पुरुषो की अनेकानेक कथाए, उनकी वीरता और प्रचण्ड पराक्रमशीलता की प्रतीक है, किन्तु वर्तमान मे इस महान् धर्म के अनुयायियो मे कायरता का प्रवेश हो रहा है।

भगवान् ने वर्णनाग नतुवा का वर्णन करते हुए गौतम स्वामी से कहा– युद्ध का आमन्त्रण पाकर वर्णनाग नतुआ के ललाट पर एक भी सिकुडन न आई। वह हमेशा बेला किया करता था, पर युद्ध मे जाते समय उसने तेला किया । वह तेला करके रथ मे बैठा और अपने स्वामी की सेवा के लिए तथा अधर्म से बचने के लिए समरभूमि की ओर चल दिया जिससे किसी को यह कहने का साहस न हो सके कि राज्य और राष्ट्र की रक्षा करने के लिए धर्मीपन त्यागना चाहिए। अर्थात् राज्य–रक्षा और धर्म –रक्षा मे सर्वथा विरोध नही है, कोई यह न कहने लगे कि हम धर्म की आराधना करने मे असमर्थ हैं, क्योकि हमारे ऊपर राज्य की रक्षा करने का उत्तरदायित्व हे। वर्णनाग नतुवा ने अपने व्यवहार से दोनो कर्त्तव्यो का समन्वय साधा ओर यह भी सिद्ध कर दिया कि धर्मात्मा पुरुष अवसर आने पर अपने स्वामी को कभी धोखा नही दे सकता। वह बिना किसी हिचकिचाहट के कर्त्तव्यभावना से प्रेरित होकर युद्ध के लिए चल दिया।

यह तो लौकिक युद्ध की बात है। लोकोत्तर युद्ध मे ऐसे–ऐसे वीर साधु और श्रावक हुए हैं कि कहा भी नही जा सकता। अनेक साधुओ और श्रावको ने लोकात्तर युद्ध मे जो शूरता का प्रदर्शन किया है उसे देख कर चकित रह जाना पडता हे। कामदेव श्रावक के सामने सात–आठ ताड जितने

लम्बे पिशाच का रोद रूप धारण करके एक देव आया। वह कामदेव से कहने लगा– मै जानता हू तू महावीर का अनुयायी है। तुझे नियम भग करना नही कल्पता है फिर भी यदि तू अपने नियम का त्याग न करेगा तो मैं अपनी इस तीखी तलवार से तेरे टुकडे–टुकडे कर डालूगा।

पिशाच द्वारा इस प्रकार भय बताये जाने पर भी कामदेव सुमेरु की भाति अटल रहा। कामदेव ने सोचा– 'तलवार से टुकडे–टुकडे हो जाना अच्छा है लेकिन मे अपने आचरण से भगवान् महावीर का जरा भी अपयश न होने दू। उसे मन मे यह निश्चय हो गया था जो चीज टुकडे–टुकडे हो सकती है वह मै नही हू जिसे तलवार टुकडे–टुकडे करना तो दूर स्पर्श भी नहीं कर सकती। " नैन छिन्दन्ति शस्त्राणि " अर्थात् आत्मा को शस्त्र छेद नही सकते सिर्फ शरीर को छेद सकते हैं। मे चिदानन्दमय आत्मा हू, मै शरीर नहीं हू।

इस प्रकार दृढता–पूर्ण विचार करने से ही समवशरण मे भगवान् ने कहा था– कामदेव को देखो वह केसा दृढ श्रावक हे। इस प्रकार समवशरण मे कामदेव की धार्मिक दृढता की प्रशसा करते हुए भगवान् ने निर्ग्रंथ श्रमणो को जो कुछ सूचित किया था शास्त्र मे उसका उल्लेख विद्यमान है।

यह भगवान महावीर के छोटे पुत्र– श्रावक की बात हुई। भगवान् के ज्येष्ठ पुत्र–निर्ग्रथ मुनि– ने भगवान् का यश किस प्रकार कायम रखा, यह जानने के लिये गजसुकुमार मुनि का उदाहरण मौजूद हे। श्री गजसुकुमार के उदाहरण से यह विचार करना चाहिये कि धर्म की रक्षा के लिये हमे क्या करना चाहिये ?

गजसुकुमार मुनि भगवान् के बडे पुत्रो मे से है। उनके लोकोत्तर चरित ने उनके नाम मे ऐसी पावनी शक्ति भर दी है कि उनके नाम का उच्चारण करने से ही हृदय पवित्र हो जाता हे। ध्यान–मग्न गजसुकुमार के सिर पर पाल बाध कर सोमल ब्राह्मण ने धधकते हुए लाल–लाल अगारे रखे। ऐसी घोरतम यातना के समय भी गजसुकुमार ने भगवान के यश का पूर्ण रूप से सरक्षण किया। वे एक दृष्टि सोमल की ओर डाल देते, तो सोमल वहा ठहर ही नही सकता था। यही नही सभव हे वह भयभीत हो कर अपने प्राण आप ही गवा बैठता। पर नहीं गजसुकुमार मुनि ने और ही कुछ सोचा। उनका ध्यान अत्यन्त उच्चश्रेणी पर जा पहुचा था। जिस शरीर को यह रोमाच–कारिणी यातना पहुचाई जा रही थी उस शरीर से उन्होने मानो अपना समस्त सम्बन्ध त्याग दिया था।

यदि गजसुकुमार मुनि सोमल से पूछते कि मैंने तेरा क्या अपराध किया है जिससे तू मेरे सिर पर पाल बाध कर अगार रखना चाहता है तो दुरात्मा सोमल, क्या मुनि का कोई अपराध बता सकता था?

'नहीं'

सोमल की कन्या के साथ विवाह करना या न करना उनकी अपनी मर्जी की बात थी। लेकिन मुनिराज गजसुकुमार ने ससार के दावे या फरियाद का विचार नही किया।

यदि आपको कही शीघ्र पहुचना है, शीघ्र पहुचने से किसी विशेष लाभ की आशा है, पर शीघ्र पहुचने का कोई साधन नही मिल रहा है। इसी समय कोई पुरुष मोटरकार लेकर आपके पास आता है और आपको अपने गन्तव्य स्थान पर पहुचा देता है। उस अवस्था मे आपको हर्ष होगा या शोक?

हर्ष।

उस समय आपके अत करण मे मोटरकार लाने वाले पुरुष के प्रति कृतज्ञता का भाव उदित होगा। आप उसे परमोपकारी मानेगे।

जिस प्रकार अचानक मोटर मे बैठकर लक्ष्य स्थान पर शीघ्र पहुच जाने के कारण आपको प्रसन्नता का अनुभव हो सकता है उसी प्रकार की प्रसन्नता गजसुकुमार मुनि को उस समय हुई थी। गजसुकुमार मुनि की आन्तरिक अभिलाषा थी कि मैं सदा के लिये शरीर से मुक्त होकर सिद्धिलाभ करू। पर शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करने का कोई साधन न था। इतने मे अचानक सोमल ब्राह्मण आ पहुचा और उसने उनके सिर पर अगारे रख दिये। इस साधना के द्वारा गजसुकुमार मुनि की अभिलाषा पूर्ण हुई। उन्होने शीघ्र ही सिद्धिलाभ किया । इसी कारण गजसुकुमार मुनि ने सोमल को अपना उपकारक मित्र माना। यद्यपि सोमल ने जैसा दुष्कर्म किया था वेसा कोई अबोध बालक या हत्यारा भी नही कर सकता क्योकि उसकी भावना मुनि को घोर कष्ट पहुचाने की थी– उन्हे मोक्ष मे पहुचाने की नही थी। जिन गजसुकुमार मुनि की मुद्रा निर्वेर थी– जिनके रोम–रोम से साम्यभाव के स्रोत बहते थे उनके सिर पर अगारे रखने का कोन साहस कर सकता था! किन्तु गजसुकुमार मुनि जिस प्रकार लोकोत्तर साम्यभावी थे सोमल उसी प्रकार लोकोत्तर कसाई – हत्यारा था। फिर भी गजसुकुमार मुनि ने उसे वीर कह कर अपना मित्र माना।

ऐसी कोई परिस्थिति उपस्थित होने पर आप कहेगे– 'कर्म की गति हे।' लेकिन गजसुकुमार मुनि कहते हें – धर्म की गति हे।

अगर कोई दरिद्र दामाद अपने ससुराल जाए और उसे एक अच्छी सुन्दर और कीमती पगडी मिल जाए तो उसे कितनी खुशी होगी ?

'खूब।

गजसुकुमार मुनि को भी वेसी ही खुशी है। वे कहते हे– यह अग्नि जलाने वाली नही है किन्तु मेरे आत्मा को प्रकाशित करने वाली सिद्ध ज्योति है। अगर वह जलाने वाली भी है तो मुझे नही वरन् अनादिकाल से आत्मा के साथ चिपटे हुए कर्मो को भस्म करने वाली हे।

भावना के अनुसार सिद्धि प्राप्त होती है। जिसकी जेसी भावना होती है उसे वैसी ही सिद्धि मिलती है। मुनि गजसुकुमार यदि निर्णय कराने जाते तो उन्हे वह फल न मिलता जो फल निर्णय न कराने से मिला। अगर गजसुकुमार मुनि निर्णय कराने बैठते तो फिर भगवान् नेमिनाथ किसके वल पर गर्जते ? भगवान का यश कैसे रहता ?

आज श्रीकृष्ण महाराज अपने महल से निकल कर नये मुनिराज के दर्शन करने की अभिलाषा से चले। समस्त यदुवशियो के मन उन्हे देखने के लिए लालायित हो रहे थे। हृदय मे उत्सुकता थी ओर आखे उनके रूप का पान करने के लिये व्याकुल हो रही थी। सभी को बडी भारी उमग थी। इस प्रकार उत्सुकता और उमग से भरे हुए श्रीकृष्ण देवकी और अन्यान्य समस्त यदुवशी लोग भगवान नेमिनाथ की सेवा मे उपस्थित हुए। सब ने उत्सुकता भरे नेत्र इधर–उधर चारो ओर दोडाए पर गजसुकुमार मुनि के दर्शन नही हो रहे है। वे महात्मा कहा हैं? भगवान् नेमिनाथ ने गम्भीर वाणी से कहा – उन्होने अपना अर्थ सिद्ध कर लिया है।

श्रीकृष्ण महाराज– एक ही रात मे उन्होने अर्थ–लाभ कर लिया! यह तो बडे आश्चर्य की बात है। प्रभो! इतनी जल्दी अर्थ – सिद्धि कैसे हो गई?

भगवान नेमिनाथ– उन्हे सहायता मिल गई थी।

श्रीकृष्ण भगवान्– केसी सहायता?

भगवान–जैसी सहायता तुमने उस बूढे आदमी को पहुचाई थी वैसी ही सहायता गजसुकुमार मुनि को देने वाला एक पुरुष उन्हे मिल गया।

यहा यह आशका की जा सकती है कि मुनि का घात करने वाले अत्यन्त क्रूरकर्मा सोमल ब्राह्मण को भगवान् ने गजसुकुमार मुनि का सहायक क्यो कहा है। क्या उसने मुनि पर दया की थी ? क्या वह मुनिराज का हितैषी था! नही तो भगवान् नेमिनाथ ने उसे सहायक किस उद्देश्य से कहा है।

या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी।

साधारण जनता के लिए जो घोर अधकार से भरी रात हे वही ज्ञानियो के लिये चमकता हुआ दिवस है।

मुनिहन्ता और क्रूरकर्मा सोमल को भगवान ने गजसुकुमार मुनि का सहायक क्यो बतलाया। उसे उपकारी किसलिये कहा है ? यह रहस्य स्याद्वाद अथवा अनेकान्तवाद को समझे बिना नहीं समझा जा सकता।

प्रत्येक पदार्थ अनन्त शक्तियो का पिड हे। उन समस्त शक्तियो के दो वर्ग किये जा सकते हैं– घातक शक्ति ओर रक्षक–शक्ति! मगर इन शक्तियो के देखने मे दृष्टि–भेद होता है। अज्ञानी लोग जिस शक्ति को घातक–शक्ति मानते हैं उसी को ज्ञानी–जन रक्षक–शक्ति मानते हैं। भगवान नेमिनाथ ने इसी के अनुसार सोमल ब्राह्मण को गजसुकुमार मुनि का घातक नही वरन् सहायक माना।

सच्चा ज्ञान वह है जो अपना दावा आप ही चुकाता हे– दूसरो पर नही डालता है। जो अज्ञानी हे वही अपनी बात दूसरो पर डालता है। इस दृष्टि–भेद के कारण सोमल सहायक कहलाया। सोमल अपनी मलीन और क्रूर भावना के कारण मुनि–घातक है, फिर भी गजसुकुमार मुनि की अपेक्षा से उसे सहायक कहा गया है।

मित्रो! नेमिनाथ भगवान् की लाज गजसुकुमार मुनि ने अपनी अलौकिक क्षमा–भाव के द्वारा रखी। क्या आप धर्म की लाज न रखेगे? अगर आप क्षमा द्वारा धर्म की लाज रखेगे तो धर्म आपकी रक्षा करेगा–आपका कल्याण होगा। अतएव परम पावन परमात्मा के प्रति प्रणत भाव से यही प्रार्थना करो कि–प्रभो! वस्तुत हमारा अहित करने वाला अन्य कोई नही है। अहित करने वाला हमारे अन्त करण मे ही विद्यमान है। अगर अहितकर्ता अन्त करण मे न होता तो अन्त करण मे ही क्लेश का प्रादुर्भाव क्यो होता ? जहा बीज बोया जाता है वही अकुर उगता है। अतएव अपने क्लेशो का कारण अपनी आत्मा ही है। इस प्रकार बहिर्दृष्टि त्याग कर अन्तर्दृष्टि से देखोगे तो तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा। तुम किसी भी घटना के लिये दूसरे को उत्तरदायी ठहराओगे तो राग–द्वेष होना अनिवार्य है अतएव उसके लिए अपने आप उत्तरदायी बनो। उसे अपने ही कर्मो का फल समझो। इस प्रकार तुम निष्पाप बनोगे– तुम्हारा अन्त करण समता की सुधा से आप्लावित रहेगा। कल्याण का यही मार्ग है।

महावीर भवन देहली– 4–5–31

2. पवित्र –प्रेरणा

आज म्हारा सभव जिनजी रा, हित–चित सू गुण गास्या।
मधुर–मधुर स्वर राग अलापी गहरा शब्द गुजास्या ।।

एक मैं स्तुति बोलता हू और एक छोटा बालक बोलता हे लेकिन दोनो के स्तुति बोलने मे क्या अन्तर है इस पर ध्यान दो स्तुति का नाम प्रार्थना है। स्तुति के द्वारा कवि ने प्रार्थना के भाव प्रकट किये हें। ईश्वर की प्रार्थना के लिए हृदय मे जो भावना उद्भूत हुई, उसे व्यक्त करने के लिए कवि ने स्तुति का रूप दे दिया है। इस प्रकार एक कवि ने इस स्तुति का शाब्दिक रूप प्रदान किया है पर इसे दूसरे की ही न समझिए। आप यह देखिये कि इस स्तुति मे प्रकट किये गये भावो के साथ अपनी आत्मा का कितना सम्बन्ध है? शब्द स्तुति का शरीर है और भाव उसकी आत्मा है। अतएव स्तुति की आत्मा के साथ अपनी आत्मा का सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। सोना किसी का हो ओर कही से आया हो यदि वह कसोटी पर ठीक उतरता है तो उसे शुद्ध एव ग्राह्य माना जाता है। इसी प्रकार स्तुति किसी की भी बनाई क्यो न हो यदि उसके भाव आत्मा की कसोटी पर खरे उतरते है तो उसे स्वीकार करना चाहिए।

अज्ञानी पुरुष बुरी वस्तु को शीघ्र ही अपना लेते हैं और अच्छी वस्तु को ठुकरा देते हैं। ज्ञानी– जन ऐसा नही करते। वे चाहे किसी की बनाई हुई प्रार्थना हो ओर चाहे किसी भी भाषा मे हो उसे आत्मा की कसौटी पर ठीक उतरने से ग्रहण कर लेते हैं। वे अगर साधु हैं तो यह नही सोचते कि इस स्तुति को एक गृहस्थ ने शब्द–बद्ध किया है तो हम साधु होकर इसे कैसे ग्रहण करे? अगर वे गृहस्थ हें तो यह नही सोचते कि साधु द्वारा निर्मित स्तुति का पाठ हम क्यो करे? अतएव वह स्तुति नि सन्देह ग्राह्य है जो आत्महित–साधन रूप है।

मैने अभी जो स्तुति पढी हे इसके रचयिता विनयचन्द जी गृहस्थ थे। लेकिन इस स्तुति मे मुझे इतने आनन्द की अनुभूति होती है कि छोडने को जी नही चाहता। कष्ट के समय भी विनयचन्दजी की स्तुति से मुझे शाति प्राप्त होती है। यही कारण हे कि में यह स्तुतिया बारम्बार बोलता रहता हू। विनयचन्दजी की यह चोबीस स्तुतिया मेरे लिए अध्यात्म–शास्त्र के चोबीस अध्यायो के समान हो रही हैं।

आज मैंने सभवनाथ भगवान की प्रार्थना की हे। कवि ने इस स्तुति मे कहा है–

आज म्हारा सभव जिनजी रा,
हित–चित सू गुण गास्या हो राज।
मधुर–मधुर सुर राग अलापी
गहरा शब्द गुजास्या हो राज।। आज।।
मन वच काय लाय प्रभु सेती,
निशदिन सास उसास्या हो राज। आज ।।

इस स्तुति मे 'आज मेरे सभवनाथ' कह कर यह कहा हे कि में उसके गुण गाऊगा। अर्थात् आज मैं अपने सभवनाथ के गुण गाऊगा, दूसरे के सभवनाथ के गुण नही गाऊगा। अभी मैंने कहा है कि स्तुति मे मेरे–तेरे का भेदभाव नहीं रखना चाहिए। पर इस स्तुति मे तेरे–मेरे का भेदभाव रह गया है, इसका समाधान क्या है? साथ ही एक प्रश्न ओर उत्पन्न होता है कि इस स्तुति वाले सभवनाथ अगर 'मेरे' हैं तो दूसरे के सभवनाथ कौन–से हें? कवि कहता है– आज गुण गाऊगा। सो 'आज मे क्या विशेषता है? आज कहने का रहस्य क्या है?

जब तक इन सब प्रश्नो का समाधान न हो जाये, तब तक स्तुति का मर्म नही समझा जा सकता और मर्म समझे बिना उसके प्रति प्रेम– आकर्षण नही हो सकता । बिना प्रेम के, ऊपरी भाव से गाई जाने वाली स्तुति से कदाचित् सगीत का लाभ हो सकता है, पर आध्यात्मिक लाभ नहीं हो सकता। स्तुति तन्मयता के बिना तोता का पाठ है।

स्तुति मे 'म्हारा' (मेरा) कहा है तो पता लगाना चाहिए कि वास्तव मे 'म्हारा कोन है? अगर हम 'मैं या 'मेरा' का पता पा जाए तो अनायास ही यह समझ लेगे कि सभवनाथ को 'मेरा क्यो कहा है?

आप मे 'अपने' को कोई जब तलक पाता नहीं।
तब तलक वह मोक्ष की हर्गिज कदम धरता नही।।

आप लोग मे का अर्थ करते है-

ये मम देश विलायत है अरु

ये मम बाधव ये मम नाती।

यह मेरा देश है यह मेरा घर हे यह मेरा पुत्र है बस इसी मे आपका 'मैं समाप्त हो जाता है। लेकिन विचार करो कि जिसे आप अपना कहते ह वह आपका है भी या नही ? आप तो सारे देश को ही अपना कह रहे हे पर सरकार ने आपका एक झोपडा भी अपना रहने दिया हे? आप तो चाहते हे हम गृह-कर न दे लेकिन आप ऐसा करेगे तो क्या सरकार आपको गृह मे रहने देगी? वह निकाल बाहर न करेगी? फिर घर आपका केसे हुआ? वास्तव मे घर न तुम्हारा है न सरकार का हे। वह तो ईट चूना पत्थर आदि का बना हुआ है। वह तुम्हारा केसे हो सकता है?

इस प्रकार जब आप अपने आपको ही नही पहचान सकते तो ओरो को क्या पहचानोगे?

लोग बडे अभिमान के साथ कहते हे- यह मेरे हाथी हैं। यह मेरे घोडे हैं। यह मेरी मोटर है। लेकिन क्या वास्तव मे ही हाथी, घोडे और मोटर तुम्हारी है ? जिसकी वह मोटर कही जाती है, वह उसी पर चढ जाती है, फिर भी मोटर उसकी है? सत्य तो यह है कि हाथी, घोडे आदि कोई भी पदार्थ तुम्हारा नही है।

जो तुम्हारा है वह तुमसे विलग नही हो सकता । जो वस्तु तुमसे विलग हो जाती या हो सकती है वह तुम्हारी नही हे। पर – पदार्थो के साथ आत्मीयता का भाव स्थापित करना महान् भ्रम है। इसी भ्रमपूर्ण आत्मीयता के कारण जगत् अनेक कष्टो से पीडित है। अगर 'मैं और 'मेरी की मिथ्या धारणा मिट जाये तो जीवन मे एक प्रकार की अलौकिक लघुता निरुपम निस्पृहता और दिव्य शाति का उदय होगा।

हाथी घोडा महल मकान आदि आपके नही हैं यह बात अनाथी मुनि और महाराज श्रेणिक के सवाद से भली-भाति समझी जा सकती है।

एक बार मगध का अधिपति श्रेणिक मडिकुक्ष नामक उद्यान मे विहार करने के लिए आया। सयोगवश अनाथी मुनि भी उसी उद्यान मे विराजमान थे। राजा श्रेणिक की मुनि पर दृष्टि पडते ही वह उनकी ओर इस प्रकार आकर्षित हो गया जेसे चुम्बक से लोहा आकर्षित रहता है। मुनि का दिव्य-रूप और उनके मुख पर विराजमान तेज देखकर वह चकित रह गया। रूप बनावटी है या वास्तविक है यह तो मुखाकृति देखते ही पता चल जाता

है। बनावटी रूप छिपा नही रहता । मुनि के मुख पर जो तेज और रूप था वह आन्तरिक तेज का प्रतिबिम्ब था। उसे देखकर राजा को आश्चर्य हुआ। वह मन–ही मन सोचने लगा– यह मुनि कैसे रूपवान हैं! रूप का इतना धनी तो मैने आज तक किसी को नही देखा।' यहा यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रेणिक स्वय अत्यन्त सुन्दर था। उसकी सुन्दरता के विषय मे प्रसिद्ध है कि एक बार वह वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर जब भगवान् महावीर के समवशरण मे गया था, तब उसका रूप–लावण्य देखकर कई साध्विया भी मुग्ध हो गई थीं और उन्होने ऐसे सुन्दर पुरुष की प्राप्ति का निदान किया था। इतने अधिक सौन्दर्य से सम्पन्न श्रेणिक भी मुनिराज का रूप देखकर चकित रह गया इससे मुनिराज की रूप–सपत्ति का अनुमान किया जा सकता है।

अन्तत राजा श्रेणिक मुनिराज के समीप गया। वह उनके बाह्य एव आन्तरिक गुणो का आकलन कर चुका था अतएव उसने मुनिराज के चरणो मे प्रणाम किया। उनकी प्रदक्षिणा की और न मुनिराज से अधिक दूर न अधिक पास यथोचित स्थान पर बैठ गया। तत्पश्चात् अत्यन्त नम्रतापूर्वक राजा ने कहा 'प्रभो! आज्ञा हो तो मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हू।' मुनिराज की स्वीकृति प्राप्त करके उसने कहा 'महाराज, मैं यह जानना चाहता हू कि आपने भर जवानी मे दीक्षा क्यो धारण की है ? इस उम्र मे तो भोगोपभोग भोगने मे रुचि होती है फिर आप विरक्त होकर चारित्र का पालन करने के लिए क्यो निकल पडे हैं? ससार के भोग भोगने योग्य इस अवस्था मे आप योग की आराधना करे, यह ठीक नही जान पडता। अगर आप वृद्ध होते तो मुझे इतना कोतूहल न होता और आपकी योग– साधना भी समझ मे आ सकती थी। पर युवा अवस्था मे आपने सयम धारण किया है, इसलिए मै यह प्रश्न पूछने के लिए उद्यत हुआ हू यदि आपकी भाति सभी लोग इस तरुण अवस्था मे सयम धारण करने लगेगे तो गजब हो जायेगा। मै यह प्रश्न प्रत्येक सयमी से नहीं पूछता। पर मेरे सामने जिसने युवावस्था मे सयम धारण किया हो उससे यह पूछना मैं अपना कर्तव्य समझता हू। अगर मैं अपने कर्त्तव्य का निर्वाह न करू तो राजा कैसे कहला सकता हू? अनुचित और अवाछनीय कार्य को रोक देना राजा का कर्तव्य है। अत कृपा कर यह समझाइये कि आप बुद्धिमान होते हुए भी इस उम्र मे सयम की साधना के लिए क्यो प्रवृत्त हुए हैं? अगर आपने किसी कष्ट के कारण या किसी के बहकाने से सयम ग्रहण किया हो तो भी नि सकोच होकर कह दीजिए जिससे मै आपका कष्ट निवारण करने मे सहायक बनू।

राजा श्रेणिक का प्रश्न सुन कर मुनिराज ने ... मे अनाथ था। मेरी रक्षा करने वाला कोई नहीं था। ... सकता था। इसलिए मैने सयम धारण किया है।

मुनि के इस सक्षिप्त उत्तर से यह समझा जा सकता है ... भटकने वाला व्यक्ति होगा। उसे खान-पीन और ... होगी। उसकी रक्षा करने वाला कोई न होगा इसलिए ... होगी। अथवा

नारि मुई घर सम्पत नासी।
मूड मुडाय भये सन्यासी।।

इस कथन के अनुसार या तो स्त्री का देहान्त हो गया ... सम्पत्ति नष्ट हो गई होगी। ऐसे ही किसी कारण से ... ली होगी।

राजा को भी मुनि का उत्तर सुन कर आश्चर्य हुआ। ... होगा- अभी तो ऐसा कलयुग नही आया कि कोई दयाल ... करे । फिर भी यह मुनि तो इस प्रकार की ऋद्धि से सम्पन्न ... कैसे हो सकते है? इनका कथन तो ऐसा मालूम होता है जैसे कल्पवृक्ष कहे कि मेरा कोई आदर नही करता चिन्तामणि कहे- कोई मुझे रखता नहीं है या कामधेनु कहे- मुझे कोई खडा होने की भी जगह नही देता। जैसे कल्पवृक्ष चिन्तामणि ओर कामधेनु का यह कथन असभव प्रतीत होता है इसी प्रकार इन मुनि की बात भी कुछ समझ मे नही आती। जिनके शरीर मे शख चक्र पद्म आदि शुभ लक्षण विद्यमान हे उनका कोई नाथ न हो उनकी रक्षा करने वाला कोई न हो उनका कोई सहायक मित्र भी न हो यह कैसे माना जा सकता हे?

कवि कहते हैं- हस से कदाचित् विधाता रुष्ट हो जाये तो उसके रहने का कमल- वन नष्ट कर सकता हे उसे मानस-सरोवर मे रहने मे बाधा पहुचा सकता है। पर उसकी चोच मे दूध ओर पानी को अलग-अलग करने का जो गुण विद्यमान हे वह तो नही छीन सकता।

इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर राजा ने कहा-'मुनिराज! आप ऐसी असाधारण ऋद्धि से सम्पन्न होने पर भी अपने को अनाथ कहते हैं। यह बात मानने को जी नही चाहता। मैं अधिक चर्चा करना नही चाहता। आप मेरे साथ चलिए मै आपका नाथ बनता हू। मेरे राज्य मे कोई कमी नही हे।

आपको भी राजा के समान विवेकशील बनना चाहिये। अगर कोई बात आपकी समझ मे न आये तो दूसरे पर झटपट आक्षेप कर डालना उचित

नही है पहले वास्तविकता को समझने का नम्रता—पूर्वक प्रयास करो फिर यथोचित कर्त्तव्य का निर्णय करो।

श्रेणिक मुस्कराकर फिर बोला—हे भदन्त! मैं आपसे कुछ अधिक न कहते हुए बस यही कहना चाहता हू कि आप सकोच न करे। आपने अनाथता के दु ख से प्रेरित होकर सयम धारण किया है मैं उस अनाथता का दु ख दूर करने के लिए आपका नाथ बनता हू। जब मैं स्वय नाथ बन जाऊगा तो आपको किस चीज की कमी रहेगी? अतएव मुनिराज, चलिए। सयम त्याग कर भोगोपभोग का सेवन कीजिए। आपको सब प्रकार की सुख— सुविधा प्राप्त होगी।

राजा का यह कथन सुनकर मुनि को आश्चर्य हुआ। इधर मुनि सोच रहे थे— 'बेचारा राजा स्वयमेव अनाथ है तो फिर मेरा नाथ कैसे बनेगा? उधर राजा सोचता था 'ऐसे प्रशस्त लक्षणो से सम्पन्न ऋद्धिशाली पुरुष का नाथ बनने मे कौन अपना सौभाग्य न समझेगा?

अन्त मे मुनिराज ने गम्भीर होकर कहा—' राजन! तुम स्वय अनाथ हो, तो दूसरे के नाथ कैसे बनोगे? जो स्वय दिगम्बर है— वस्त्ररहित है वह अपने दान से दूसरो का तन कैसे ढकेगा?

शरीर भोगोपभोग के लिए है यह विचार आते ही आत्मा गुलाम एव अनाथ बन जाती है। आप समझते हैं— अमुक वस्तु हमारे पास है अतएव हम उसके स्वामी है। पर ज्ञानीजन कहते है— अमुक वस्तु तुम्हारे पास है, इसलिए तुम उनके गुलाम हो— अतएव अनाथ हो। एक अज्ञानी पुरुष सोने की कठी पहन कर घमड से चूर हो जाता है। दिखाना चाहता है कि मैं सोने का स्वामी हू, पर विवेकी पूरुष कहते है— वह सोने का गुलाम हे।' अगर वह सोने का गुलाम न होता तो सोना चला जाने पर उसे रोना क्यो पडता है? वह सोने का आश्रय क्यो लेता हे? जहा पराश्रय है, वही गुलामी हे वही अनाथता है।

मुनि ने राजा को अनाथ कहा। उसका भावार्थ यही है कि तुम जिन वस्तुओ के कारण अपने को नाथ समझते हो उन्ही वस्तुओ के कारण वास्तव मे तुम अनाथ हो। जब तुम स्वय अनाथ हो तो दूसरे के नाथ कैसे बन सकते हो? इस प्रकार जिन वस्तुओ पर तुम्हारा स्वामित्व नही हे वे वस्तु अगर दूसरो को प्रदान करोगे तो वह चोरी कहलाएगी उसके लिये दड का पात्र बनना पडेगा।

मुनिराज के इस कथन से राजा के विस्मय का ठिकाना न रहा मगध के विशाल साम्राज्य का अधिपति श्रेणिक अनाथ हे! यह कल्पना ही उसे

मुनि ने उत्तर दिया– 'राजन्! आप सनाथ– अनाथ का भेद नहीं जानते। इसी कारण आप यह कह रहे हे ओर आश्चर्य मे पडे हुए है। मै आपको सनाथ– अनाथ का स्वरूप समझाता हू। शात–चित्त से सुनिए। यह मेरे स्वानुभव की बात हे इसमे सदेह के लिए लेशमात्र अवकाश नही है।

'कौशाम्बी नाम की नगरी मे मेरे पिता रहते थे। उनके पास प्रचुर धन–सम्पत्ति थी। मेरा लालन–पालन अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया था। मुझे किसी चीज की कमी न थी। मेरी बाल–अवस्था बडे आनन्द से व्यतीत हुई। जब मैं तरुण–अवस्था मे आया तो सुयोग्य कन्या के साथ मेरा विवाह सबन्ध हुआ। आप जिस अवस्था को भोग भोगने योग्य कहते हैं उसी अवस्था मे आपके बताये हुए समस्त साधन विद्यमान होने पर भी मेरी क्या दशा हुई सो ध्यान से सुनिये। युवावस्था मे मेरी आखो मे रोग उत्पन्न हो गया। उसके कारण मुझे तीव्र वेदना होने लगी। नेत्र–पीडा के साथ–ही–साथ मेरे सम्पूर्ण शरीर मे दु सह सताप फूट पडा। उस समय ऐसा जान पडता था मानो सारा शरीर आग मे रख दिया गया हो।

'राजन्! आप शासन के सचालक हैं। अगर आपके सामने कोई किसी की आखो मे सुई भौंक दे या किसी का शरीर जला दे तो आप क्या करेगे?

राजा ने कहा– मेरे राज्य मे किसी ने अपराध किया हो और पता लगने पर भी मैने अपराधी को दण्ड न दिया हो यह आज तक नही हुआ।

मुनि–राजन्! बाहर के अपराधी से आप मेरी रक्षा कर सकते थे पर जिस शैतान रोग ने मुझ पर आक्रमण किया था, उससे मुझे कोन बचा सकता था? क्या आपके राज्य मे रोग का आक्रमण नही होता? क्या आप उस आक्रमण का सामना करने के लिए कभी प्रयत्नशील हुए और प्रजा की रोग से रक्षा की है? क्या अब आपके राज्य मे प्रजा रुग्ण नहीं होती? अगर रोग से आप अपने प्रजाजनो की रक्षा नही कर सकते तो उनके नाथ कैसे कहला सकते है? इस दृष्टि से विचार करो तो प्रजा का नाथ होना तो दूर रहा आप अपने खुद के 'नाथ' भी नही! मैं इसी प्रकार का अनाथ था। अगर यह कहा जाये कि रोग से किस प्रकार रक्षा की जा सकती हे? वह तो अपने हाथ की बात नही है। तो फिर नाथ होने का दावा क्यो करना चाहिए? नम्रतापूर्वक अपनी अनाथता स्वीकार करनी चाहिए जिससे सनाथ बनने का उपाय सूझ पडे और उसके लिए प्रयत्न भी किया जा सके।

'राजन्! तुम बाहर के शत्रुओ को देखते हो पर भीतर जो शत्रु छिपे बैठे हें, उन्हे क्यो नही देखते? भीतर के शत्रु ही तो असली शत्रु हैं। उन्हे जो जीत नहीं सकता वह नाथ कैसा? अतएव तुम स्वय भी अनाथ हो।

राजा– आपको बडी असह्य वेदना थी ?

मुनिराज –मैं क्या बताऊ! आखो मे इतनी तीव्र वेदना थी जेसे कोई तीक्ष्ण भाला लेकर उनमे चुभा रहा हो। आप विचार कीजिए कि उस समय जो शत्रु मुझे घोर वेदना पहुचा रहा था उसे पराजित न कर सकने वाला सनाथ है या अनाथ है? एक ओर मेरी आखो मे पीडा थी दूसरी ओर दर्द के मारे कमर टूटी जाती थी । इसके अतिरिक्त जिसे उत्तमाग कहते हें और जो ज्ञान का केन्द्रभूत मस्तष्क है उसमे भी इतनी पीडा थी मानो इन्द्र वज्र का प्रहार कर रहा है। इस प्रकार मेरा सारा शरीर पीडा से छटपटा रहा था।

आप कह सकते है कि उस वेदना का प्रतिकार करने के लिए वेद्य की सहायता लेनी चाहिए थी। पर जितने बडे–बडे चिकित्सको का उस समय पता चला सब से चिकित्सा कराई गई। दवा मे किसी प्रकार की कोरकसर नही की गई। नाना प्रकार की चिकित्सा–प्रणालियो का अवलम्बन लिया

आपके साथ आत्मीयता स्थापित हो गई हे तो प्रतीत होता है कि जैसे शुद्ध तू हे वेसा ही शुद्ध मैं हू।

य परमात्मा स एवाह योऽह स परमस्तथा।
अहमेव मयाऽऽराध्य नान्य कश्चिदिति स्थिति।।

आज मेरी यह अवस्था है कि– जो परमात्मा है वही मैं हू ओर जो में वही परमात्मा है। अतएव मेरे द्वारा मैं स्वय ही आराधना करने योग्य हू, मुझ से भिन्न पर–पदार्थ आराधना करने योग्य नही।

अतएव अशुद्धता का समूल नाश करने के लिए पूर्ण विशुद्धता प्राप्त करने के उद्देश्य से उसी के गुण गाऊगा जो पूर्ण शुद्ध है जो मुझ से भिन्न नहीं वरन वास्तव मे "म्हारा" है।

जव तक में धन–सम्पदा, घर द्वार आदि मे रचा–पचा रहता था तब तक तो अशुद्ध व्यक्तियो को ही अपना 'सभवनाथ मान रखा था– उन्हे ही अपना नाथ समझता था। लेकिन अब में इनके चक्कर मे पडे है उन्हे ही अपना नाथ क्यो मानू?

न दारे मगेरस्त फरियाद रस।
तु ही आशियारा खता बख्श बख्श।।

में किसी दूसरे को अपनी फरियाद नहीं सुनाता। बस एकमात्र तू ही मेरी फरियाद सुनने वाला ओर मेरी मुराद पूरी करने वाला हे। में तुझे ही मानूगा दूसरे किसी को मानने की मुझे क्या जरूरत हे? में दूसरो को अपनी फरियाद क्या सुनाऊ? जो स्वय लोभ का कुत्ता बना हुआ हे स्वय सब कुछ हडप जाने की भावना रखता हे वह मेरी मनमानी मुराद क्या पूरी करेगा?

इस प्रार्थना की भाषा फारसी हे लेकिन इसका अर्थ वही हे जो सभव जिनजी की प्रार्थना मे प्रकट किया गया हे। सभवनाथ भगवान् की प्रार्थना मे प्रभु क प्रति जो एक–निष्ठता का भाव हे वही भाव यहा दूसरे शब्दो मे विद्यमान ह। तुलसीदास ने भी कहा हे–

जासौं दीनता कहौं मैं देख्यो दीन सोई।
दीन को दयालु दानी दूसरो न कोई।।

अर्थात– हे प्रभा! दीन का दु ख दूर करने वाला तुझ–सा दानी दूसरा नही दिखाई दता।

फारसी की गाथा म जा वात कही हे वही बात तुलसीदास जी न भी कही ह कि म अपनी दीनता किसी दूसर स कहूगा ही नही। जा स्वय [illegible] का मारा ह आर जा स्वय मरी तरह ससार की उलझना म फसा हुआ

है वह दूसरो की दीनता कैसे दूर करेगा? उसके आगे अपनी दीनता प्र करने से क्या लाभ है?

तात्पर्य यह हे कि यदि सभवनाथ भगवान को अपना बनाना अगर तुम चाहते हो कि सभवनाथ भगवान म्हारा बन जाए तो दुनिया दौलत से दुनिया के समस्त पदार्थो के त्याग से मोह-ममता तजनी पड़ेगी ससार के पदार्थो का त्याग किये बिना सभवनाथ तुम्हारे नही बन सकते। एक साथ दो घोडो पर सवार होने का पयत्न करना अपने आपको खतरे मे डालना है। उससे अभीष्ट स्थान पर नही पहुचा जा सकता। इसी प्रकार जब तक अन्तकरण मे दुविधा है-एकनिष्ठा नही हे तब तक आपका दुख दूर नही सकता।

आप सोचेगे कि हम गृहस्थ ठहरे दुनिया मे रहते है। धन की पग-पग पर आवश्यकता रहती है। उसे छोड दे तो जीवन-यात्रा कैसे सम्पन्न होगी? इसका समाधान यह है कि अनाथी मुनि के मुखारविन्द से नाथ-अनाथ का भेद सुनकर राजा श्रेणिक ने राज्य नही छोडा- वह राजा ही बना रहा किन्तु नाथ-अनाथ का सच्चा स्वरूप समझने से उसकी मिथ्याधारणा मिट गई। वह समझने लगा कि वास्तव मे मे नाथ नही हू- अनाथ हू। मुनिराज ही वास्तव मे नाथ हें। इस तथ्य को समझ जाने से वह किसी मुनि से यह नही कह सकता कि चलो, मैं आपका नाथ बनता हू।

वस्तु का स्वरूप जान कर उसे आचरण मे लाना सर्वश्रेष्ठ है। ज्ञान का फल चारित्र हे। वस्तु को त्याज्य समझ कर त्यागना, ग्राह्य समझ कर ग्रहण करना ओर उपेक्षीय समझ कर उसकी उपेक्षा करना, यह ज्ञान का फल बतलाया गया है। पर यह ज्ञान का परम्परा-फल हे। साक्षात् फल अज्ञान की निवृत्ति है। जब हम किसी वस्तु को जानते हें तो उसके सबध मे जो अज्ञान विद्यमान् था वह दूर हो जाता हे। यह अज्ञान का विनाश होने पर अगर वस्तु का ग्रहण या त्याग कर दिया जाये तो वह उस ज्ञान का परम्परा फल हे। अगर आप नाथ-अनाथ का सम्यक् स्वरूप समझ कर तद्विषयक, अज्ञान से मुक्त हो जाते हैं तो दूसरा फल नही, तो भी पहले फल के भागी हो जाते हैं। जो प्रथम फल का भागी होगा अर्थात अज्ञान से मुक्त हो जायेगा वही त्याज्य वस्तु का त्याग कर सकेगा वही उपेक्षणीय वस्तु पर उपेक्षा का भाव धारण कर सकेगा अन्य नही। तात्पर्य यह हे कि वस्तु का स्वरूप जान लेने से उसे आचरण मे लाने की योग्यता प्राप्त हो जाती हे। अगर आप कोई चीज व्यवहार मे नही ला सकते तो भी उसे व्यवहार मे लाने की योग्यता अवश्य होनी चाहिये। ऐसा होने पर कभी ऐसा अवसर भी आएगा जब आप उस योग्यता को व्यवहार मे अवतीर्ण करेगे।

आप पगडी उतार कर यहा इसीलिए बैठे हैं। यह धन –दौलत घर–द्वार अभी छूटा नहीं है लेकिन इसे छोडने की प्रार्थना करने के लिए ही आप मेरे पास आते हैं। अगर आप इतना भी नही कर सकते हो – पर पदार्थों के परित्याग की प्रार्थना करना भी आपको रुचिकर न हो तो मेरे समान त्यागी के पास आना निरर्थक है। धन प्राप्त करने के लिए धनी के पास जाना चाहिए ओर त्याग करने की भावना से त्यागी के पास जाना चाहिए। आप मेरे पास आये हैं इसी से यह प्रकट है कि आप धन का त्याग भले ही न कर सकते हो पर त्याग की भावना अवश्य रखते हैं। त्याग की भावना के बिना आदर्श श्रावक होना भी कठिन है। श्रावक के तीन मनोरथो मे अकिचन अनगार बनने का भी एक मनोरथ है।

भाइयो जितना हो सके उतना त्यागो। जो बन सके उसको त्यागने की भावना रखो। परमात्मा के प्रति पूर्ण एकनिष्ठा उत्पन्न करो। म्हारा पद एकनिष्ठ को ही प्रकट करता हे।

अव यह देखना हे कि आज का अर्थ क्या है? आज पद का अभिप्राय यह हे कि –हे प्रभो! मेने अव तक देश को , घर को कुटम्ब–परिवार आदि को अपना माना था लेकिन आज से – अभेदज्ञान उत्पन्न हो जाने पर–तेरी–मेरी एकता की अनुभूति हो जाने के पश्चात् मैं तुझे अपना मानता हू। अपने अन्त करण मे अनादिकाल से सासारिक पदार्थों को स्थान दे रखा था। आज उन सब से उसे खाली करता हू। अब अपने हृदय के सिहासन पर तुझको ही विराजमान करूगा। अब वहा अन्य कोई भी वस्तु स्थान न प्राप्त कर सकेगी।

'मधुर–मधुर सुर तान अलापी का अर्थ यह हे कि जेसे तदूरे मे तीन तार हाते हें ओर तीना तारो के मिलन से मधुर राग निकलता हे उसी प्रकार मन वचन एव काया को एकत्र करके–तीनो योगो से एकमुख होकर–परमात्मनिष्ठ होकर धन एव सदन का ममत्व त्याग दो तो हृदय से वह राग निकलगा जो अन्य स्थान से नहीं निकल सकता। जब तीनो योगा की एकता सध जाती ह ता 'सोऽह की परमानन्ददायिनी ध्वनि फूट पडती ह आर उसस परम एव चरम कल्याण की प्राप्ति होती हे उस अद्भुत ओर अपूर्व अवस्था म परमात्मा पूर्ण रूप से म्हारा (अपना) बन जाता हे ओर आत्मा–परमात्मा का भदभाव समाप्त हा जाता हे। कल्याणमस्तु!

महावीर भवन दहली– ता0 6–5–31

3. आत्म–बल

पदम प्रभु पावन नाम तिहारो पतिन उधारनहारी।।

आज से पर्युषण–पर्व आरम्भ हुआ है। यद्यपि पर्व की आराधना एक दिन करनी है लेकिन इन सात दिनो मे उस आराधना की तैयारी करना आवश्यक है। इस आराधना की तैयारी करना और अन्त मे आराधना करने के लिए किन महापुरुषो की शरण ग्रहण करना चाहिये? यही बात जानने के लिए पर्युषण के दिनो मे अन्तगडसूत्र के पठन मनन एव श्रवण की परिपाटी चली आ रही है। प्राचीन महर्षियो ने आठ दिन मे ही सम्पूर्ण अन्तगडसूत्र के पठन मनन एव श्रवण की परम्परा प्रचलित की है, इसका कारण क्या? इस प्रश्न का समाधान तो कोई पूर्ण योगीश्वर ही कर सकता है।

मै इतना ही कहना चाहता हू कि अन्तगडसूत्र श्रमण भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित द्वादशागी मे आठवा अग है। इस अग मे 90 महात्माओ के पवित्र चरित्र वर्णन किये गये है। सभी महात्माओ के चरित्र समान है। व्यवहार के भेद से चरित्रो मे थोडा–बहुत अन्तर भले ही पाया जाये पर उन सबका मर्म–अन्तस्तत्तत्व–एक ही है। सभी महात्माओ के चरित्र से एक ही ध्वनि निकलती हे। सभी ने एक ही पथ का अवलम्बन किया है, एक ही लक्ष्य को समक्ष रख कर साधना की है और एक ही प्रकार की साधना से सिद्धिलाभ किया है।

यो तो श्रमण भगवान् महावीर के 700 शिष्य केवल–ज्ञानी हुए है परन्तु इस सूत्र मे उन सबका वर्णन नहीं किया गया है। यहा उन्हीं महात्माओ का वर्णन हे। जिन्होने अपनी आयु के अन्त मे दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त किया हे। ऐसे महात्माओ के जीवन चरित्र पर पूर्ण विचार योगीश्वर ही कर सकते हैं। ऐसा करना हम जैसे छद्मस्थो के लिए शक्य नही हे। प्रस्तुत अग अन्तगड चार ज्ञानधारी चौदह पूर्व के ज्ञाता गणधारो ने लिखा हे। किस विचार से

उन्होने इसकी रचना की है यह कहना हमारी शक्ति से बाहर है। हम तो इन महात्माओ के विषय मे प्रार्थना के रूप मे बाल—भाषा मे जो कुछ कहा गया है वही कहते हैं।

श्री जिनशासन मुनिवर वदू
भगते निज सिर नाय रे माई।
कर्म हणीने केवल पामी
पोंच्या जे शिवधाम रे माई।।श्री ।।।
नित्य उठी प्रणमू नेमीसर ,
श्रमण ए सहस अठार री माई।
परदत्त आदि मुनि पन्दरे से,
वन्दो केवल—धार री माई।।श्री ।।
गौतम समुद्र ने सागर गाऊ,
गभीर स्तमित कुमार री माई।
अचल ने कपित अक्षोभन सेमी
दसवी विष्णुकुमार री माई।।श्री ।।

इस पद मे उन महात्माओ को सग्रह करके नमस्कार किया है जिनका वर्णन अन्तगड सूत्र के प्रथम वर्ग मे है। इस प्रथम वर्ग मे इन दस महापुरुषो के नाम से दस अध्याय हैं।

अन्तगड सूत्र मे भगवान् अरिष्टनेमि ओर भगवान महावीर के शासन का वर्णन हे। यद्यपि सभी तीर्थंकरो का पद समान हे सभी समान भाव से मान्य हे अथवा यो कहना चाहिए कि सभी तीर्थंकरो द्वारा उपदिष्ट तत्त्व अभिन्न ह फिर भी यहा दो ही तीर्थंकरो के शासन का वर्णन किया गया हे। नही कहा जा सकता इसका रहस्य क्या है?

भगवान् नेमिनाथ के शासन मे अठारह हजार श्रमण हुए हैं। उनमे से 1500 केवलज्ञानी हुए हे। इन सब को इस प्रार्थना मे नमस्कार किया गया हे। इन 1500 केवल ज्ञानियो मे से दस महापुरुष के चरित्र मे समानता होने के कारण अथवा अन्य किसी विचार से पहले वर्ग के दस अध्यायो मे इनका चरित्र दिया गया हे।

अन्तगड दसाग अथवा अन्तकृद्दशा का अर्थ हे— आयु के अन्त मे जिन महात्माआ न क्रमो का अन्त किया हे उनके चरित्र का वर्णन। पहले वर्ग म दस अध्याय हान से इसे दशाग कहत हैं।

प्रथम वर्ग म जिन दस महात्माआ का वर्णन ह उनके नाम इस प्रकार ह— (1) गातम (2) समुद्र (3) सागर (4) गभीर (5) स्तिमित (6) अचल (7) कम्पित (8)अक्षाभ (9) प्रसन (10) विष्णुकुमार।

यह दसो महापुरुष एक ही माता के पुत्र थे। इनका लालन–पालन विवाह सबध शिक्षा–दीक्षा सब एक ही समान हुआ था। और एक ही भगवान् की वाणी सुनकर ये ससार से विरक्त हुए थे। इन्होने एक साथ दीक्षा ग्रहण की एक साथ तपश्चर्या की एक साथ केवल ज्ञान प्राप्त किया और एक ही साथ सथारा धारण करके मोक्ष–लाभ किया था।

गगा और यमुना का मिल जाना कदाचित सरल हो सकता है पर इन दस महात्माओ का एक ही घर मे पृथक्–पृथक समयो मे उत्पन्न होना और एक साथ ससार से विरक्त होकर मोक्ष जाना कितना कठिन सा प्रतीत होता है। यह एक अद्भुत सयोग है।

हम लोगो की आत्मा को बोधित करने के लिए आत्मा की सोई हुई शक्तियो को प्राणवान् एव जागृत बनाने के लिये ही महात्माओ ने इनका वर्णन हमारे लिये किया है।

भगवान का जो पद है वही पद मुनि का है और जो पद मुनि का है वही भगवान का है। भाव–वन्दना के समय यह पाठ बोला जाता है।

तिक्खत्तो आयाहिण पयाहिण करेमि वदामि नमसामी सक्कारेमी, सम्माणेमि कल्याण मगल,देवय चेइय,पज्जुवासामि,मत्थएणवदामि।'

यह पाठ पढते हुए वन्दना की जाती है। यह वन्दना करने का पाठ है। लेकिन वन्द्य कौन है? जिसके प्रति भक्त–जन अपने अन्त करण सम्पूर्ण श्रद्धा–भक्ति का भाव अर्पित करते हैं, जिसके समक्ष भक्त–जन एकाकार होकर किचित् काल के लिए सब प्रकार का दुराव भूल जाते हैं, आत्म–कल्याण के लिये जिसकी शरण ग्रहण की जाती है वह कौन है? वह है–अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु। इन पाचो को वन्दना करते समय इस पाठ मे भेद नही किया जाता है। उसी पाठ से अरिहन्तो की वन्दना की जाती है और उसी से साधु को भी।

यहा यह प्रश्न उठना स्वाभविक है कि कहा तो चार घातिक कर्मो को सर्वथा क्षय करने वाले, जीवनमुक्त अरिहन्त और कहा साधना का लगभग आरम्भ करने वाले मुनि? दोनो मे महान् अन्तर है। दोनो के आत्मा–विकास मे इतना अन्तर होने पर भी एक पाठ से दोनो की वन्दना क्यो की जाती है?

इस युग मे आध्यात्मिकता की ओर विशेष अभिरुचि न होने के कारण भौतिकता की भावना मे वृद्धि हो जाने से एव उसी का समर्थन करने वाले व्याख्यान सुन कर पुस्तके पढ कर कुछ लोग साधुओ को समाज का बोझ समझने लगे हैं। उन्हे साधु निरर्थक प्रतीत होते हैं क्योकि कई साधुओ

को 'लेक्चरार' की भाति छटादार भाषा मे व्याख्यान देना नही आता। साधु, अन्यान्य प्रवृत्ति मे भी नहीं पडते जिन्हे इस समय प्रधानता दी जा रही है।

साधारण जनता प्रवृत्ति के बहाव मे बहती है। जिस समय जिस चीज की विशेष आवश्यकता होती है उस समय समाज के मुखिया उस चीज को अत्यधिक महत्व देते हैं। सामयिक आवश्कता की पूर्ति के लिये ऐसा करना ही पडता है पर यह भूल नहीं जाना चाहिये कि समाज की आवश्यकताए किसी खास समय तक ही परिमित नहीं हैं। मानव–जीवन पानी का बुलबुला नहीं है कि उसका कुछ ही समय मे अत आ जाये। मानव जीवन सत्य है इसलिये सनातन है। अमुक युग की अमुक आवश्यकता की पूर्ति के लिये उत्पन्न की गई भावना मे ही जीवन की सम्पूर्ण सार्थकता नही है। उसके अतिरिक्त वहुत कुछ शाश्वत तत्व है जिसकी सिद्धि मे जीवन की सर्वांगीण सफलता निहित है। अतएव ऐसे सर्वकालीन तत्वो का सरक्षण करना उनकी व्याख्या करना भी आवश्यक है। उस ओर से सर्वथा उदासीन होकर कोई भी समाज पूर्ण सिद्धि प्राप्त नही कर सकता। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता हे कि युग धर्म सब कुछ नही है। वरन् शाश्वत धर्म भी है जो जीवन को भूत ओर भविष्य के साथ सकलित करता है। युगधर्म का महत्व काल की मर्यादा मे बन्धा हुआ हे, पर शाश्वत धर्म सभी प्रकार की सामयिक सीमाओ से मुक्त हें। मुनिजन अगर युग धर्म को गौण करके शाश्वत धर्म को मुख्य रूप से प्रचार करते हें तो क्या इसी से उन्हे उपेक्षा का पात्र समझना चाहिये? कदापि नही क्योकि वे जीवन मे महत्तम आदर्श के सदेशवाहक हें। ओर उस सदेश को अपने जीवन मे उतार कर उसे मूर्तिमान रूप प्रदान करते हे।

इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि मुनि युगधर्म की आर दृष्टि नही देते अथवा उसका विरोध करते हें। युगधर्म की प्रतिष्ठा मे सहायक होते ह पर उनका जीवन एक विशिप्ट साधना से समन्वित होता हे। वह साधन ह सयम। भगवान् का यही आदेश हे कि सयम मार्ग को लक्ष्य मे रख कर ही साधुओ का सव कार्य करने चाहिये। उन्हे सयम खोकर कोई काम नहीं करना चाहिय। सयम की साधना से अगर किसी दूसरे कार्य मे व्याघात होता हे तो भल ही हा जाय पर सयम की उपेक्षा करके दूसरे कार्य उन्हे नही करन चाहिय। लाकिक प्रवृत्तिया म पड कर सयम का व्याघात नही करना चाहिय। इतना हान पर भी अनक महात्मा अपन सयम का सरक्षण करत हुए लाकहित का उपदश दत ह आर युगधर्म की प्रतिप्ठा म इतना याग दता हे कि सयम का पालन करन वाला काइ उपदशक या व्याख्याता भी उतना सहायक नही

आप तनिक विचार कीजिये कि जिन सन्त-महात्मा [illegible] वन्दना करता है उनका कितना आदर सम्मान [illegible] सच्चे सन्त है उन्हे आप चाहे अच्छा कहे चाहे बुरा [illegible] निंदा करे चाहे प्रशसा करे, उनके लिये यह सब समान है। [illegible] रोष है न किसी पर तोष हे। फिर भी आपको अपना कर्त्तव्य [illegible]।

यहा यह प्रश्न हो सकता हे कि महात्मा मे ऐसा [illegible] जिससे प्रभावित होकर इन्द्र भी उन्हे नमन करता हे? पाच समितिया और तीन गुप्तियो मे ऐसी कोन सी शक्ति है जो देवराज इन्द्र का मस्तक झुका देती है?

मित्रो! महात्माओ मे जो बल हे वही बल प्राप्त करने का यह सुअवसर मिला हे। इस सुअवसर का उपयोग कर लो– हाथ से न जाने दो।

मुनि ईर्यासमिति से चलते हैं भाषा समिति का ध्यान रखते हुए बोलते हैं। आप कहेगे इसमे कोन सी बडी विशेषता हो गई? नीचे देख कर तो हम भी चलते हैं। मुनि अगर साढे तीन हाथ भूमि देख कर चले तो वह उन की बहुत बडी विशेषता नही है। परन्तु देखकर चलने को ही ईर्या नही कहते। ईर्या को आप मामूली सी चीज समझते है मगर वो मामूली नही है। समस्त राजयोग का उसमे समावेश हो जाता हे। मुनि– जन ईर्या का अवलम्बन लेते हे अर्थात ज्ञान दर्शन और चारित्र को देख कर उनमे किसी प्रकार की क्षति न पहुचाते हुए चलते हैं। गृहस्थी लोग नीची दृष्टि करके चलते हैं। सो कोई काटा ईट पत्थर आदि की ठोकर खाने से बचने के लिये, कोई जीव–जन्तु को बचाने के बदले विषैले जन्तुओ से बचने के लिये और कोई–कोई जीवरक्षा के विचार से। मगर मुनिराज ज्ञान दर्शन और चारित्र की रक्षा के

लिये नीची दृष्टि रख कर चलते है। एक आदमी कोडी ढूढने के लिए जमीन पर नजर डालकर चलता है, दूसरा चिन्तामणि–रत्न की खोज के लिए पृथ्वी की ओर देखता हुआ चलता है। पृथ्वी की ओर दोनो देखते हैं फिर भी कौडी ढूढने वाले की चाल कौडी की है और रत्न ढूढने वाले की रत्न की हे। मुनि ज्ञान दर्शन एव चारित्र्य रूपी रत्न खोजते हुए चलते हैं इसलिए वे इन्द्र द्वारा भी पूजनीय हैं।

इतना प्रासगिक कथन करके मैं अब यह बतलाना चाहता हू कि पर्युषण की तैयारी किस उद्देश्य से की जाती है। ससार मे सबको सबकी आवश्यकता है। किसी को तनबल की आवश्यकता है, किसी को मनोबल की किसी को धनबल की और किसी को राज्य पचायत या परिवार–बल की आवश्यकता है। इन सब बलो को प्राप्त करने के लिए की जाने वाली आराधना के लिए कुछ विशेष अवसर नियत किये हैं। उन्हे त्योहार कहते हैं। पर्युषण भी एक महान् त्यौहार है। उसमे किस बल की प्राप्ति के लिए आराधना की जाती है। पर्यूषण मे जिस बल की प्राप्ति के लिए आराधना की जाती है वह, आत्मबल हे। आत्म–बल के विषय मे कहा है–

आतम–बल ही है सब बल का सरदार।।आतम•।।
आतम–बल वाला अलबेला, निर्भय होकर देता हेला।
लड कर सारे जग से अकेला, लेता बाजी मार।।आतम•।।
कैसी भी हो फौज भयकर तोप मशीने हो प्रलयकर।
आत्म बली रहता है बेडर, देता सब को हार।।आतम•।।
चाहे फासी पर लटका दे, भले तोप के मुह उडवा दें।
आत्मबली सब को ही दुआ दे, कभी न दे धिक्कार।।आतम•।।
लेता है आतमबलधारी स्वतन्त्रता सब जग की प्यारी।
पराधीनता–दुखसहारी करे सुखी संसार।।आतम•।।
प्रतिहिसा के भाव न लाता सदा शान्ति का गाना गाता।
सारा सोता देश जगाता कर नीती परचार ।।आतम•।।
आत्म–बली है जग मे नामी इसमे कुछ नहीं है खामी।
बनो इसी के सच्चे हामी तज पशुबल अहकार।।आतम•।।

कवि न इस गीत मे अपने भाव प्रकट किये हें। इन भावो को सिर्फ समझ लना ओर गीत गा लना पर्याप्त नही हे। आत्मवल की महिमा का मर्म समझ कर उस आत्मा म किस प्रकार व्यक्त किया जाए यह समझा।

आत्म–वल म अद्भुत शक्ति है। इस वल क सामन ससार का काई वन टिक नहीं सकता। इसक विपरीत जिसम आत्मवल का सर्वथा अभाव

वह अन्यान्य बलो का अवलम्बन करके भी कृत–
यु के समय अनेक क्या अधिकाश लोग दु ख का
र अधकार उन्हे विह्वल बना देता है। बडे–बडे
वक्षस्थल पर क्रीडा करते हैं विशाल जल राशि का
नाते हैं और देवताओ की भाति आकाश मे विहार करते हैं।
ससार थर्राता है वे मृत्यु को समीप आता देखकर कातर
जाते हैं। लेकिन जो महात्मा है वे मृत्यु का आलिगन कर
ी खेद नही करते। मृत्यु उनके लिये सघन अधकार नही है
अपवर्ग की ओर ले जाने वाले देवदूत के समान प्रतीत होती है।
क्या है? इसका एक मात्र कारण आत्मबल है।

आत्मबल सब बलो मे श्रेष्ठ है यही नही वरन् ...
अनुचित नही होगा कि आत्मबल ही एकमात्र बल है। जिसे आत्म बल
लब्धि हो गई उसे अन्य बल की आवश्यकता नही रहती।

आधुनिक कविता मे आत्मबल की उक्त प्रकार से प्रशसा की ... है
परन्तु प्राचीन कविता मे उसका दूसरे ही रूप मे वर्णन किया गया है–

सुने री मैंने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरू सन्तन की अडे सुधारे काम।। सुने री।।
जब लग गज बल अपनो बरत्यो, नेक सर्‌यो नही काम।
निर्बल हो बलराम पुकारे आये आधे नाम।। सुने री।।

चाहे आत्मबल कहो चाहे रामबल कहो, चाहे अर्हन्त–बल कहो चाहे परमेष्ठीबल कहो बात एक ही है। आत्मा के उस बल को तुम प्राप्त करने की तैयारी मे आये हो तो यह सोचो कि उसकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? उसे प्राप्त करने के लिये किन उपायो का अवलम्बन करना चाहिये।

इस बल को प्राप्त करने की क्रिया हे तो सीधी– सादी लेकिन क्रिया करने वाले का अन्त करण सच्चा होना चाहिए। वह क्रिया यह है कि अपना बल छोड दो। अर्थात् अपने बल का जो अहकार तुम्हारे हृदय मे आसन जमाये बेठा है अहकार को निकालकर बाहर करो। जब तक तुम ऐसा न करोगे अपने बल पर अर्थात् अपने शरीर, बुद्धि या अन्य भौतिक साधनो के बल पर निर्भर रहोगे तब तक आत्मबल प्राप्त न हो सकेगा।

पुराण मे लिखा है कि एक हाथी परमात्मा का भक्त था। वह भगवान का नाम लिया करता था। उसे मालूम था कि आपत्ति आने पर भगवान् सहायता देता हे अतएव उसने भगवान् की खुशामद करके भगवान् को राजी

रखना उचित समझा। जिस प्रकार लोक–व्यवहार मे अपना मतलव निकालने के लिए दूसरो को प्रसन्न रखना पडता है उसी भाव से हाथी भगवान को खुश रखने लगा।

जैसे लोग अच्छे से बडे मकान मे दिखावट के लिए थोडा सा फर्नीचर रख छोडते हे, उसी प्रकार कई लोग अच्छा दिखने के लिये समाज मे मान–सम्मान बढाने के लिए "धर्म" करते हें पर यदि धर्म न करेगे तो अच्छे न दिखेगे। लोग हृदय से हमारा आदर नही करेगे इस प्रकार के विचार से प्रेरित होकर वे धर्म कर लिया करते हें जैसे मकान को अच्छा दिखाने के लिये थोडा सा फर्नीचर रख लिया जाता हे। मगर सच्चा धर्मिष्ठ पुरुष ऐसा विचार नही करता। उसका विचार इससे भिन्न होता है ओर अन्यान्य सासारिक व्यवहार फर्नीचर के समान होता हे। अर्थात वह धर्म को मुख्य ओर अन्य व्यवहारो को गोण समझता है। हाथी सजावट के लिए फर्नीचर रखने वालो मे से एक था।

एक दिन हाथी पानी पीने गया। वहा एक मगर ने उसका पाव पकड लिया। मगर उसे गहरे पानी की ओर ले गया। यद्यपि हाथी भी वलवान था उसने अपना पाव छुडाने के लिए पूरा जोर लगाया लेकिन जिसका जोर जहा के लिए होता हे उसका जोर वही चलता हे। हाथी स्थलचर प्राणी हे इसलिए उसका जोर जितना स्थल पर काम आ सकता हे उतना जल पर काम नही आ सकता। दोनो की खीचातानी हुई लेकिन मगर जल का जीव था उसका बल जल मे सफल हो रहा था। उसके आगे हाथी की एक न चली ओर वह उसे खींच ले चला। हाथी जब खीचने लगा ओर अपनी सारी शक्ति लगाकर निराश हो गया तो उसे भगवान याद आये। आखिर ऐसे ही अवसर के लिए तो उसने इतने दिनो तक भगवान् की खुशामद की थी। वह पुकारन लगा–प्रभो! मुझे वचाओ। मगर मुझे लिए जाता ह। वह मुझ मार डालगा। त्राहि! त्राहि! मा त्राहि!

हाथी इस प्रकार आर्त्तनाद करके भगवान को वहुत पुकारा पर भगवान तक या तो उसकी पुकार पहुची नही या भगवान ने उस पर ध्यान नही दिया। तव वह मन म सोचन लगा– 'मने सुना था भगवान भीड पडन पर भक्त का भय हटान क लिय भाग–भाग आत हें पर यहा तो उनक आने का कुछ चिन्ह नही दिखाई दता। म वरावर परमात्मा की पुकार कर रहा हू, फिर भी मगर मुझ खींच ही लिय जा रहा ह। इस समय भगवान न जान सो [illegible] ह या कहा चल गय ह। जान पडता ह म धोख म रहा। मॅन भगवान [illegible] करके वृथा उनकी खुशामद की।

[illegible]

से प्रेरित होकर करो। अपनी अमूल्य धर्म–क्रिया को लौकिक लाभ के लघुत्तर मूल्य पर न बेच दो। चिन्तामणि रत्न को लोहे के बदले मत दे डालो।

'चाहे फासी पर लटका दो' यह पद चाहे आधुनिक वातावरण को लक्ष्य करके कहा गया हो, पर हमारे लिए तो हमारे ही शास्त्रो मे इसके प्रमाण मौजूद हैं। गजसुकुमार मुनि के सिर पर अगारे रखे गये अनेक मुनियो को कोल्हू मे पेरा गया, फिर फासी पर लटकाने मे क्या कसर रह गई? इतने उज्ज्वल उदाहरण विद्यमान होने पर भी आप धर्म मे बनियाई चला रहे हैं।

हाथी ने मगर से कहा–' मुझ मे भक्ति है या नहीं इसकी परीक्षा तू ही कर रहा है। तू ही है जिससे मेरी भक्ति की परीक्षा होगी। जा ले जा और खा ले । मैं अब अपना बल न लगाऊगा ।'

हाथी ने अपना बल लगाना छोड दिया। खीचातानी बन्द हो गई। हाथी ने कहा– 'प्रभो! भले ही मेरा शरीर चला जाय पर तू न जाने पाय। मैं यह शरीर देता हू और उसके बाद ले, तुझे ले जाता हू।

इस प्रकार विचार कर हाथी ने भगवान् के नाम का उच्चारण किया कि उसी समय हाथी मे एक प्रकार का अनिर्वचनीय बल प्रकट हुआ उस बल के प्रभाव से हाथी अनायास ही छूट गया और विपत्ति से छूट कर आनन्द मे खडा हो गया । अपने यहा भी कहा है कि पाच ह्रस्व अक्षरो का उच्चारण करने मे जितना समय लगता हे, उतना ही समय आत्मा को मोक्ष प्राप्त करने मे लगता है।

हाथी मगर के फन्दे से छूट कर अलग जा खडा हुआ। वह सोचने लगा कैसी अद्भुत घटना है। मैं मगर से कहता हू – खा जा और वह मुझे छोड गया।

तात्पर्य यह है कि सासारिक बल को त्याग देने पर जो बल आता है वही बल आत्मबल है वही रामबल है वही भगवद्बल हे।

हमारे मन –रूपी हाथी को एक ओर काम क्रोध मोह रूपी मगर अपनी ओर खीचता है, दूसरी ओर अहकार खीच रहा है। हमारे हृदय मे यह खीचातानी जब तक मची रहेगी तब तक आत्मबल का प्रादुर्भाव न होगा। काम क्रोध की यह लडाई आसुरी लडाई हे। इस लडाई के घट जाने पर ऐसा बल उत्पन्न होता है जिसका सामना कोई नही कर सकता और जिसका शब्दो द्वारा वर्णन नही किया जा सकता। यही बल आत्मबल हे।

पाठशाला मे पढाई होती हे। वहा शिष्यो की योग्यता के आधार पर अनेक कक्षाए होती हैं। अगर कोई बच्चा आकर कहे कि मैं पाठशाला म पढना चाहता हू पर दसवीं कक्षा की पढाई मुझ से न होगी तो उसे क्या उत्तर दिया

तुम्हारे पास धन की कमी है, तो चिन्ता करने की क्या बात हे? धन से बढ कर विद्या बुद्धि बल आदि अनेक वस्तुए हैं। तुम उनका दान करो। धन दौलत दान से विद्या दान ओर बल दान क्या कम प्रशस्त है? नहीं। तुम्हारे पास जो कुछ अपना कहने को है, जिसे तुम अपनी वस्तु कहते हो, उस सब का परित्याग कर दो--सब का यज्ञ कर डालो। इस सब ऊपरी बल से जब विमुख हो जाओगे तो तुम्हारी अन्तरात्मा मे एक अपूर्व ओज प्रकाशित होगा। वही ओज आत्मबल होगा।

मनुष्य इधर--उधर भटकता फिरता है--भौतिक पदार्थों को जुटा कर बलशाली बनना चाहता है। लेकिन वह किस काम आयेगा? अगर आख मे आन्तरिक शक्ति नही है। तो चश्मा लगाना व्यर्थ है। दूरबीन की शक्ति किसी काम की नही। इसी प्रकार आत्मबल के अभाव मे भौतिक--बल निरुपयोगी है। अरे बडे--बडे विशाल साम्राज्य भौतिक बल के सहारे कायम न रह सके। रावण जैसे पराक्रमी योद्धा को उसके भौतिक बल ने कुछ भी सहायता न पहुचाई। दुर्योधन की कोटि सेना का सारा बल कुण्ठित हो गया। तुम्हारे पास कितना सा बल है, जिसके कारण तुम फूले नहीं समाते।

आत्म बल को प्रकृति स्वय सहायता पहुचाती है। दन्तकथा प्रसिद्ध है कि एक बार बादशाह अकबर, महाराणा प्रताप की परीक्षा करने के लिए फकीर का भेष बना कर आया था, उस समय महाराणा को प्रकृति से सहायता मिली थी।

सुप्रसिद्ध वीर नेपोलियन के विषय मे भी प्रसिद्ध हे कि एक बार उसकी माता ने खर्च के लिए उससे रुपये मागे। नेपोलियन के पास उस समय रुपये न थे। उसे इतनी ग्लानि हुई कि वह डूब मरने के लिए नदी की ओर चलने लगा। उसी समय एक अपरिचित व्यक्ति ने आकर उसे रुपयो की थैली देते हुए कहा--'इसे लिये रहना, में अभी आता हू। 'रुपयो की थेली देकर वह सज्जन गया सो चला ही गया, लोट कर नही आया।

मित्रो! कोई केसी भी स्थिति मे क्यो न हो आखिर अपना पेट तो भरता ही है। अगर वह अपनी एक रोटी मे से एक छोटा सा टुकडा दान कर देता हे तो उसका दान धन्य हे। श्रीमान् के लाखो-- करोडा रुपयों के विराट दान की अपेक्षा उस गरीब का रोटी के एक टुकडे का दान अधिक महिमाशाली है। हे गरीव! तू क्यो चिन्ता करता हे? जिसके शरीर मे अधिक कीचड लगा होगा वह उतना ही अधिक उसे छुटाने का प्रयत्न करेगा। तू भाग्यशाली हे कि तेरे पेर मे कीचड अधिक नही लगा हे। तू दूसरा स ईर्ष्या क्या करता ह?

पर यह रथ किसी को नही मिला। मगर तप के प्रताप से आज यह रथ आपको भेट किया जाता है।

इस कथन मे अलकार– भाषा का प्रयोग हे। वस्तुत यह शरीर ही रथ है और इस रथ मे जुतने– वाली इन्द्रिया है। तप के प्रभाव से अर्जुन को एक विशिष्ट प्रकार के रथ की प्राप्ति हुई जिसमे तपोधनी ही बैठ सकते हैं।

चक्रवर्ती भरत महाराज के पास सेना, अस्त्र–शस्त्र और शरीर के बल की कमी नहीं थी। लेकिन जब युद्ध का समय आता था, तब वे तेला करके युद्ध किया करते थे। इसका तात्पर्य यह हुआ कि तेला का बल चक्रवर्ती के समग्र बल से भी अधिक होता है।

तप बडो ससार मे, जीव उज्ज्वल होवे रे।
कर्मों रूपी इधन जले शिवपुर नगर सिधावे रे।। तप०।।
तपस्या सू देव सेवा करे, घरे लक्ष्मी पिण आवे रे।
ऋद्ध वृद्ध सुख सम्पदा आवागमन मिटावे रे।। तप०।।

तप की महिमा कहा तक कही जाये। ससार मे जो भी शक्ति है वह तप की ही है। ससार तप के बल पर ही ठहरा हुआ है।

आज खान–पान सम्बन्धी तृष्णा बढ गई है लोग जिह्वा को अपने वश करने के बदले जिह्वा के वश हो रहे हैं। इसी से तप–बल भी कम हो गया है और इसी से ससार कष्ट भोग रहा हे। जो स्वेच्छापूर्वक समभाव से कष्ट नही भोगते, उन्हे अनिच्छा से, व्याकुल भाव से कष्ट भोगना पडता है। स्वेच्छापूर्वक कष्ट भोगने मे एक प्रकार का उल्लास होता है ओर अनिच्छापूर्वक कष्ट भोगने मे एकान्त विषाद होता है। स्वेच्छापूर्वक कष्ट सहने का नतीजा कटुक होता हे।

तप एक प्रकार की अग्नि हे जिसमे समस्त अपवित्रता सम्पूर्ण कल्मष एव समग्र मलिनता भस्म हो जाती हे। तपस्या की अग्नि मे तप्त होकर आत्मा सुवर्ण की भाति तेज से विराजित हो जाती है। अतएव तप–धर्म का महत्व अपार हे।

इन तीन धर्मो का आचरण करके भावना को पवित्र बनाना भावधर्म हे। भावधर्म व्यापक धर्म हे। वह प्रथम के तीन धर्मो मे भी विद्यमान रहता हे। भावधर्म के अभाव मे उक्त तीनो धर्मो का भी अभाव हो जाता हे। अतएव भाव शुद्धि की अनिवार्य आवश्यकता हें। इस प्रकार चारा धर्मो को धारण करके अपने जीवन को सफल बनाओ। इसम ही कल्याण हे।

महावीर भवन दहली– ता0 9–5–31

लिया जाये तो अनेक आलोचको को वृथा श्रम नही करना पडेगा। वे स्वय भ्रम से बचेगे और जनता को भी भ्रम मे पडने से बचा सकेगे। अस्तु।

ससार –अवस्था के छहो भाई और इस समय एक ही गुरु के छहो शिष्यो दो–दो के सघाडे से देवकी रानी के घर भिक्षा के लिए पधारे। यह छहो मुनिराज अपने गुरु से आज्ञा लेकर बेले–बेले से पारणा किया करते थे। दो दिन के उपवास के बाद पारणा करना और फिर दो दिन उपवास करना, इसी क्रम से उन मुनियो की तपस्या चल रही थी। फिर भी वे स्वय गोचरी करने जाते थे। ससार – अवस्था मे बडे कुलीन और धनवान् थे। प्रत्येक 32–33 करोड मोहरो के स्वामी थे। पर उन मोहरो को तृण की तरह तुच्छ समझ कर उन्होने त्याग दिया। जो मनुष्य इतनी महान् ऋद्धि का त्याग कर सकता है, वह क्या कभी रोटी के टुकडो के लिए लालायित होगा? कदापि नही।

द्वारका नगरी बहुत लम्बी– चौडी थी। मुनि किसी के भी घर गोचरी करने जा सकते थे। पर गजसुकुमार को घडने के लिए एक अदृश्य शक्ति काम कर रही थी। उसी शक्ति की प्रेरणा से छहो मुनि देवकी के घर दो–दो तीन सघाडो मे गये।

मुनियो का अभिग्रह भिन्न–भिन्न होता था। एक को दूसरो के अभिग्रह का पता तक नही चलता था। वे दो–दो साथ होकर गोचर के लिए जाते थे। एक युगल कहा –किस घर मे गोचरी के लिए गया सो दूसरे युगल को मालूम नही होता था। उस दिन सयोगवश तीनो युगल देवकी के घर गोचरी करने जा पहुचे।

जो युगल सब से पीछे देवकी के यहा गया था उसके दोनो मुनियो को देख कर देवकी ने उनसे कहा– 'मुझे एक विचार आ रहा हे। अगर आपकी स्वीकृति हो तो वह प्रकट करू। मे आशा करती हू, आप मेरी बात का उत्तर अवश्य देगे।

मुनि बोले–आप जो कहना चाहती हैं नि सकोच होकर कहिए।

देवकी–' इस द्वारका नगरी मे लाखो आदमी धर्म की सेवा करने वाले और सन्तो की सेवा करने वाले मोजूद हे। मेरा कृष्ण भी राज्य करता हुआ धर्म का प्रचार कर रहा हे। ऐसा होते हुए भी मुझे आज यह विचार आ रहा हे कि द्वारकावासी इतने अनुदार ओर धर्मविमुख क्यो हो गये हें? उनकी धर्म–भावना ओर दानशीलता कहा चली गई हे? अगर ऐसा न हाता ता मुनियो को अपने नियम के विरुद्ध एक ही घर बार–बार भिक्षा के लिय क्या

ा पडता है? मैं अपना अत्यन्त अहोभाग्य मानती हू कि मुनिराज मेरे यहा
ारी के लिए पधारे, मगर नगरनिवासी– जनो मे क्या इतनी भी भक्ति नही
कि मुनियो को आहारदान दे सके।

प्रजा मे यदि धर्म–भावना कम हो जाए तो राजा को समझना चाहिए उसमे धर्म भाव कम हो गया है। प्रजा अगर मुनि का आदर नही करती ो राजा को समझना चाहिये कि वह स्वय मुनियो का आदर नही करता। ा के पाप का प्रभाव प्रजा पर पडे बिना नही रहता। राजा मे जब तक । की बुद्धि न आये तब तक प्रजा मे पाप–बुद्धि नही आ सकती। अतएव यह जानना चाहती हू कि मुनि मेरे यहा किस कारण से बार–बार गोचरी रने पधारे है? मेरी स्पष्टता के लिये मुझे क्षमा कीजियेगा।

मुनियो को देवकी की बात सुनते ही यह समझने मे विलम्ब न लगा ; हमारे चार भाई पहले यहा गोचरी के लिये आ चुके हैं और इसी कारण ाकी के दिल मे यह बात पैदा हुई है। अतएव वे बोले–'जहा रानी के चित्त इतनी अधिक धार्मिक भक्ति विद्यमान है, वहा की प्रजा धर्म से विमुख कैसे सकती है ? जहा लौकिक धर्म मे भी किसी प्रकार की त्रुटि होने नही पाती, हा आत्मिक धर्म मे कैसी कमी हो सकती है? महारानी नगर वासियो मे धर्म म की कमी नही हुई है और न हम बारम्बार आपके यहा आये हैं। पहले ो यहा आये होगे वह हमारे साथी दूसरे मुनि थे। हम दूसरे हैं। वे हम नही और हम वे नही हे।

देवकी– मुनिराज? आपका स्पष्टीकरण सुनकर मुझे सतोष है। ापका और उनका रूप–रग आदि सब समान है। यही देख कर मैंने समझा ा कि वही–वही मुनिराज मेरे घर पुन–पुन आ रहे हैं। आप सब महाभागी ुनियो का एक सा रूप यौवन देख कर मै चकित रह जाती हू। वह कौनसी ुण्यशालिनी और सोभाग्य–भागिनी माता होगी जिसने आप सरीखे सुपुत्रो को जन्म दिया है? आप छहो भाई–भाई जान पडते हैं–जब आप सब ने मुनि दीक्षा धारण की होगी तद उस माता के अन्त करण की क्या दशा हुई होगी? आपके वियोग का उन्नन किस प्रकार सहन किया होगा? मैने आपको थोडी–सी देर देखा है फिर भी मर हृदय मे भक्तिभाव के अतिरिक्त वात्सल्य का भाव उमड रहा है। मै न जाने किस अनिर्वचनीय अनुभूति का आस्वादन कर रही हू। तद आपका जन्म दने वाली माता की क्या अवस्था होगी? आपके माता–पिता न किस हृदय स आपको दीक्षा धारण करने की आज्ञा दी होगी? आपका सयम–पालन की आज्ञा देने वाले वे केसे होगे? उनका हृदय न जाने

कैसा होगा? प्रथम तो इस अवस्था मे ही सयम होना दुष्कर कार्य है, तिस पर दिव्य रूप सम्पत्ति के होते हुए सयम अगीकार करना तो ओर भी कठिन है।

आपका रूप–रग कृष्ण से जरूर मिलता हे। कृष्ण के अतिरिक्त मुझे तो कोई और दिखाई नही देता, जिसके साथ आपके रूप की सदृशता हो सके । कृपा कर मुझे बतलाइए कि आपका जन्म कहा हुआ था? आपके माता–पिता का क्या नाम था? और आपके घर की क्या स्थिति थी ? आपने किस तात्कालिक कारण से सयम स्वीकार किया है?

साधारणतया कोई भी शिष्ट पुरुष आत्म–प्रशसा नहीं करता। फिर मुनिराज अपनी प्रशसा आप कैसे कर सकते हैं? फिर भी जहा परिचय देना आवश्यक हो और उस परिचय मे ही प्रशसा सी ओत–प्रोत हो तो क्या उपाय है? अतएव मुनि बोले– महारानी, भद्दलपुर नामक नगर मे हमारा जन्म हुआ था। हमारे पिता का नाम गाथापति नाग था ओर माता का नाम सुलसा था। हम छहो मुनि उन्ही के अग–जात है। हमारा जन्म होने पर माता–पिता ने लोकोचित सभी सस्कार व्यवहार किये। छहो भाइयो का बडे बडे धनाढ्य सेठो ने अपनी–अपनी कन्याए प्रदान कीं।

कुछ दिनो के अनन्तर भद्दलपुर मे भगवान अरिष्टनेमि पधारे। भगवान के प्रवचन को श्रवण करने का सौभाग्य मिला। उस प्रवचन के श्रवण से हमारा विवेक जागृत हुआ। लगा कि ससार जल के बुलबुले के समान क्षणभगुर एव निस्सार है। इस विरक्त भावना से प्रेरित होकर हमने भगवान् अरिष्टनेमि के चरण–शरण मे जाकर दीक्षाग्रहण कर ली है। हम शरीर मे रहते रहते घबरा उठे हैं चाहते हैं कि इस सुन्दर शरीर से सिद्ध होने वाले प्रयोजन को साधकर इसका भी परित्याग कर दे। अतएव हम छहो ने बेले– बेले पारणा करने का निश्चय किया है। यो तो भगवान् के अनुग्रह से स्थविर मुनि की सेवा मे रह कर हमने बारह अगो का अध्ययन किया हे और श्रुत– केवली हुए है, परन्तु पूर्वार्जित कर्मो का क्षय करने के लिए इस विशेष तपस्या को अपनाया हे।

मित्रो! मुनियो के इस कथन से स्पष्ट होता हे कि श्रुतकेवली भी तपस्या करते है। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि तप का कितना माहात्म्य हे? तप का वर्णन किया जाए तो वाणी को कभी विश्राम न मिले और फिर भी तप का वर्णन अधूरा ही रह जाये । आजकल के अधिकाश लाग तप के प्रति अभिरुचि से हीन हें ओर खाने–पीने को ही जीवन का आधार वनाए वेठे हे। परन्तु उन्हे याद रखना चाहिए कि तप भी शरीर का आधार

है। शरीर को रखने के लिए तप की भी आवश्यकता है। अनेक यूरोपीय चिकित्सक शारीरिक व्याधियो का निवारण करने के लिए उपवास चिकित्सा–पद्धति का आश्रय लेते हैं और उपवास भी तप का एक अग है।

मगर जैन–समाज आजकल भी अपनी परम्परा निभाये जा रहा है। उसमे आज भी अनेक विकट तपस्वी मौजूद हैं। इन तपस्वियो को देखकर अनुमान किया जा सकता है कि पचम काल मे,हीन सहनन वाले इस युग मे भी ऐसे–ऐसे तपस्वी विद्यमान हैं, तो सुदृढ सहनन वाले समय मे तीर्थकर की मौजूदगी मे–चौथे आरे मे–भला कैसे उद्‌भट तपस्वी होगे।

जिस साल मैंने जलगाव मे चातुर्मास किया था, उस साल गाधीजी ने इक्कीस दिन का उपवास किया था। सुनते हैं किसी ने गाधीजी से प्रार्थना की कि आपका शरीर पहले से ही दुबला–पतला है। अब उपवास करके उसे अधिक सुखाना उचित नही है। अतएव यह उचित होगा कि आप उपवास करना छोड दे और उचित परिमाण मे भोजन किया करे।

गाधीजी ने क्या उत्तर दिया आप जानते हैं? उन्होने कहा –फिर यो कहो कि जीना ही छोड दो।

गाधीजी के उत्तर का आशय स्पष्ट है कि मैं भोजन पर ही नही जी रहा हू, बल्कि उपवास पर भी जी रहा हू।

भोजन ही अगर शरीर का आधार है तो आप आठो प्रहर खाते क्यो नही रहते ? अगर आप आठो प्रहर खाते रहे तो जानते हैं उसका फल क्या होगा?

'मौत हमे खा जायेगी।

अधिकाश रोगी भोजन करने से ही रोगी होते हैं। वैद्यो, हकीमो और डॉक्टरो की सख्या मे दिनो–दिन जो वृद्धि हो रही है उसका प्रधान कारण भोजन के प्रति असावधान रहना ही है– भोजन जीवन का साथी बन गया है अतएव भोजन ने अपने साथी रोग को भी जीवन का सहचर बना रखा है। लोग खाने मे गृद्ध हैं और शरीर को चिकित्सको के भरोसे छोड रखा है। इस भावना ने इस लोक को भी बिगाड रखा हे और परलोक को भी। इस भोजन के भूत ने बहुत कुछ चौपट कर दिया है।

तात्पर्य यह हे कि तप दोनो लोको मे से किसी भी लोक के लिये निरर्थक नही हे। उससे इस लोक मे भी लाभ होता है और परलोक मे भी कल्याण होता हे। देवकी के घर आये हुये महात्मा इसी कारण बेले–बेले पारणा करते थे। सयम और ब्रह्मचर्य की पूर्ण साधना–तप के बिना नही हो सकती।

उन मुनि ने कहा– हम छहो भाई बेले–बेले का पारणा कर रहे हैं। आज हमारे पारणे का दिन था, अतएव दिन के प्रथम प्रहर पश्चात भगवान् की आज्ञा लेकर छहो भाई तीन सघाडो मे विभक्त होकर, पृथक्–पृथक् भिक्षा के अर्थ नगरी मे निकले। यद्यपि चलते समय आपके यहा आने का कोई इरादा नही किया था, फिर भी फिरते–फिरते आपके भाग्य से यहा पहुचे हैं। द्वारका मे मुनियो के लिए भिक्षा की कोई कमी नही है और हम लोग दूसरी या तीसरी बार यहा नहीं आये हैं। देव योग से ही सब तुम्हारे यहा आ गये हैं।

इतना कह कर मुनि वहा से चल दिये। देवकी विस्मित – भाव से उन मुनियो की ओर देखती रही।

जब मुनि थोडी दूर चले गये तब देवकी सिहासन पर बैठकर सोचने लगी कि मुझे इस बात मे किचित् मात्र भी सदेह नहीं है कि–

जो भाषे वर कामिनि, जो भाषे अणगार।
जो भाषे बालक कथा सदेह नही लगार।।

चाहे सुमेरु डिग जाए पर सत्यवती स्त्री की कही हुई बात मिथ्या कदापि नही हो सकती। इस प्रकार जिन्होने मन, वचन, कार्य से मिथ्या भाषण का परित्याग कर पूर्ण रूप से निरवद्य सत्यभाषण का व्रत ग्रहण किया हे उन अनगार महात्माओ के मुख से निकली हुई बात भी सत्य ही होगी। छल–कपट से अनभिज्ञ, सरल–हृदय बालक भी जो बात कहता हे वह झूठी नही हो सकती।

ऐसा होते हुए भी मेरे मन मे एक सदेह हो रहा हे। जब मैं अपने पिता के घर थी तब मेरे चचेरे भाई जो मुनि हो गए थे और जिनका नाम अतिमुक्तक था एक बार गोचरी के लिए पधारे थे। उस समय मेरी भोजाई कस की पत्नी ने अभिमान दिखाते हुए कहा था कि तुम राजवश मे उत्पन्न हो कर भी भिक्षुक हुए हो। क्या भीख माग कर खाना क्षत्रिय का धर्म हे? तुम्हारा यह वेश देख–देख कर हमे लाज लगती हे। इसे छोडो राजोचित वस्त्र–भूषण धारण करो। भोजाई की यह बात सुनकर उत्तर देते हुए मुनिराज ने मेरे आठ अनुपम पुत्रो के होने की बात कही थी। वह बात कैसे मिथ्या ठहर रहीं हे? में अपन आपको भाग्यशालिनी मानती थी–पर नही भाग्यशालिनी माता वह जिसने छ मुनियो को अपनी कोख से जन्म दिया हे। म भला काहे की भाग्य–शालिनी हू, जिसने अपने पुत्रो को जन्म देकर भी उनका मुख न देख पाई। उस समय मुख देखती भी क्या? जानती थी दूसरे क्षण वे यमराज क अतिथि बनन जा

रहे है। उस दशा मे भला मुख देखकर क्यो अपने हृदय को जलाती? हे परमात्मा । वह समय स्मरण आते ही अब रोम–रोम थर्रा उठता है।

इस प्रकार देवकी अपने अभाग्य पर देर तक विचार करती रही और मन ही मन सुलसा के सौभाग्य की सराहना करती रही, जिसने साकार सौन्दर्य के समान छह सुयोग्य पुत्रो को जन्म दिया।

विचार करते–करते उसे ध्यान आया कि इस समय भगवान् श्री अरिष्टनेमि यही विराजते हैं। वे सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् समस्त सन्देहो का निवारण करने मे सर्वथा समर्थ हैं। मैं सन्देह के जाल मे क्यो फसी रहू जब कि उसे निवारण करने का सुगम उपाय मौजूद है। कहा भी है–

सशयात्मा विनश्यति।

हृदय मे जब एक बार सशय रूपी शल्य चुभ जाय तो उसे जितनी जल्दी हो सके निकाल फैंकना चाहिये। अन्यथा वह शल्य हृदय मे चुभता रहता है और बुद्धि को भ्रान्त बना कर जीवन को विनाश के मार्ग मे ले जाता है।

सन्देह आग के समान है। जब वह हृदय मे भडक उठता है तो मनुष्य की निर्णायक शक्ति उसमे भस्म हो जाती है और मनुष्य किकर्तव्य–विमूढ हो जाता है। अतएव सशय का अकुर फूटते ही उसे शीघ्र समाधान के द्वारा हटा देना चाहिये। समय पर सशय न हटाया गया और वह बढता गया तो उससे इतनी अधिक कालिमा फैलती है कि अन्त करण अन्धकार से पूरित हो जातै है और आत्मा का सहज प्रकाश उसमे कहीं विलीन हो जाता है।

देवकी ने निश्चय कर लिया कि मैं अपने सशय के विषय मे भगवान् अरिष्टनेमि से अवश्य पूछूगी। उसने विलम्ब नहीं लगाया और रथ मे बैठकर भगवान के समीप पहुची। वहा पहुचते ही उसने विधि के अनुसार भगवान् का वन्दना–नमस्कार किया।

भगवान सर्वज्ञता के धनी थे उन्होने देवकी के सशय के विषय को पहले ही जान लिया था। अतएव उन्होने देवकी से कहा– 'देवकी आज तुम्हारे यहा छ मुनि तीन बार आहार लेने गये थे। उन्हे तुमने आहार दान दिया था? और तुम्हारे मन मे मुनि अतिमुक्तक के कथन के प्रति सदेह उत्पन्न हुआ था? तुमने अपने आपको भाग्यहीन ओर सुलसा को सोभाग्यशालिनी समझा था?

भगवान की बात सुनकर देवकी दग रह गई। वह कहने लगी– पभो! आपसे कोन–सा रहस्य छिपा हे? आप सभी कुछ जानते हें। आपने मेरे

मन के विचारो को जान लिया है। में आपकी सेवा मे उपस्थित हुई हू, कृपया मेरा सशय निवारण कीजिए।'

भगवान् ने कहा – देवकी, तुम निश्चय समझो यह पुत्र सुलसा के नही हैं तुम्हारे ही हैं। तुम और सुलसा एक ही साथ गर्भवती होती थी। दोनो के गर्भ मे साथ ही साथ बालक भी बढते थे। सुलसा को एक निमित्तवेत्ता ने बताया था कि तुम्हारे उदर से मृत बालको का जन्म होगा। निमित्तवेत्ता का वृत्तान्त सुनकर सुलसा को बहुत चिन्ता हुई। वह सोचने लगी, इससे ससार मे मेरा बडा अपयश होगा और मेरे पति सन्तानहीन रहेगे। इससे मुझ पर उनका ऋण रह जायेगा। मैं भी सन्तान के सुख से वचित रहूगी। इस चिन्ता का निवारण करने के लिए सुलसा ने हिरणगमेषी देव की तेला द्वारा आराधना की। सुलसा की तपस्या के प्रभाव से देव आया और सुलसा ने अपनी चिन्ता का कारण उसे सुनाया। सुलसा की बात सुनकर हिरणगमेषी देव ने कहा–'मृत पुत्रो को जीवित करना मेरी शक्ति से परे है। हा, मैं इतना करूगा कि तुम्हे ऐसे पुत्र दूगा जैसे त्रिलोक मे भी दुर्लभ है।'

भगवान् ने अपना कथन चालू रखते हुए कहा–देवकी, तुम्हारे और सुलसा के गर्भ के बालक एक ही साथ उत्पन्न होते थे। पुत्र के प्रसव के समय तुम आख मूद लेती थी। उसी समय हिरणसगमेषी देव सुलसा का मृत पुत्र लाकर तुम्हारे पास रख देता था और तुम्हारा जीवित पुत्र ले जाकर सुलसा को सौंप आता था। तुम उस मृत पुत्र को आखे मूदे ही मूदे कस को सौंपने के लिए राजा वासुदेव को देती थी और वासुदेव भी बिना बालक पर दृष्टि डाले कस के हवाले कर देते थे। अतएव तुम्हे यह पता नहीं चलता था कि बालक जीवित है या मृत है?

कस उन मृत पुत्रो को देख कर अपने पुण्य के प्रकर्ष पर फूला नही समाता था। वह सोचता था धन्य हे मेरा पुण्य जिसके प्रताप से मुझे मारने वाले स्वय मरे हुये पैदा होते हें। मैं कितना तेजस्वी हू कि बिना हाथ उठाये ही ये बालक अपने आप काल के गाल मे समा जाते हैं।

कस के चापलूस सरदार कहा करते थे– आपके भय के मारे देवकी पीपल के पत्ते की तरह कापती रहती है वह सदा भय–विह्वल रहती हे और उसी भय के कारण बालक गर्भ मे मर जाते हैं।

कस बालको को मरा हुआ देखता था फिर भी उसे सताेष नहीं हाता था और वह उन बालको को भी पेर पकड कर पछाड डालता था।

देवकी इस प्रकार तुम्हारे सब बालक सुलसा के यहा चले गये थे। वही यह बालक है। अतिमुक्तक मुनि की बात सत्य है मिथ्या नही।

भगवान् का कथन सुनकर देवकी के आनन्द का पार न रहा। भगवान् को उसने वन्दना की और वहा पहुची जहा वे छह अनगार थे यद्यपि ये मुनि वही थे जो देवकी के घर भिक्षा के लिये गये थे और जिन्हे देवकी ने अपने घर पर देखा था। देवकी भी वही थी फिर भी उसकी तब की दृष्टि से अब की दृष्टि मे बडा अन्तर था। उस समय सिर्फ भक्ति का भाव था ओर इस समय वात्सल्य की प्रबलता थी। ज्यो ही मुनियो पर उसकी नजर पडी उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। आन्तरिक प्रसन्नता के कारण शरीर फूल गया यहा तक कि उसकी चोली फट गई और उसके स्तनो से दूध की धारा बह निकली। देवकी की बाहे ऐसी फूली कि चूडिया भी छोटी पडने लगी। देवकी उस समय बेमन थी। वह भूल गयी थी कि मैं साधुओ के सामने हू पुत्रो के सुख से वचिता देवकी को अचानक पुत्र प्राप्त होने पर और उनके असाधारण रूप सम्पति से समृद्ध होने के कारण वह लोक व्यवहार की भी परवाह न करती हुई एकटक दृष्टि से मुनियो की ओर देखती रही।

मित्रो। देवकी के व्यवहार पर विचार करो तो प्रतीत होता है कि ससार के समस्त सबन्ध कल्पना के खेल हैं। देवकी पहले भी मुनियो की माता थी मगर उस समय उसे इस बात की कल्पना नही थी। भगवान् के कथन से उसे ख्याल आया तो वह स्नेह से पागल हो उठी। वस्तुत ससार मे अपना क्या है? कुछ भी नहीं । जिसे अपना मान लिया जाता है, वही अपना है। जिसे अपना न समझा वह पराया है। जो कल तक पराया था वही आज अपना बन जाता है और जिसे मान कर स्वीकार किया जाता है वह एक क्षण मे पराया बन जाता है अतएव अपने-पराये की व्यवस्था केवल कल्पना है। तत्वज्ञ पुरुष इस कल्पना का रहस्य समझ कर वैराग्य धारण करते है।

देवकी बहुत समय तक मुनियो की ओर टकटकी लगा कर देखती रही। जब उसके स्नेह का नशा कुछ कम हुआ तो उसने सोचा- अब कहा तक मैं इन्हे देखती रहूगी आज मेरा सौभाग्य फला-फूला है कि मैं ऐसे सुयोग्य सुन्दर एव सयमशील साधुओ की माता बनी हू। मेरा भाग्य धन्य है मैं कृतार्थ हुई। इन्हे भी धन्य है जो इस वय मे महान् एव प्रशस्त कार्य मे लगे हुए है।

इस प्रकार विचार कर देवकी अपने घर लोटी। उसके मन मे कुछ विषाद कुछ सतोष का विचित्र सम्मिश्रण हो रहा था। दोनो के द्वन्द्व के कारण देवकी का दिल उदास खिन्न और अशान्त बना हुआ था।

घर आते ही देवकी चिन्ता मे डूब गई। भोजन के अभाव मे भूख सहन करना सरल है पर जब भोजन सामने रखा हो उस समय उसे सह लेना बडा कठिन है। वह सोचने लगी– मेरे सौभाग्य पर दुर्भाग्य की कैसी काली छाया पडी हुई है! असाधारण पुत्र रत्नो को जन्म देकर मेरा सौभाग्य कितना ऊचा है, पर हाय! उन्हे जन्म देना न देने के समान हो गया। सात पुत्रो का मैंने प्रसव किया मगर एक के साथ भी मैं मातृधर्म का निर्वाह न कर सकी।

मैं शिशुओ के सरल और स्वच्छ स्मित से अपना मातृत्व सार्थक न कर पायी! उनकी अस्फुट तोतली वाणी सुन कर अपने श्रुतिपुटो मे अमृत न भर पायी। डगमगाती चाल देखकर नेत्रो का सार्थक न किया।

माता के हृदय मे एक प्रकार की अग्नि जलती रहती हैं जो पुत्र–वात्सल्य से शान्त होती है वह अग्नि आज भी मेरे हृदय मे धधक रही है। मैंने अपने बालको को अपने स्तनो का पान भी नहीं कराया, जिससे कि उनमे मैं अपनी आत्मीयता स्थापित कर पाती।

मै हतभागिनी हू। मुझ–सी माता इस मही –मडल पर दूसरी कौन होगी? मेरे सात पुत्र जन्मे। उनमे से छह तो सुलसा के यहा चले गये और सातवे पुत्र कृष्ण को यशोदा के घर गोकुल मे भेज देना पडा। इस प्रकार मैं अपनी सतान के साथ मातृधर्म का जरा भी पालन न कर सकी।

देवकी की इस चिन्ता मे एक ओर मोह की चेष्टा दिखाई देती हे ओर दूसरी ओर कर्त्तव्य पालन की चेष्टा। माता का पुत्र पर मोह होता अवश्य हे पर वह बालक की जो सेवा करती है वह मोह से प्रेरित होकर नही, किन्तु करुणा की प्रेरणा से। बालक पर करुणा करना वह अपना कर्त्तव्य समझती है। ज्ञातासूत्र मे मेघकुमार के अधिकार मे यह बात स्पष्ट की गई हे।

देवकी की चिन्ता मे मोह की चेष्टा का अभाव हे, यह तो कहा नही जा सकता लेकिन उससे एक बात लक्षित होती है। वह यह हे कि देवकी सोचती है– या तो पुत्र उत्पन्न ही न करके ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना चाहिए था और जब मैंने बालक उत्पन्न किये हैं – मोह का पाप किया है–तो उनका पालन–पोषण करके उन पर दया भी करनी चाहिए थी जिससे वह मोहजन्य पाप कम हो। माता पुत्र की सेवा करके उसे जन्म देने के पाप को कम करती हे। देवकी सोचती है – मैंने जन्म देने का पाप तो किया लेकिन उस पाप का प्रायश्चित के रूप मे उनके पालन –पोषण की दया नही की अतएव मेरे जन्म को धिक्कार है मैं वसुदेव की प्रियतमा रानी और कृष्ण की आदरणीय माता होकर भी हतभागिनी हू– पुण्यहीना हू!

महापुरुषो की चिन्ता निष्फल नही जाती । देवकी की चिन्ता व्यर्थ न हुई। देवकी चिन्तामग्न बेठी ही थी कि इसी समय कृष्ण जी महाराज उनकी चरण–वन्दना के लिए आ उपस्थित हुए।

महाराज कृष्ण भरतक्षेत्र के तीन खडो के नाथ हैं। महापुरुषो मे जितनी ख्याति कृष्ण की है उतनी किसी दूसरे महापुरुष की नही है भले ही ख्याति के विषय और क्षेत्र पृथक–पृथक हो। किसी न किसी रूप मे हर एक व्यक्ति कृष्णजी को मानता ही है। जेनधर्म मे भी कृष्ण जी को 'पुरुषोत्तम माना गया है। कृष्ण जैसे महापुरुष भी अपनी माता को प्रतिदिन प्रणाम करते हैं लेकिन आजकल के अनेक पुत्र अपनी जन्म देने वाली–दुष्करकारिणी माता को भी अपमानित करने से नही चुकते है। माता जो दुष्कर कार्य अपने पुत्र को उत्पन्न करके करती है, वैसा कोई और नही कर सकता। अगर कोई कुलीन स्त्री से कहे कि हम हजार रुपये देने को तेयार हैं तुम हमारे बालक की अशुचि साफ कर दो, तो क्या वह स्त्री रुपयो के लोभ से ऐसा करने को तैयार होगी?

'नही।

किसी लोभिनी की बात निराली है। अन्यथा रुपया लेकर अशुचि उठाने के लिए शायद ही कोई स्त्री तैयार होगी। मगर वही प्रतिष्ठित और कुलीन स्त्री अपने बालक की अशुचि उठाने मे क्या तनिक भी शकित होती है?

'नहीं'

मल–मूत्र उठाने का उत्तरदायित्व माता का समझा जाता है। अगर किसी बालक ने कही मल–मूत्र कर दिया हो, तो उसकी सफाई के लिए उसकी माता की खोज की जाती है। माता बिना किसी सकोच के यह कार्य इतने प्रेम से करती है कि उतने प्रेम से शायद कोई दूसरा उसे नही कर सकता।

जब मेरे माता–पिता नहीं रहे थे तो मैं अपनी ननिहाल मे रहता था। मेरे सासारिक मामाजी सम्पन्न थे और प्रतिष्ठित भी थे। एक बार मेरी सासारिक मामीजी कार्यवश बाहर चली गई और अपनी छोटी लडकी को झूले मे सुला कर उसकी देखभाल की जवाबदारी मेरे सिर पर डाल गई। उस समय मैं बालक था। मामीजी की अनुपस्थिति मे उस लडकी ने अशुचि की। अशुचि करके वह रोने लगी और रोते–रोते उसने अपना सारा शरीर अशुचि से भिडा लिया। ऐसे मोके पर मैं देखते रहने के सिवाय और क्या कर सकता था?

मामाजी वहा आये। मैंने यह घटना उनसे कही। उन्होने लडकी को उठा लिया और धोने लगे। मामाजी उसे धोते थे ओर मैं पानी डालता था। मामाजी लडकी को धोते थे पर मुझ पर वे इतने क्रुद्ध हो रहे थे कि सब बातो के लिए मुझे ही दोषी बनाते जा रहे थे। उस समय उनकी मुख मुद्रा विचित्र थी। मामाजी की बाते सुन कर उस समय तो मुझे कुछ विचार नही आया, लेकिन आज सोचता हू कि जिसकी लडकी थी, वह पिता अशुचि साफ करने मे इतना घबराया तो दूसरा आदमी कितना न घबराएगा।

तात्पर्य यह है कि माता के समान पिता भी सन्तान का पालन पोषण नही कर सकता। माता भोजन कर रही हो और सन्तान उस समय अशुचि कर दे तो वह थाली एक ओर सरका कर उसी समय दौडेगी और बालक को पहले सभालेगी। यह समर्पण का भाव माता के सिवाय और किसमे है?

देवकी इसी मातृ–कर्त्तव्य का विचार करके चिन्तित हो रही है। उसे अपने कर्त्तव्य के पालन करने का अवसर नही मिला यह बात देवकी के दिल मे काटे की तरह चुभ रही है। यह कहा जा सकता है कि माता राग से प्रेरित होकर ही सन्तान की अशुचि उठाती है और उसका पालन–पोषण करती है, परन्तु मैं पूछता हू कि आप जो दान देते हैं या सामायिक करते हैं, सो क्या वीतराग बन कर करते हैं? राग तो दसवे गुणस्थान तक बना रहता है। हा वह राग प्रशस्त होता है वह विषयवासना के लिए नहीं होता। इसी प्रकार राग तो देवकी मे भी है, मगर वह राग विषय के लिए नहीं– कर्त्तव्य पालन के लिए है।

माता के असीम उपकार को ध्यान मे रखकर श्रीकृष्ण प्रतिदिन अपनी माता देवकी को प्रणाम करते थे। वास्तव मे सन्तान पर माता का असीम उपकार है। माता–पिता का इतना अधिक उपकार बताया गया हे कि यदि सन्तान अपने माता–पिता को कधे पर बेठाये फिरे तब भी वह उनके उपकार से उऋण नही हो सकता। भला जिन्होने तन दिया हे, तन को पाल–पोष कर सबल बनाया हे, जिन्होने अपना सर्वस्व सोप दिया हे उनके उपकार का प्रतिकार किस प्रकार किया जा सकता हे?

जब श्रीकृष्ण देवकी के समीप आये तो उन्होने देवकी को उदास पाया। उसे उदास देखकर श्रीकृष्ण जी कहने लगे–'माताजी मे नित्य आता था तब तो तुम बडे दुलार भरी हुई दृष्टि से मुझे देखती थी मेरे सिर पर हाथ फेरती थी और मुझे आशीर्वाद देती थी। मगर आज आपक मुख पर वह प्रफुल्लता नही है। वह शान्ति नही दिखाई दती। आप किस कारण स चिन्ता

मे डूबी हुई हो? आज आपने मेरी ओर आख उठाकर भी नही देखा जैसे मेरे आने की आपको खबर ही न पडी हो। कृपा कर मुझे समझाइए आपकी चिन्ता का कारण क्या है?

कृष्णजी की स्नेह और आदर से भरी बात सुनकर देवकी के दिल मे जो दु ख भरा हुआ था वह उबल पडा। उसके हृदय मे तूफान सा जाग उठा। वह रोने लगी।

श्रीकृष्ण–'माताजी आज मैं यह क्या देख रहा हू? आपके रोने का क्या कारण है? कृपा करके मुझे बतलाइए।

देवकी –'वत्स मैं अपने छह पुत्रो को मरा समझती थी पर ऐसी बात नही है। आज तुम्हारे वे छहो भाई यहा आये थे। वे भगवान् नेमिनाथ के समीप दीक्षित होकर मुनि बन गये हैं। भगवान् ने उनके विषय मे मुझे बताया कि वे मरे नही थे वरन् सुलसा के यहा बडे हुए है।' देवकी ने भगवान नेमिनाथ से सुना हुआ वृत्तान्त आद्योपान्त श्रीकृष्ण को कह सुनाया।

सोले वरस छाने पणे कन्हैयालाल,
तू बध्यो गोकुल माय रे गिरधारीलाल।
परब दिवस तुझ पारवती कन्हैयालाल,
आती दर्शन काज रे गिरधारीलाल।।
हू तुझ आयल सू कहू कन्हैयालाल
बीतग दुखडा नी बात रे, गिरधारीलाल।
दु खिनी तो जग मे छे घणी कन्हैयालाल।
पिण दु खिनी थारी माय रे, गिरधारीलाल।।

हे कन्हैया! मैं तुझे क्या बताऊ! तेरे सोलह वर्ष गोकुल मे बीते। जब मेरा मन नही मानता था, तब त्यौहार का मिष करके जाती थी और तुझे देख आती थी। यद्यपि तुम्हारे पिताजी अक्सर रोका करते थे कि बार–बार जाने से पुत्र के प्रगट हो जाने की आशका है, फिर भी मैं उनसे आज्ञा ले ही लेती थी। तुझे देख–देखकर मेरा हृदय तृप्त नही होता था। जब तेरे ऊपर नजर पडती तो मैं अपने आपको धिक्कारने लगती थी कि मैंने तुझे जन्म तो दिया है पर तेरे प्रति अपना धर्म का पालन नही किया। मातृ–कर्त्तव्य के पालन से मे वचित रही। इस प्रकार तुम्हारा पालन–पोषण तो गोकुल मे हुआ और वे छह पुत्र सुलसा के घर बडे हुए। यही सोच कर मेरा दु ख उमडा पडा है कि ससार मे मुझ सी दु खिनी माता दूसरी कौन होगी। मेरे दुर्भाग्य की बराबरी कोई नही कर सकता है। देव किसी को ऐसा दु ख नही देवे। ओह! सात पुत्रो

मे से किसी को भी खिलाने खेलाने नहलाने धुलाने का अवसर मुझे प्राप्त न हो सका। आज यह चिन्ता विशेष रूप से उमड पडी हे इसी कारण मेरा मन स्वस्थ नही है।'

श्रीकृष्णजी ने कहा–'माताजी, आप इसके लिए चिन्ता क्यो कर रही हें? यह तो बडी प्रसन्नता की बात है कि मेरे छह भाई कस का शिकार न बने ओर वे सकुशल जीवित हें। उन्हे तुम देख आई हो। वे भगवान् नेमिनाथ के चरणकमलो मे भ्रमर हैं। यद्यपि इस परिस्थिति मे माता के भावुक और कोमल हृदय को कष्ट पहुचना अस्वाभाविक नही हे, पर लीजिए मैं आपकी आकाक्षा पूरी करता हू। मैं छोटा सा बालक बनता हू, आप अपनी आकाक्षाए पूर्ण कर लीजिए।'

यह कह कर कृष्णजी बालक बन गये। देवकी को जाने मनमानी मुराद मिल गई। बडी प्रसन्नता के साथ उसने कृष्ण को नहलाया धुलाया खिलाया–पिलाया और कपडे पहनाये।

अन्त मे कृष्ण ने सोचा–माता का हृदय बच्चे से कभी तृप्त नहीं हो सकता। माता के हृदय मे बहने वाला वात्सल्य का अखड झरना कभी सूख नही सकता। वह सदैव प्रवाहित होता रहता हे। अग्नि जेसे ईंधन से कदापि तृप्त नही होती वरन् ईंधन पाकर वो अधिकाधिक प्रज्वलित होती हे उसी प्रकार माता का प्रेम सन्तान से कभी तृप्त नहीं होता। वह सन्तान पाकर निरन्तर बढता ही चला जाता हे। माता का प्रेम सदा अतृप्त रहने के लिए हे और उसकी अतृप्ति मे ही शायद जगत् की स्थिति हे। जिस दिन मातृ–हृदय सन्तान–प्रेम से तृप्त हो जायेगा उस दिन जगत् मे प्रलय हो जायेगा। मेरा कोई भी प्रयत्न उसे तृप्त नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त मेरे माथे पर इतनी अधिक जिम्मेदारिया है कि में अगर बहुत दिनो तक बालक ही बना रहू तो काम नही चलने का।

इस प्रकार सोच–विचार कर कृष्ण ने देवकी से कहा 'मेया मेया दूद (दूध) ला। में दूद पिऊगा।

देवकी के घर दूध की कमी नही थी। वह मुस्कराती हुई उठी ओर दूध लेकर आई।

तब कृष्ण बोले– 'दूद मे मीथा (मीठा) नहीं हे। यह तो फीका हे। इसमे थोरा सा मीथा और मिला।

देवकी ने दूध मे थोडी शक्कर ओर डाल कर कृष्ण का दिया। कृष्ण ने उसे ओठो से लगाया और नाक भों सिकोड कर बोले– छि छि इसम ता भोत मीथा हो गया। थोरा सा मीथा इसम से निकाल ल।

देवकी ने कृष्ण को बहुत समझाया– बुझाया कि भया अब इस दूध मे से मीठा नही निकल सकता। मैं दूसरा दूध ला देती हू। मगर कृष्ण कब मानने वाले थे? उनकी नस–नस मे नटखटपन भरा था। वे मचल पडे–न दूसरा दूध पिएगे न इतना अधिक मीठा पडा दूध पीएगे पर दूध पीए बिना न मानेगे। उनके हठ के सामने देवकी हेरान थी। कृष्ण ने देवकी को थोडी ही देर मे इतना परेशान कर दिया कि वह कहने लगी– मै भर पाई बस माफ करो।

कृष्ण ने फिर अपना असली रूप धारण कर लिया। देवकी ने पुछा– तुम अब तक कहा थे? और वह बालक कृष्ण कहा गये?

कृष्ण ने कहा– वही मै हू और मे ही वह था। ओर मैं यही मोजूद हू। मै कही नही गया।

देवकी –तो तुम्हे यह भी नही मालूम कि दूध मे से फिर शक्कर नही निकल सकती?

कृष्ण–आप यह बात जानती हैं। बेचारा अबोध बालक इसे क्या समझे? माताजी जिस प्रकार दूध मे पडी शक्कर निकल नही सकती ओर उसे निकालने का प्रयत्न करना निरर्थक है, उसी प्रकार जो बात बीत चुकी है, उसके लिए दु ख मानना भी निरर्थक है।

देवकी– बेटा कृष्ण बात तो सही है। पर दिमाग के लिए ही यह सही है वही इसे मानता है। हृदय मानने को तैयार नही होता। हृदय तो यही चाहता है कि मुझे एक और पुत्र की प्राप्ति हो, जिससे मैं अपने मातृत्व को चरितार्थ कर सकू! ऐसा हुए बिना वह अतृप्त रहेगा–अस्वस्थ रहेगा। उसे मनाना मै अपनी सामर्थ्य से बाहर पाती हू। न जाने निसर्ग ने किन उपादानो से जननी के अन्त करण का निर्माण किया हे!

कृष्ण–माताजी आपकी यह अभिलाषा पूरी होगी। मेरा छोटा भाई अवश्य जन्म लेगा। मैं प्रतिज्ञा करता हू कि यदि मेरा छोटा भाई न हो, तो मेरी तपस्या निष्फल है।

कृष्ण की प्रतिज्ञा सुन कर देवकी को पूरा भरोसा हो गया। उसकी चिन्ता दूर हो गई। उसे पूर्ण विश्वास था कि कृष्ण की प्रतिज्ञा कभी अधूरी नही रह सकती। उसकी सामर्थ्य मे शका नही की जा सकती। जब उसने प्रतिज्ञा की हे तो अवश्य ही मेरा मनोरथ पूर्ण होगा।

कृष्णजी प्रतिज्ञा करके देवकी के पास से चले गये। वे सोचने लगे– अब मुझे क्या करना चाहिए जिससे मेरा छोटा भाई हो और मेरी प्रतिज्ञा की

पूर्ति हो। इस दुष्कर कार्य की सिद्धि के लिए दैवी सहायता की आवश्यकता है ओर देव तपस्या से प्रसन्न हो सकते हैं। इस प्रकार विचार कर कृष्ण ने बह्मचर्य का पालन करते हुए हिरणगमेषी देव का स्मरण करना ओर तेला की तपस्या करना निश्चय किया। उन्होने सोचा– जब सुलसा का प्रयोजन हिरणगमेषी देव ने सिद्ध कर दिया तो मेरा प्रयोजन क्यो नहीं सिद्ध होगा?

यह निश्चय करके कृष्णजी पौषधशाला मे गये। अपने हाथ से पौषधशाला का प्रमार्जन करके घास का सस्तारक बिछाकर तेले की तपस्या अगीकार करके बैठ गये।

यहा यह प्रश्न किया जा सकता है कि कृष्ण ने अपने छोटे भाई के जन्मने के लिए तेला किया था यह कोई आध्यात्मिक प्रयोजन नही है सासारिक प्रयोजन है। फिर उनके तेले को पौषध क्यो कहा गया है?

वास्तव मे जब किसी विषय मे शका उत्पन्न हो जाये तो उसका निवारण करने के लिए प्रश्न उचित है। बिना पूछे समाधान नही हो सकता। शास्त्र मे कहा है– 'पुच्छियट्ठा।' अर्थात पूछ कर– शका करके पदार्थो का निश्चय करने वाले।

शका यद्यपि समकित के अतिचारो मे प्रथम है और जिन भगवान के वचन मे शका करने से सम्यक्त्व दूषित हो जाता है, पर उस शका मे ओर दस प्रकार की शका मे बडा अन्तर है। सम्यक्त्व को दूषित करने वाली शका अश्रद्धापूर्वक होती है और यह शका श्रद्धापूर्वक होती है। उस शका मे मनुष्य का भाव ऐसा होता है कि न जाने भगवान् का कथन समीचीन हे या नही है? इत्यादि। श्रद्धापूर्वक की जाने वाली शका मे मूल पदार्थों का पूर्ण निश्चय होता है । जिन वचन पर सम्पूर्ण प्रतीति होती हे । केवल किसी वस्तु के ठीक–ठाक न समझ मे आने से उसकी जिज्ञासा होती हे। वह शका अश्रद्धा से प्रेरित होती हे ओर यह जिज्ञासा जानने की इच्छा से प्रेरित होती हे। जिज्ञासा से प्रेरित शका सम्यक्त्व का दूषण नही वरन् उसे निर्मल ओर प्रगाढ बनाने का साधन होने के कारण भूषण हे। अतएव इस प्रकार शका करने मे सकोच नही करना चाहिए। सरल भाव से जिज्ञासापूर्वक प्रश्न पूछने से नवीन बोध प्राप्त होता हे ओर अन्त करण का पेशोपेश दूर हो जाता हे। अस्तु।

प्रस्तुत प्रश्न का समाधान यह है कि भक्ति चार प्रकार की होती हे। चार प्रकार की भक्ति करने वाले भक्त भी चार प्रकार के होते हें। चारा प्रकार के भक्त इन नामो से पुकारे जाते हे– आर्त्त अर्थार्थी जिज्ञासु ओर ज्ञानी।

चिन्ताओ से ग्रस्त होकर दु ख से अभिभूत होकर भक्ति करने वाला भक्त आर्त्त कहलाता है। किसी कामना से पेरित होकर भक्ति करने वाले भक्त आर्थार्थी हैं। ईश्वरीय स्वरूप को साक्षात करने और उसे जानने के लिए भक्ति को साधन बना कर भक्ति करने वाला जिज्ञासु कहा जाता है और आत्मा तथा परमात्मा मे अभेद मानकर आत्मा–परमात्मा की एकता निश्चित कर– भक्ति करने वाला ज्ञानी हैं। इन चारो प्रकार के भक्तो की भावना मे भेद है तथापि चारो ही भक्त उदार हैं। आर्ति (पीडा) होने पर भी और अर्थ की कामना से प्रेरित होकर के भी वे किसी नीच देवता को पूजने उसे प्रसन्न करने नही गये। वे सही सोचते हैं कि हमारे सिर पर आई हुई पीडा का निवारण अथवा जो हमारा काम्य है, वह भक्ति से ही प्राप्त होगा। हमे जो अभीष्ट है, उसे धर्म से ही मागेगे दूसरे से क्यो मागे?

एक बेटा अपनी माता से रोटी मागता है और दूसरा किसी वेश्या के घर जाकर मागता हैं। कहिए इन दोनो मे कुछ अन्तर है या नही?

'बहुत अन्तर है।

यदि पुत्र माता से किसी प्रकार की याचना न करके उसकी सेवा करे तो अत्युतम है। यदि आवश्यकता पडने पर भी – कभी घबरा करके मा से माग करे तो भी कोई बुरी बात न कहलायेगी। वह भूख से घबरा करके भी दूसरे के पास रोटी मागने नही गया, यह तो उसका गुण ही कहलायेगा। इसी प्रकार कई आर्त्त या अर्थार्थी पुरुष अनेक कुदेवो और कुगुरुओ के पास आते है और जहा हजारो बकरे कटते हैं हजारो पशुओ का निर्दयतापूर्वक बलिदान किया जाता हे वहा भी अपना मस्तक रगडते है। ऐसा करना अपनी मा को छोड कर वेश्या से रोटी मागने के समान है। कृष्ण को भी अपनी माता की पीडा दूर करनी थी और छोटे भाई की उन्हे कामना भी थी किन्तु वे माता के शरण मे गये और पोषध तथा तेला का उन्होने अनुष्ठान किया। अतएव कृष्ण का पोषध सासारिक प्रयोजन होने पर भी धर्म का अवलम्बन करने के कारण पोषध ही कहलाएगा।

अब आप पूछ सकते हें कि कृष्ण ने इसमे धर्म की क्या आराधना की? इसका समाधान यह हे कि किसी दूसरे के पास न जाकर वे अपने धर्म पर दृढ रहे– धर्म पर पूर्ण प्रतीति रखी–इस अपेक्षा से उन्होने धर्म की उपासना की। कृष्ण ने अपने व्यवहार से अपने कार्य से जनता के समक्ष यह आदर्श उपस्थित किया कि आर्त होकर भी ओर किसी पदार्थ की कामना से पेरित होकर भी कुगुरुओ ओर कुदेवो के पास नही फटकना चाहिए। धर्म कल्पवृक्ष के समान समस्त प्रयोजनो का साधक है। धर्म के बिना कुगुरु और कुदेव भी कुछ नही दे सकते। ऐसी अवस्था मे धर्म का परित्याग करके कुगुरू

और कुदेव की उपासना द्वारा अधर्म का सेवन करने से इष्ट अर्थ की प्राप्ति कैसे हो सकती है! प्राणियो की पीडा का वास्तविक निवारण किस प्रकार सभव है!

हा, इसमे सन्देह नही कि आर्त्त अर्थार्थी की उपासना जिज्ञासु और ज्ञानी की उपासना से निम्न कोटि की है, परन्तु यह तो कोटि का ही प्रश्न है। उस उपासना को उपासना तो कहना ही पडेगा। अतएव कृष्ण के पौषध को "पौषध" कहना बुरा नहीं है।

मित्रो! आप लोग भी धर्म का परित्याग कर अन्यत्र न जावे। यदि इससे किन्ही कार्यों मे रुकावट आती है तो होने दीजिए। वह रुकावट आपके पुण्य की न्यूनता से होगी, धर्म की आराधना से नहीं। यह भी सभव है कि उस रुकावट मे ही आपका कल्याण निहित हो। अगर कोई बालक अपनी माता से, अच्छा भक्ष्य पदार्थ समझ कर विष मागता है और माता उसे नही देती, तो उसके न देने मे ही बालक का हित निहित है। ऐसी अवस्था मे अगर वह बालक अपनी माता को त्याग देता है या उस पर अश्रद्धा करता है या उसे निर्दय कहता है तो वह भूल करता है। माता अश्रद्धा का भाव सहन कर लेगी, निर्दयता का लाछन स्वीकार कर लेगी पर फिर भी बालक को विष खाने को नहीं देगी। एतावता क्या सचमुच ही माता अश्रद्धाभाजन हे? नही! इसी प्रकार सभव है कि जिस कार्य मे तुम सफलता चाहते हो उस कार्य की सफलता से तुम्हारा अहित हो ओर असफलता मे ही तुम्हारा हित समाया हो। ऐसे कार्यो मे रुकावट पड जाने मे ही कल्याण है। ऐसी अवस्था मे धर्म पर अश्रद्धा न करो। धर्म की इष्ट-प्रदता मे सदेह न करो। भरोसा रखो तुम्हारी समस्त आशाए धर्म से ही पूरी होगी ओर जो आशाए धर्म से पूरी न होगी वे किसी और से भी पूरी न हो सकेगी।

आम को सीचने से भी यदि आम फल नही देता तो बबूल को सीचो भले ही पर आम्रफल तो उससे मिल नही सकेगे। धर्म की उपासना करने पर भी कदाचित् कोई कामना सिद्ध न हो तो धर्म निरर्थक नही जाता। धर्म अमोघ है। धर्म का फल कब और किस रूप मे प्राप्त होता हे यही बात छद्मस्थ भले ही न जान पाये फिर भी सर्वज्ञ की वाणी सर्वथा सत्य है। धर्म निष्फल नहीं है। इस प्रकार की श्रद्धा रखते हुए धर्म की सेवा करोगे ता कल्याण होगा।

महावीर भवन देहली- ता0 11-9-31

5. देवी दया

काकदी नगरी भली हो, श्री सुग्रीव नृपाल।
'रामा' तसु पटरानी हो तस सुत परम कृपाल।
श्री सुबुध जिनेश्वर वन्दिये हो लाल।।

भगवान् सुबुधनाथ की यह प्रार्थना की गई है। इस प्रार्थना मे प्रार्थना करने वाले ने क्या भाव प्रकट किये हैं? वह कहता है कि मैं भगवान् सुबुधनाथ की वन्दना करता हू। क्यो उन्हे वन्दना करने की आवश्यकता है, इस प्रश्न का समाधान करते हुए उसी ने कहा है कि–

वन्दत पाप पराय।

भगवान् सुबुधनाथ को नमस्कार करना पाप–कर्म नष्ट करने का उत्कृष्ट साधन है। अतएव उन्हे वन्दना करने से मेरे पापो का नाश होगा।

इस कथन का निष्कर्ष यह निकला कि मैं अपने पाप कर्मो को नष्ट करने की अभिलाषा रखता हू और भगवान् ने समस्त पापो का नाश कर डाला है।

ईश्वर की आराधना या पर्युषण पर्व की आराधना करने का उद्देश्य क्या है? भगवान् सुबुधनाथ ने जिस क्रिया के द्वारा ईश्वरीय तत्व प्रकट किया है उसी तत्व को हम अपने लिए प्रकट करने के उद्देश्य से पर्युषण की आराधना करते हैं।

जैन धर्म मे आत्मा को और ईश्वर को मूलत पृथक्–पृथक् नही माना गया है। ईश्वर आत्मा से भिन्न जाति की सत्ता नही है। किन्तु आत्मा जब अपने समस्त पापो को नष्ट कर डालता है उसकी समस्त औपाधिक विकृतिया नष्ट हो जाती हें ओर जब वह अपने शुद्ध स्वभाव मे आ जाता है तब आत्मा ही परमात्मा या ईश्वर वन जाता है। इस प्रकार जैनधर्म चरम सीमा का विकासवादी धर्म हे। वह नर के सामने ईश्वरतत्व का लक्ष्य

उपस्थित करता है। भगवान् सुबुद्धिनाथ ने जिस क्रिया द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति की है और ईश्वरतत्व को पाया है, उसी क्रिया का आचरण करके हम और आप भी ईश्वर पद प्राप्त कर सकते हैं। उस समय ईश्वर मे और हम मे कुछ भी अन्तर नही रहेगा।

आत्मिक स्वराज्य प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम मोहरूपी महामल्ल को पछाडने से भगवान् की आत्मा मे क्षायिक गुणो की अभिव्यक्ति हुई है और साथ ही अनन्त गुण प्रकट हुए हैं। यहा गुणो की उत्पत्ति न कह कर अभिव्यक्ति कहा है। खेत या खान से मिट्टी लाकर कुभार उसे चाक पर चढाता है और तब घट उत्पन्न होता है। उपादान और सहकारी कारणो से द्रव्य की किसी पूर्व पर्याय का विनाश होकर उत्तर पर्याय उत्पन्न होती है जो किसी नवीन अर्थक्रिया को करने मे समर्थ होती है, उसे उत्पत्ति कहते हैं। उत्पत्ति असत् पर्याय की होती है। बना हुआ घट अधकार से आवृत होता है तव वह अनभिव्यक्त कहलाता है। प्रकाश होने पर वह प्रकट हो जाता है। इस प्रकट होने को अभिव्यक्ति कहते हैं। अभिव्यक्ति सत् की होती है। यहा आत्मा के गुणो की उत्पत्ति न कह कर अभिव्यक्ति कहा है इसका तात्पर्य यह हे कि प्रकट होने वाले गुण आत्मा मे पहले ही विद्यमान थे किन्तु मोहनीय कर्म के कारण छिपे हुए थे। मेघो के समान मोहनीय कर्म के हट जाने पर आत्मा के स्वाभाविक गुण निर्मल चन्द्रमा के समान प्रकाशित हो जाते हैं। भगवान् ने मोहनीय कर्म क्षय करके आत्मिक परतन्त्रता हटाई ओर आध्यात्मिक स्वराज्य प्राप्त किया है।

सर्वप्रथम मोहनीय कर्म को हटा कर उसके अनन्तर भगवान् ने ज्ञानावरण, दर्शनावरण एव अन्तराय कर्म का नाश किया। इन कर्मो के समूल क्षय से अनन्त–ज्ञान(सर्वज्ञत्व) अनन्तदर्शन (सर्वदर्शित्व) ओर अनन्त–शक्ति का आविर्भाव हुआ।

इस प्रकार दसवे गुणस्थान मे मोहनीय का और वारहवे गुणस्थान मे शेष तीन घातिक कर्मो का क्षय करके तेरहवे गुणस्थान मे भगवान् ने अर्हन् अवस्था प्राप्त की और जीवनमुक्त हुए।

चोदहवे गुणस्थान मे सर्वोत्कृष्ट समाधि के द्वारा वेदनीय कर्म का नाश किया ओर समस्त वाधाओ एव पीडाओ से सदा के लिए मुक्त हो गय। वेदनीय कर्म के साथ ही आयु नाम और गोत्र कर्मो का भी क्षय करक शाश्वत सिद्धि प्राप्त की।

आयुकर्म के पभाव से आत्मा को भिन्न–भिन्न योनियो मे जन्म ग्रहण करके रहना पडता है। भगवान आयुकर्मो का अन्त करके समस्त योनियो से छूट गये। इस कर्म के नाश से अटल धर्म प्राप्त किया।

आत्मा स्वभावत अशरीर है। फिर भी नाम–कर्म के कारण कभी वह हाथी का शरीर धारण करता है कभी मनुष्य का और कभी अन्य जीवधारी का। इस कर्म का नाश होने से आत्मा का स्वाभाविक अमूर्तिक गुण प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार गोत्र कर्म के नाश से भगवान् ने अगुरुलघुत्व नामक गुण प्रकट किया।

इस प्रकार आठो कर्मो का नाश करके भगवान् ने ईश्वरीय तत्व प्रकट किया है। अब यह स्पष्ट है कि हमारे आत्मा मे जिन कर्मो का अस्तित्व बना हुआ है वे कर्म पहले भगवान् मे भी थे। भगवान् ने उन कर्मो पर विजय प्राप्त की है और हम उन पर विजय नही पा सके हैं। यही आत्मा और परमात्मा का अन्तर है। इसी अन्तर के कारण हम लोग भगवान् को नमस्कार करते हैं। यथा–

नमो अरिहताण।
नमो सिद्धाण।।

अर्थात चार घातिक कर्मो का क्षय करने वाले अरिहत भगवान को और आठो कर्मो का विनाश करने वाले सिद्ध भगवान को नमस्कार हो।

भगवान को नमस्कार करने का प्रयोजन यही है कि हमारे कर्म भी नष्ट हो जाए और हम भी भगवान की भाति विशुद्ध, सिद्ध, बुद्ध बने।

भगवान् को नमस्कार करने से नमस्कर्त्ता स्वय नमस्करणीय कैसे बन जाता है? आत्मा मे परमात्मा–अवस्था किस प्रकार आविर्भूत हो जाती है, वह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और उसका समाधान करने के लिए बहुत विस्तार की आवश्यकता है। यहा मैं इतना ही कहता हू कि जिस के प्रति हमारी आदर–बुद्धि होती है उसी के गुणो के अनुकरण करने की भावना हममे जागृत होती है और शनै–शनै वही गुण हमारे भीतर आजाते हैं। उसी के आचरण का अनुसरण किया जाता है। इस दृष्टि से जिसकी निष्ठा परमात्मा मे प्रगाढ होगी उसके सामने परमात्मा का ही सदा आदर्श बना रहेगा और वह उन्ही के आचार–व्यवहार का अनुकरण करेगा। इससे परमात्मपद की प्राप्ति उसे हो सकेगी। आधुनिक मनोविज्ञान भी भावना–बल को स्वीकार करता है और उससे यह कथन प्रमाणित होता है।

ससार के समस्त प्राणी कभी सिद्धि प्राप्त नही कर सकते तथापि उनमे से यदि एक भी जीव सिद्ध गति प्राप्त कर लेता हे तो असभव दोष मिट

जाता है। प्रत्येक प्राणी इतना प्रकृष्ट प्रयत्न नहीं कर सकता कि वह मोक्षलाभ कर सके। मगर वह सिद्धि–लाभ करने वाला महापुरुष सब जीवो के लिए आदर्श बन जाता है और उसे निमित्त बना कर अन्य जीव अपना कल्याण साध सकते है। एक द्रष्टात द्वारा यह बात स्पष्ट कर देना अधिक बोधगम्य होगा।

आप लोगो को यह विदित ही है कि आज से पन्द्रह दिन पहले गाधीजी लन्दन के लिए रवाना हुए थे। सुना जाता है कि आज वे लन्दन पहुच जायेंगे। जब से अग्रेजो का भारतवर्ष पर अधिकार हुआ है तब से लेकर अब तक सैकडो भारतीय विलायत हो आये हैं कोई सैर सपाटे के लिए कोई स्वास्थ्य लाभ की मृगमरीचिका के वश होकर कोई अपने बौद्धिक योग्यता पर लन्दन की मोहर लगाने के लिए, कोई किसी प्रयोजन से, कोई किसी मतलब से। यह सब प्रयोजन वहा सिद्ध होते हैं या नही और यदि होते हैं तो कितनी मात्रा मे होते हैं और इससे क्या हानि लाभ होता है आदि बातो पर हमे विचार नहीं करना है। हम तो यह देखना चाहते हैं कि सैकडो–हजारो आदमी लदन गये लेकिन जैसी दृष्टि सम्पूर्ण भारतवर्ष की गाधीजी की लदन यात्रा पर लगी हुई है वैसी दृष्टि क्या कभी किसी अन्य की लन्दन यात्रा की ओर लगी थी? नही। अनुदार दल के स्तम्भ श्री चर्चिल, जो गाधीजी के सिद्धान्तो के विरुद्ध माने जाते हैं वे भी गाधीजी का स्वागत करने मे अपना गौरव समझते हैं।

क्या यह समझने योग्य बात नहीं है कि पूर्व और पश्चिम की प्रजा गाधीजी की विलायत यात्रा पर उत्सुकता पूर्ण टकटकी क्यो लगाये हुए हे? वह गाधीजी का अपूर्व स्वागत करने के लिए लालायित क्यो हे ? सबको गाधीजी की इस यात्रा से इतनी प्रसन्नता क्यो हो रही है?

जैसा कि मैं पहले कह चुका हू, अब तक भारत के जो लोग विलायत गये उनमे से कोई बैरिस्टरी पास करने गया कोई व्यापार के लिए गया कोई आमोद–प्रमोद करने गया ओर कोई वहा के अमर्यादित और विलासितापूर्ण नृत्य मे शामिल होने का सौभाग्य हासिल करने के उद्देश्य से गया। कोई–कोई वहा के साहित्य की विशेषता सीखने के लिए और कोई अपने साहित्य की मौलिकता वहा वालो को समझाने के लिए वहा गया।

स्वामी रामतीर्थ ओर स्वामी विवेकानन्द भारतीय साहित्य की सूक्ष्म चिन्तन धारा का अमेरिकनो को परिचय कराने गये थे। उन्हाने भारतीय साहित्य की विशेषताए अमेरिकावासियो के समक्ष रखी। एक दिन था जब

अमरीका के निवासी बडे-बडे विद्वान भी बाइबिल के ज्ञान को बहुत उच्च श्रेणी का समझते थे और कहते थे कि भारतीयो के भाग्य मे भला यह ज्ञान कहा बदा है? इस भ्रमपूर्ण विचार से प्रेरित होकर उन्होने अपना मिशन भारतवर्ष मे इसलिये भेजा था कि वह भारतवासियो को बाईबिल का ज्ञान समझावे। परन्तु जब स्वामी रामतीर्थ और विवेकानन्द अमेरिका पहुचे और उन्होने भारतीय तत्वज्ञान अमेरिकनो को समझाया तो उन्हे दग रह जाना पडा और वहा के विचारशील विद्वानो ने कहा-'भारत को बाइबिल का ज्ञान समझाने के लिये मिशन भेजना भारी मूर्खता है। भारतीय साहित्य की तुलना मे बाइबिल कोई चीज नहीं है।

जैन समाज मे से भी वीरजी राघवजी और बैरिस्टर चम्पत राय यूरोप तथा अमेरिका गये और उन्होने वहा के निवासियो को जैन-धर्म का स्याद्वाद-सिद्धान्त समझाया है। परन्तु यदि कोई योगी इसका मर्म समझाये तो वह पूर्णरूप से समझ में आ सकता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि और जो लोग विलायत गये थे वे एकदेशीय विचारो को लेकर गये थे। कोई केवल स्वार्थ साधने के लिये गया था कोई केवल धर्म प्रचार के लिये ही। यही कारण था कि उनकी विलायत यात्रा पर सब की नजर नहीं थी। समस्त ससार के हिताहित और धर्म एव अर्थ की विशालतम दृष्टि लेकर विलायत यात्रा करने वाला यदि कोई है तो वह हैं अकेले गाधीजी। गाधीजी दुनिया को स्वाधीनता का सिद्धान्त सिखाने गये हैं- धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक विचारो का गठडा लेकर गये हैं।

गाधीजी अकेले विलायत गये हैं लेकिन अगर उन्हे विजय मिली, तो वह विजय किसकी होगी। अकेले गाधीजी की या समस्त भारतीयो की? यदि वह विजय अकेले गाधीजी की होती तो सब लोगो को इतनी उत्सुकता न होती। मगर सब लोग जानते हैं कि गाधीजी जो कुछ भी प्राप्त करेगे वह हमारा भी होगा। उसमे हमारा भाग भी अवश्य होगा। यही नही गाधीजी की विजय का अर्थ है अहिसा की विजय सत्य की विजय। इस प्रकार अहिसा और सत्य की विजय होने से उन महान् सिद्धान्तो की प्रतिष्ठा होगी और उससे समस्त ससार को लाभ होगा। ससार के समक्ष एक नूतन आदर्श उपस्थित हो जायेगा।

यद्यपि हम साधुओं का क्षेत्र राजनैतिक नही है। धर्म-नीत्ति का आचरण करना और कराना और उसके द्वारा विश्व मे शाति का प्रसार करना

तथा जीवन को क्षुद्र उद्देश्यो के ऊपर महान उन्नत आदर्श की ओर ले जाना हमारा उद्देश्य हे। लेकिन गाधीजी ने राजनीति का धर्मनीति के साथ समन्वय करने का प्रशसनीय प्रयत्न किया हे। उनका प्रजा एव राजा के खून से लिप्त वारागना के समान छल कपट द्वारा अनेक रूपधारिणी और प्रलयकारिणी राजनीति के स्वभाव मे सौम्यता ओर सरलता लाने का प्रयोग सफल होता है तो वह सफलता धर्म की महान सफलता होगी। धर्म की इस अद्वितीय सफलता से, धर्मनीति के प्रचार के लिये जीवन यापन करने वाले हम साधु यदि प्रसन्न न होगे तो और कौन होगा? गाधीजी की राजनीति यह सिद्ध कर सकेगी कि अहिसा ओर सत्य की प्रतिष्ठा मे ही विश्वशाति की प्रतिष्ठा हे। इन्ही सुनहरे सिद्धातो के बल पर राम–राज्य स्थापित किया जा सकता हैं। यही कारण है कि हम गाधीजी का पक्ष करते है और उनकी सफलता मे ही जगत्–कल्याण देखते हुए उनकी सफलता की कामना करते हैं।

आप लोग पर्युषण पर्व मे एक जीव को बचा कर भी दया मानते हैं–और मानना चाहिये भी, तो जिसने लाखो मनुष्यो के बचने का उपाय निकाल कर शातिपूर्ण वातावरण देश मे तैयार कर दिया ओर लोगो के दिल मे भरी हुई हिसा वृत्ति को अहिसा ओर मैत्री के रूप मे पलट दिया उसका पक्ष लेने मे हम साधुओ को भी प्रसन्नता क्यो न होगी?

आज विश्व मे जो राजनीति प्रचलित है उसका मुख्य आधार छल–कपट है। राजनीतिज्ञो की धारणा है कि बिना चालबाजी किये राजनीति मे सफलता प्राप्त नही की जा सकती। एक ओर सुलह–सधि की बाते की जाती है और दूसरी ओर हिसात्मक आक्रमण की तेयारिया चालू रहती हैं। एक राष्ट्र को भुलावे मे रख कर मेत्री पूर्ण सबध कायम रखने की पुकार मचाता हे और दूसरी ओर परिस्थिति अनुकूल होते ही उस पर हमला बाल देते हैं। तात्पर्य यह हे कि इस समय की राजनीति न्याय की प्रमाणिकता की सर्वथा उपेक्षा करती हुई मायाचार के जाल म जकडी हुई हे। मगर इससे दुनिया मे घोर अशाति हे। कोन मित्र है और कोन शत्रु हे कौन किस समय क्या कर गुजरेगा इस बात का ठीक–ठीक पता न लगा सकने के कारण प्रत्येक राष्ट्र का ओर प्रत्येक राजनीतिक दल का प्रत्येक क्षण नाना प्रकार क कपट जाल के निर्माण मे ही लग रहा है। कपट जाल की उलझन बढती जा रही हैं ओर उनके बढाने मे घोर प्रतिस्पर्धा हा रही हे। जा छल कपट करन मे जितना अधिक कुशल हे वह राजनीति मे उतना ही उस्ताद माना जाता हे। समग्र विश्व इस छल नीति का शिकार हो रहा ह। पारस्परिक अविश्वास की

मात्रा इतनी अधिक बढ गई है कि अगर कोई अन्त करण से सच्ची सद्‌भावना प्रदर्शित करता है तो उस पर भी विश्वास नही किया जा सकता है। उसके विषय मे भी यही सोचा जाता है कि न जाने किस गूढ अभिप्राय से वह ऐसी बाते सोच रहा है? इस प्रकार सर्वत्र अविश्वास सर्वत्र असतोष और सर्वत्र शका–शीलता के साम्राज्य मे कौन सुख की सास ले सकता है?

इसके अतिरिक्त जो कपट–नीति से काम लेता है और उसके द्वारा विजय प्राप्त करता है उसकी विजय कभी न कभी पराजय के रूप मे परिणित हुए बिना नही रह सकती। वह अपने कपट का आप शिकार बन जाता है। प्राय देखा गया है कि जो समूह अपने विरोधियो के साथ छल–नीति का प्रयोग करता है, वह अन्त मे आपस मे एक दूसरे के साथ भी वैसा ही व्यवहार करके अपने समूह की शक्ति को नष्ट कर डालता है।

एक काग्रेसी सज्जन थे जिन्होने कोई काम छल से किया था उनके विषय मे उन्हे भय था कि शायद मैं पकडा जाऊ तो सरकार की ओर से मुझ पर मुकदमा चलाया जाये। उन्होने इस सबध मे गाधीजी से पूछा कि इस स्थिति मे मुझे क्या करना चाहिये? सुनते हैं, गाधीजी ने उन्हे बताया कि आप सम्बद्ध अधिकारियो से स्पष्ट कह दे कि मैंने अपराध किया है। इसके लिये आप जो सजा समुचित समझेगे , वह मुझे दे दे। मैं उसे सहर्ष स्वीकार करूगा।

जिसे सत्य पर विश्वास न हो वह तो चालबाजी की ही शिक्षा देगा। सत्य मे ही इतना साहस हो सकता है। सत्यनिष्ठ के सिवाय इस मर्दानगी की आशा और किससे की जा सकती है? असत्य मे कायरता होती है। असत्य साहसशील नही होता। वह छिपना जानता है, बचना चाहता है। क्योकि असत्य स्वय मे बल नही है, निर्बल का आश्रय लेकर कोई कितना निर्भय हो सकता है। सत्य अपने आप मे बलशाली है जो सत्य को अपना अवलम्बन बनाता है– सत्य के चरणो मे अपने प्राणो को सौप देता है उसमे सत्य का बल आ जाता है और उस बल से वह इतना सबल बन जाता है कि विघ्न और बाधाए उसका पथ रोकने मे असमर्थ सिद्ध होती हैं। वह निर्भय सिह की भाति नि सकोच होकर अपने मार्ग पर अग्रसर होता चला जाता है।

इस जमाने मे सत्य पर इस प्रकार अटल रहने वाले इतना विश्वास रखने वाले के विचारो से साधु–सन्तो को भी सहानुभूति हो तो इसमे आश्चर्य क्या है। वरन सतो की सहानुभूति तो सदा सत्य सेवियो के साथ ही रहती हे इसलिए सहानुभूति न होना आश्चर्य की बात हो सकती हे। जो अपने

आचार से, विचार से और वाणी से सत्य एव अहिसा का गौरव बढाएगा उसके साथ साधुओ की सहानुभूति अवश्य होगी। यह बहुत सम्भव है कि अहिसा और सत्य सम्बन्धी विगत की बातो मे भेदभाव पाया जाये और कई बातें ऐसी हो, जिनमे हमारा विचार कुछ भिन्न ही हो, तथापि मूल दृष्टि के प्रति सहानुभूति तो होगी ही।

मित्रो! आप लोग मुख्यवस्त्रिका बाधकर क्यो बैठे हो? हजारो रुपया देने पर भी जिस पगडी को आप सिर से न उतारेगे वह पगडी आपने अभी क्यो उतार रखी है? केवल आत्मकल्याण की भिक्षा माग रहे हैं। हे प्रभो! हमे यह भिक्षा दो कि हमारा आत्मिक कल्याण हो। मगर यह स्मरण रखिये कि भगवान से आपको अभीष्ट भिक्षा तभी मिलेगी जब आप सत्य ओर सरल स्वभाव से उससे प्रार्थना करेगे। अगर आप उसके साथ छलपूर्ण व्यवहार करेगे तो आपके लिये छल ही प्रतिदिन है! परमात्मा का दरबार ऐसा नहीं है जहा से उसका उद्‌भव हुआ था वहीं आकर विश्राम करता है।

साधु यद्यपि व्यक्तिगत साधना मे प्रधान रूप से तल्लीन रहते हैं, पर व्यक्ति का समाज के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध हे कि समाज के श्रेय के बिना व्यक्ति ही नहीं हो सकता। इसलिये साधु को भी समाज के श्रेय की ओर आकृष्ट होना पडता है। साधु जीवन का निर्वाह समाज के अस्तित्व पर ही निर्भर करता है और समाज मे जितनी अधिक धार्मिकता होगी साधु-जीवन भी अधिकाश उतना ही उज्ज्वल होगा क्योकि साधु बनने वाले व्यक्ति समाज मे से ही आते हैं। यही कारण हे कि मुनि एकान्तत व्यक्ति साधन मे ही अपनी साधना की समाप्ति नहीं समझते और उपदेश आदि द्वारा समाज-कल्याण की ओर भी लक्ष्य रखते हैं।

समाज कल्याण की ओर लक्ष्य का अभिप्राय यह नहीं है कि साधु की साधना मे द्वे-भाव आ जाता है। नही साधु जीवन की साधना एक ओर अखड है। उसमे विरूपता नही आती, क्योकि साधु के समाज हितकर कार्य भी उनकी व्यक्तिगत साधना का अग रहता हे वहीं तक साधु को वह आचरणीय होता हे। जो कार्य साधु-जीवन की साधना से विसगत होता है या जो उनकी साधना का अग नहीं बन सकता वह साधुओ के लिए अनाचरणीय हो जाता है। ऐसी स्थिति मे जिन बातो से ससार का कल्याण होता हो ससार के जीवो को शाति मिलती हो उन बातो का आचरण और प्रचार करने वाले के प्रति साधुओ की सहानुभूति होना स्वाभाविक है।

समग्र भारतवर्ष ने अर्थात समस्त भारत क प्रतिनिधित्व का दसवा करने वाली महान सस्था ने अकेले गाधीजी को भारत का नेता और प्रतिनिधि

क्यो चुना है? केवल अहिसा और सत्य के पताप मे। गाधीजी ने क्या कहा है कि– 'मैं दीन–दरिद्री भारत का प्रतिनिधित्व करने जा रहा हू। यदि मै अपनी प्रशसा के लिये देश के साथ धोखा करू तो मुझे मार डालना। मुझे मार डालने पर मैं इस मारने के कार्य को हिसा न कहूगा।

अगर आप गाधीजी की विजय मे अपनी विजय मानते है गाधीजी की सफलता यदि आपको अपनी ओर अपने सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्तो की सफलता मालूम होती है तो उनके बताये मार्ग पर चलो– उनके कार्य मे सहयोग देने के लिये अपना जीवन लगा दो। अगर आप उसमे सहयोग नही देते फिर भी उनके प्राप्त किये हुए लाभ मे भाग लेना चाहे तो क्या यह हरामखोरी नही होगी? जिस काम को करने के लिये गाधीजी करते है और जिस काम को करने से वे रोकते हैं उसे मानते समय तो मुह छिपाना–उससे बचने के लिये प्रयत्न करना और केवल व्यक्तिगत–लाभ मे भाग लेने के लिये आगे आ जाना–हरामखोरी नही है तो क्या है?

और गाधीजी कहते क्या हैं? केवल यही कि– अहिसा का पालन करो। मर जाओ, पर मारो मत। जीवन को सत्य से ओत प्रोत बनाओ। जीवन रूपी महल की आधार शिला अहिसा और सत्य होनी चाहिये। इन्ही की सुदृढ नीव पर अपने अजेय जीवन दुर्ग का निर्माण करो। विलासिता को त्यागो और सयम तथा सादगी को अपनाओ। परन्तु लोग इन स्वर्ण–उपदेशो को भी मानते दिखाई नहीं देते।

गाधीजी विशाल भारतवर्ष का प्रतिनिधित्व करने गये हैं। उन्हे ब्रिटिश सम्राज्य के अधिपति सम्राट से हाथ मिलाना है, राजा महाराजाओ की सभा मे बैठना है फिर भी वे गरीबी के कपडे पहन कर गये हैं। उनमे ऐसा करने का साहस कहा से आया? और आप लोगो से इतना क्यो नही होता? इस प्रश्न के समाधान मे ही अहिसा की वृत्ति है। उन्होने अपने जीवन मे अहिसा की प्रतिष्ठा की है। अहिसा की बदौलत उनमे अनुपम साहस आया है। आप लोग तो पचेन्द्रिय प्राणियो की चर्बीवाले वस्त्रो का भी परित्याग नही कर सके। अहिसा के अनुयायियो! जरा गहराई के साथ अपनी स्थिति पर विचार करो। आपको अपने सिद्धान्तो की सार्थकता सिद्ध करने का जो अपूर्व अवसर मिला है, उसे हाथ से न जाने दो। तुम्हे इस अवसर पर आगे आना था। अगर आगे नही आ सके तो पीछे ही चलो–पर चलो तो सही। उल्टी दिशा मे मत जाओ। अगर आप इतना भी न कर सकोगे तो गाधीजी द्वारा प्राप्त लाभ मे हिस्सा लेने के हकदार कैसे बन सकोगे? गाधीजी जो कुछ प्राप्त

करे उसे छोडना नही, और वे कहे सो करना नही यह केसा न्याय हे? यह कहा की प्रामाणिकता है।

अगर गाधीजी गोचर भूमि का कर उठवा दे तो क्या आप अपनी गाय उसमे चरने न भेजेगे? उन्होने जहा नमक कर हटवाया है यहा के लोग क्या सस्ता नमक नही खाते? आपमे कौन ऐसा है जो उनके द्वारा प्राप्त हुए अधिकारो से लाभ न उठाने की प्रतिज्ञा करे ? यदि नहीं तो फिर हरामखोरी क्यो की जाये? अगर आप गाधीजी की बात न माने, तो अहिसा और सत्य तो गाधीजी के अपने नहीं हैं? आप उनका पालन करने के लिए कटिबद्ध क्यो नही होते? सच्चाई को स्वीकार कर उसमे भाग लेने के लिए तैयार हो जाओ और फिर उसमे होने वाले लाभो में भाग लो। यह नीतिनिष्ठता है। यह उचित है।

मैं साधु हू , अतएव साधु के विधान के अनुसार में अरिहत सिद्ध को नमस्कार करता हू और सब को उन्हीं के राज्य मे मानता हू। गाधीजी का जो दृष्टान्त दिया गया है वह इसलिये कि जिस प्रकार गाधीजी ने जो कुछ किया है, उसी प्रकार भगवान् सुबुद्धिनाथ ने सिर्फ अपने लिये कर्मो का नाश नही किया है, किन्तु सभी के लिए किया है। यदि वे अपने लिए ही कर्मनाश करते, तो मुक्त तो कहलाते, किन्तु तीर्थंकर न कहलाते। तीर्थंकर उसी को कहते हैं जो धर्म–तीर्थ की स्थापना करके विश्व का परमोपकार करते हैं। इस तथ्य को भलीभाति समझने के लिए तीर्थकर की जननी को आने वाले स्वप्नो के रहस्य पर विचार करना चाहिए।

तीर्थंकर की माता समस्त ससार के कल्याण के सूचक स्वप्न देखती है। तीर्थंकर जब गर्भ मे आते हें तब उनकी माता चौदह स्वपन देखती हे। यह चौदह स्वप्न क्या हे? यह चोदह राजू लोक के प्रतिनिधि हैं जो तीर्थंकर की माता की सेवा मे उपस्थित होकर प्रार्थना करते हें कि चोदह राजू लोक के जीव घोर सकट मे पडे हुए हें, अतएव हे माता! आप कृपा करके हम लोक–प्रतिनिधियो को अपनी कूख मे धारण कीजिए ओर अनेक को एक मे परिणित करके नूतन जन्म दीजिए जिससे ससार का सकट टल जावे। विश्व मे अधर्म के स्थान पर धर्म की एव अन्याय के स्थान पर न्याय की स्थापना हो। सर्वत्र शान्ति का साम्राज्य हो ओर अकल्याणो का ध्वस हो। इस प्रकार चोदह राजू लोक के चोदह प्रतिनिधियो का सगठन हाने पर–उनमे सम्पूर्ण समन्वय समझ कर जिस दिव्य शक्ति का जन्म होता हे उसी दिव्य शक्ति का नाम तीर्थंकर होता हे। अब यह स्पष्ट है कि तीर्थंकर न समस्त ससार क लिए– जिसमे हम सभी सम्मिलित हैं– जन्म लिया हे। हमारे मगल के लिय

ही तीर्थकर की माता चौदह राजू लोक के प्रतिनिधियो को गर्भ मे धारण करके तीर्थकर के रूप मे अलौकिक सामर्थ्य और दिव्य सस्कारो से सस्कृत करके जन्म देती है।

चूकि तीर्थकर का जन्म विश्वकल्याण के लिए होता है इसी कारण उनके जन्म के समय इन्द्र उत्सव मनाता हे। अगर उनका जन्म सिर्फ उन्ही के लिए—व्यक्तिगत लाभ के लिए होता है तो देवराज इन्द्र उनकी खुशामद न करता और न उनका जन्मोत्सव मनाने बेठता। परन्तु नही, इन्द्र जानता हे कि तीर्थकर अखिल भूमण्डल का उद्धार करने के लिए अवतीर्ण हुए हे और भूमण्डल के उद्धार मे ही हमारा उद्धार सम्मिलित हे। इसी कारण इन्द्र और छप्पन कुमारिकाए जन्मोत्सव मनाती है।

जिस प्रकार भारत से हजारो आदमी विलायत गये हे पर उनकी विलायत यात्रा का विशेष गौरव या महत्व नही हे और गाधीजी की विलायत यात्रा अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है क्योकि वे समष्टि का हित लक्ष्य मे रखकर विलायत गये हैं, इसी प्रकार भगवान ने जो तीर्थकर पद प्राप्त किया है वह हमारे लिए ही है। उन परमपिता परम कृपालु तीर्थकर भगवान ने हम जैसे दीनजनो को आत्मकल्याण की भिक्षा दी है। अगर तीर्थकर न होते तो हमे आत्मिक प्रकाश कहा से मिलता? अनादि काल से अनन्त काल तक यह आत्मा ससार की इस विकट एव सकटमयी अटवी मे ही भटकती रहती हे। सूर्य के अभाव मे जेसे घना अन्धकार व्याप्त रहता है और उलूक आदि निशाचर स्वच्छन्द विचरण करते हैं उसी प्रकार तीर्थकर के अभाव मे ससार मिथ्यावत एव अविद्या के अन्धकार से आच्छन्न होता है और ज्ञान के प्रकाश की कही कोई किरण तक दृष्टिगोचर नही होती। उस अवस्था मे ससार अशान्ति की धधकती हुई धूनी के समान होता है। सात्विक वृत्तियॉ जन्मी न होती और पैशाचिक वासनाए सर्वत्र धमाचोकडी मचातीं।

तीर्थकर के बिना कौन आत्मकल्याण का प्रशस्त पथ प्रदर्शित करता? अध्यात्म ज्ञान कहा से आता? स्व—पर का भेद—विज्ञान कौन सिखाता? आत्मा की अनन्त शक्तियो का भान कोन कराता? राग—द्वेष, दम्भ आदि आत्मा—विकारो को दूर करने और चिदानन्दमय चेतन के सहज स्वभाव को प्रकट करने का मार्ग केसे मिलता? कर्म—शत्रुओ को नष्ट करने का उपाय तीर्थकर के बिना कोन बता सकता था।

तीर्थकर भगवान् ने जन्म लेकर लोक को पावन किया। उन्होने अपने निवास से इस भूमि को स्वर्ग से उत्तम बनाया। ससार मे आज भी जो

धर्म नीति, तप सयम ओर सदाचार की पूजा होती है वह तीर्थंकर भगवान् की बदौलत ही समझना चाहिए। हम लोग इन दैवी भावनाओ का महत्व शायद नही आक सकते, क्योकि इनका अभाव हमने अनुभव नहीं किया है। जिसने जिस वस्तु के अभाव का अनुभव न किया हो वह उसके सद्भाव का असली मूल्य प्राय नही समझ पाता। प्रतिदिन भर-पेट भोजन करने वाला भोजन का वह महत्त्व नहीं जान सकता जो कई दिनो का भूखा आदमी जान पाता है। पर जिस दुनिया मे दया, क्षमा, सहानुभूति परोपकार आदि भावनाओ का सर्वथा अभाव हो, लोग अज्ञान मे डूबे हो, नीति और धर्म का जहा नाम तक न हो, उस दुनिया की कल्पना करो। वह नरक से भला क्या अच्छी हो सकती है। यह ससार आज ऐसा नहीं है यह तीर्थंकर का ही परोपकार है। यह उन्हीं की दिव्य दया का अनुपम दान है।

यदि गाधीजी न होते तो अग्रेज सरकार गरीबो की बात सुनती? गाधीजी के होने से ही सरकार जनता के शब्दो की तरफ थोडा–बहुत ध्यान देती है। गाधीजी ने अपना जीवन दरिद्रनारायण की सेवा के लिए निछावर कर दिया है। वे यही कहते हैं कि मैं गरीबो का सेवक हू, दलितो का बन्धु हू– मैं उन्ही के साथ हू।

जब प्रत्यक्ष मे ही गाधीजी गरीबो के हो रहे हैं तब हमारे तीर्थंकर कौन है? क्या वे गरीबो के नहीं हैं? वे भी तो दीनदयालु हैं–

दीन–दयाल दीन–बन्धु के खानाजाद कहास्या,
तन धन प्राण समर्पी प्रभु ने
इन पर वेग रिझास्या राज ।। आज०।।

भगवान् दीनदयाल हैं ढींग–दयाल नहीं हे। वे दीनबन्धु हैं। राजनपति राजा नही है। दीनदयाल और दीनबन्धु कहने मे ही भगवान् की स्तुति हे। ढीग–दयाल या राजनपति कहने मे न उनकी स्तुति है, न ऐसा कहना शोभा ही देता है। भगवान् दीनदयालु और दीनबन्धु हैं इसलिए भक्त लोग कहते हैं कि अपना तन धन प्राण उसी बैंक मे जमा कराएगे।

इस सब कथन का अभिप्राय यह हे कि भगवान् ने कर्मनाश करके जो ईश्वरीय तत्व प्रकट किया हे वह उन्होने अपने आपक लिए नहीं वरन् हम सब के लिए किया। अतएव उनके कियाकलाप का अनुकरण करना उनके आचरण का अनुसरण करना हमारा कर्तव्य है। वही हमारे लिए धर्म है। उन्होने मोह का नाश किया ह हम भी मोह का नाश करना उचित ह। शरीर से धन से भोजन से ओर वस्त्र से मोह हटा कर शात निराकुल अवस्था धारण

करनी चाहिए। तन और धन से मोह हटा लेने से वह कही चले नही जाते, किन्तु उन पर सच्चा स्वामित्व प्राप्त होता है। जब तक तन–धन आदि के प्रति मोह विद्यमान रहेगा तब तक उनके प्रति दास्यभाव रहेगा। दासता त्याग कर स्वामित्व प्राप्त करने का उपाय उनके प्रति मोहत्याग है। अपने हृदय मे स्थान दोगे और ऊपर से भगवान् का स्मरण करोगे तो अभीष्ट सिद्धि कैसे प्राप्त होगी?

आप लोग आनन्द श्रावक के चरित्र का विचार कीजिए। वह जिस दिन भगवान् से धर्मश्रवण करके श्रावक बना, उसी दिन से उसने अपनी बाह्य और आन्तरिक चर्या मे मोह का त्याग कर दिया। आनन्द के पास बारह करोड सौनैया धन था। उसमे से चार करोड सौनैया जमीन मे गडे थे, चार करोड घर आदि मे लगे थे और चार करोड से वह व्यापार करता था। जो श्रावक इतना बडा धनी था उसके कपडे किस प्रकार के थे? उपासकदशाग सूत्र को देखो तो मालूम होगा कि उसने भगवान् के समक्ष कपास से बने हुए खोमिया (क्षोमवस्त्र) के सिवाय समस्त प्रकार के वस्त्रो का परित्याग कर दिया था।

कोई यह सोच सकता है कि मै मिल के वस्त्रो के त्याग का उपदेश देता हू, सो यह उपदेश कहा से चल पडा? इसका उत्तर यही है कि यह उपदेश शास्त्र से ही चला है। मिल के सचालन मे महा–आरभ होता है और शास्त्र महाआरभ का निषेध करता है ओर महा–आरभ को नरकगति का कारण कहता है। अतएव मिल के वस्त्रो के त्याग का उपदेश धार्मिक दृष्टि से देना उचित है और उसका समर्थन करना है तो और भी अच्छी बात है।

आज ऐसे वाहियात वस्त्र पहने जाते हैं कि वस्त्र पहनने का उद्देश्य ही नष्ट हो रहा है। लज्जा की रक्षा और सयम के लिए वस्त्रो का उपयोग किया जाता है पर इन वस्त्रो से लज्जा लुट गई है और सयम का भी नाश हो रहा है। मनुष्य की विलासिता क्या–क्या कर डालती है!

आनन्द श्रावक ने एक ही दिन भगवान् का उपदेश सुना था पर उसने वस्त्रो के प्रति अपनी ममता कम कर ली और एक सूति क्षोभ–वस्त्र के अतिरिक्त अन्य वस्त्रो का त्याग कर दिया पर आप प्रतिदिन उपदेश सुनते हें फिर भी आपसे मिल के पापमय वस्त्र नही छूटते।

बारह करोड स्वर्ण–मोहरो के स्वामी आनन्द श्रावक के पास कितने आभूषण होगे! भला आभूषणो की उसे क्या कमी हो सकती है? पर नही शास्त्र मे उल्लेख मिलता है कि आनन्द ने एक अगूठी ओर दो कुण्डलो के सिवाय अन्य सब आभूषण पहनने का त्याग कर दिया था।

आनन्द के त्याग पर विचार करो तो ज्ञात होगा कि उसने भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर अपना जीवन आदि से अन्त तक सारा ही बदल डाला था। आनन्द के जीवन मे विलासिता के स्थान पर सयमशीलता आ गई थी मोह के स्थान पर त्याग उत्पन्न हो गया था। उसने अपना जीवन सयममय त्यागमय और वैराग्यमय बना लिया था।

दुनिया मे खाने की वस्तुओ की क्या कमी है? जिह्वालोलुप लोग नित्य नये पदार्थो का आविष्कार करते रहते हैं। लेकिन आनन्द ने गिनती की सादी चीजे रखकर शेष समस्त पदार्थों के खाने का त्याग किया और अपनी रसनाइन्द्रिय को सयत बनाया। उदाहरणार्थ–फल है, जिन्हे खाकर लोग आनन्द का अनुभव करते हैं। पर आनन्द श्रावक ने धृतपूर्ण खड(खाजा) के अतिरिक्त समस्त मिठाइयो का त्याग किया और आम के सिवाय और सब फल खाना छोड दिया। इसी प्रकार अन्नो मे से कुमोद के चावल और मूग की दाल आदि कुछ ही चीजो का आगार रखकर शेष सब प्रकार के अन्नो का त्याग किया।

जरा आनन्द के साथ अपनी तुलना करो। यह भगवान् महावीर स्वामी का अनुयायी श्रावक था और आप भी उन्ही के अनुयायी श्रावक कहलाते हैं। किन्तु आनन्द के और आपके जीवन मे कितनी समता हे? आनन्द की सयमशीलता, आनन्द की सादगी और आनन्द के वैराग्य का थोडा बहुत अश भी आप सब मे पाया जाता है? आप भोजन के विषय मे ही अपनी स्थिति की तुलना कीजिए। कहा तो आनन्द का सीधासादा ओर सात्विक भोजन और कहा आपके चटपटे मसालो, चटनियो ओर मुरब्बो वाला तामसिक भोजन। आपके भोजन ने आपके शरीर का जितना पोषण नही किया हे उतना शोषण किया है। यह मिर्च– मसालेदार भोजन शरीर को उखडा हुआ नि सत्व और व्याधियो का घर बना रहा हे। जब मिर्चो के कारण आखो मे पानी–सा आने लगता हे तब भी जीभ की लोलुपता से प्रेरित होकर लाग मसालेदार भोजन करने से बाज नही आते तो मुझे दया आती हे। मनुष्य कितना लाचार बन गया हे। वह इन्द्रियो का कितना गुलाम हो रहा हे। भोजन मे ही जीवन की सफलता मानी जा रही हे। इसी भोजन मे से साधुआ की प्रवृति भी बदल रही हे, लेकिन श्रावक आनन्द ने आगार मे रखी हुई कतिपय वस्तुओ के सिवाय सब को त्याग कर दिया था।

जिसका व्यापार चार करोड सोनेया का हो उसके चार क पाच करोड सौनैया होने मे क्या देर लगती हे? कदाचित् एक वर्ष म इतनी वृद्धि न हो तो दो–तीन वर्ष मे तो सहज ही हा सकती हे। किन्तु आनन्द का प्रण

था कि मैं व्यापार तो चार करोड का करूगा परन्तु इन्हे बढाऊगा नही। यहा यह कहा जा सकता है कि व्यापार करने का ही त्याग आनन्द ने क्यो नही कर दिया? व्यापार का त्याग न करते हुए इस प्रकार का त्याग करने का उद्देश्य क्या हो सकता है? व्यापार तो करना पर नफा न लेना और पूजी न बढना, यह कैसा व्यापार है?

मैं पूछता हू कि यदि दिल्ली मे एक दुकान ऐसी हो जो चार लाख की पूजी से खोली गई हो और जिसमे सिर्फ उतना ही मुनाफा लिया जाता हो जितना उस दुकान का खर्च हो– उससे अधिक मुनाफा न लिया जाता हो– जो वह दुकान कैसी कहलाएगी?

धार्मिक।

सब लोग यही कहेगे कि धर्म और प्रमाणिकता इसी के घर है। पर लोगो ने व्यवहार मे यह सीख रखा है कि यदि पैसा नही कमाना है तो फिर व्यापार ही क्यो किया जाये। ऐसा सोचने वाले व्यक्तिगत स्वार्थ से आगे कुछ नहीं सोचते। उन्हे सामाजिक आदर्श का भान नहीं है। वस्तुत जब तक ससार नही छोड बैठना और अकर्मण्य बन कर निरकुश जीवन व्यतीत करते हुए खाना क्या बुद्धिमत्ता है?

महाजनक नामक एक ग्रन्थ मे पढा था कि जब राजा महाजनक को ससार से भय हुआ और उन्होने ससार त्याग की दीक्षा लेने का विचार किया तब खाना–पीना छोड दिया। जब उनके प्रधान को यह वृतात ज्ञात हुआ तो वे राजा के पास आये और कहने लगे– अन्नदाता! आपने भोजन– पानी क्यो त्याग दिया? कृपा कर भोजन कीजिए। हम सब बडे व्याकुल हैं। तब राजा ने उत्तर दिया–'प्रधानजी बस कीजिए। अब भोजन के लिए आग्रह न कीजिए। अगर मैं पहले की भाति राज्य ओर प्रजा की रक्षा करू और राज्य मे अमन–चैन कायम रखू, तब तो राज्य के पेसे से उदर–निर्वाह करना उचित है लेकिन जब में राज्य की रक्षा नही कर रहा हू ओर ससार को त्यागने का विचार कर रहा हू, तब राज्य का अन्न खाना मेरे लिए हराम है।

तात्पर्य यह है कि खाना तो सही पर व्यापार न करना यह धर्म को कलकित करना हे। धर्म परिश्रम त्याग कर परिश्रम के फल को अनायास भोगने को उपदेश नहीं देता। धर्म अकर्मण्यता नहीं सिखाता। धर्म हरामखोरी का विरोध करता हे हक के खाने का विधान करता हे। आनन्द ने जिस दिन भगवान का धर्मोपदेश सुना था उसी दिन पूजी वढाने का त्याग कर दिया था।

यह भी आशका की जा सकती है कि आनन्द व्यापार मे मुनाफा लेकर दान कर देता तो क्या बुराई थी? उसने ऐसा क्यो नहीं किया? इनका उत्तर यह है कि आनन्द ढोग करना न जानता था। पैर मे कीचड न लगने देना ही अधिक श्रेयस्कर है। पहले दूसरे से लेना फिर उसे देने से लाभ क्या है? हा, इस मे हानि अलबत्ता है। दस प्रकार का दान कीर्ति लूटने के लिए किया जाता है और वह दाता के अहकार का पोषण करता है। अतएव उससे लोभ और अभिमान कषाय जागृत होता है। ऐसा दान देकर दाता, दानीय व्यक्ति से अपने आपको विशेष गौरवशाली ऊचा और बडा अनुभव करता है और लेने वाले को दीन, दयापात्र, और नीच समझता है। इस दुर्भावना के अतिरिक्त इस दान मे और क्या विशेषता है? अतएव पहले से ही प्राप्त की हुई वस्तुओ से ममत्व घटाने के लिए दान देना प्रशस्त है, परन्तु कीर्ति–कामना से प्रेरित होकर, अहकार का पोषण करने के लिए धन आदि का उपार्जन करके दान देने की अपेक्षा उसका उपार्जन न करना ही बेहतर हे।

आनन्द न तो कीर्तिकामुक था, न अहकारी था। इसी कारण उसने गरीबो से लेकर फिर देने की अपेक्षा नफा न लेने का प्रण करना ही उचित समझा जिससे किसी को अपनी हीनता न खटके किसी के गोरव को क्षति न पहुचे और कोई अपने आपको उपकृत समझकर ग्लानि का अनुभव न करे। श्रावक का यह कितना उच्च आदर्श हे।

आनन्द के पास चालीस हजार गाये थी। इन गायो की सख्या बढाने का भी उसने त्याग कर दिया था। कोई यह कह सकता हे कि गायो की सन्तति होने पर उनकी सख्या बिना बढे केसे रह सकती है? और सन्तति न बढे यह तो सभव ही नही हैं। इसका उत्तर यह हे कि आनन्द ने अपन पास तो चालीस हजार गाये रखी रही थी उन्हे वह बेचता तो था नही, क्योंकि जैसी रीति से श्रावक के घर सुख–सुविधा–पूर्वक गाये रखी जाती हैं इस तरह वेच देने पर दूसरे के घर कहा रह सकती हे? अतएव जय कभी किसी को बढाना होता था किसी को सुखी बनाने की आवश्यकता हाती थी और उसके कल्याण मे सहायता पहुचानी होती थी उस समय आनन्द अपने यहा स उसे गाये भेज दिया करता था।

इस प्रकार गाये भेजने के अनेक अभिप्राय थे। प्रथम तो जिसक यहा गाये भेजी जाती थीं उसे गायों के साथ एक प्रकार की सवा सौंपी

जाती थी। क्योकि जब तक गाय की सेवा नही की जाती तब तक वह दूध नही देती और उस समय आजकल की अपेक्षा गायो के सुख का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था। आजकल की भाति उपेक्षा और क्रूरता का व्यवहार गायो के प्रति उस समय नही किया जाता था। अतएव जिसके यहा गाय भेजी जाती थी वह एक प्रकार से सेवा का सबक सीख लेता था।

गाय भेज देने का दूसरा अभिप्राय यह था कि ऐसा करने से नियत सख्या मे वृद्धि नही होती थी और आनन्द का व्रत स्थिर रहता था।

तीसरी बात यह है कि जिसके घर गाय हो जाती थी, वह दूध, दही पा जाता था और सटर–पटर खाने से बच जाता था। उसके कुटुम्ब भर को आराम मिलता था।

इस उपाय से आनन्द अपनी की हुई मर्यादा से अधिक गाये नही रखता था और न उसे बेचने के लिए ही बाध्य होना पडता था।

आनन्द श्रावक का उल्लेख करने का आशय यह है कि उसने भगवान् का उपदेश सुनकर अपना मोह घटा लिया था। आनन्द के इस आदर्श मे आप अपने व्यवहार पर दृष्टि डालिये। आप लोग अपना मोह हटाते नही हैं पाप बढाने वाले वस्त्राभूषण आपसे छूटते नही हैं, फिर भी यह कहते हैं कि अर्हन्त भगवान् ने जो राज्य लिया है उससे हम भी लाभ उठावेगे। यह तो वही बात हुई कि गाधीजी के द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलेगे नही पर उनके लाये हुए लाभ मे अवश्य हिस्सा लेगे। बबूल बोकर आम कोई नही पा सकता। धर्म के प्रतिकूल काम करो ओर जब हानि हो तो धर्म को बदनाम करो यह कहा तक ठीक है? अत भोग–विलास त्यागो उसे कम करो और अर्हन्त के राज्य का प्रसार करो।

गहनो ओर कपडो का युग बदल गया। आज बडे–बडे गहने और बहुमूल्य फैन्सी वस्त्र पहनने वाले न सेठ गिने जाते हैं न सभ्य एव सुसस्कारी ही माने जाते हैं। गहनो ओर कपडो से सजने वालो को आज की अधिकाश प्रजा खिलौना समझती है। उनका उपहास करती है। उन्हे हीन दृष्टि से देखा जाता है। आज बडे–बडे गहने और रग–विरगे लज्जा नाशक वस्त्र सभ्यता ओर सस्कार के अभाव के सूचक बन गये है। आज तो उसी का महत्व हे उसी मे बडप्पन हे जो गरीबो की सेवा करता हे। ऐसा न करके बडा बनना

घोडे की पूछ के समान है। घोडे की पूछ जितनी वडी होगी घोडा उससे उतनी ही अधिक मक्खिया मारेगा। अतएव आडम्बर का अन्त करो। सादगी सीखो और कहो– हम गरीबो के पीछे हैं। तीर्थंकर भगवान भी गरीबो के पालने वाले हैं ओर आप गरीबो के पालने वाले न होकर उनके राज्य मे भाग लेना चाहे तो क्या यह उचित होगा? गरीबो पर दया करना ही वास्तव मे दया धर्म है।

हम दया धर्म के अनुयायी हैं। दया–धर्म की स्थापना भगवान् अर्हन्त ने की है। सोचो– दया किस पर आयेगी? धनिक ओर सुखी पर या गरीब और दु खी पर?

'गरीब और दु खी पर।'

में आपसे पूछना चाहता हू कि आपने कभी दया के दर्शन किये हैं? मित्रो! दया का एक मन्दिर है। उस मन्दिर मे दया की मूर्ति विराजमान हे। आप चाहे तो दया–देवी के दर्शन करके अपने नयनो को कृतार्थ कर सकते हैं।

आप सोचते होगे कि कोन ऐसा अभागा हे जो दया–देवी के दर्शन न करना चाहे? आपका सोचना ठीक है और मेरा भी कर्त्तव्य हे कि में आपको उस देवी का मदिर बता दू, उसका आपको दर्शन कराऊ ओर साथ ही में स्वय दर्शन करके अपना सोभाग्य सफल करू।

म्हारी दया माता थाने मनवा देवी सासता।
था सम देवी नही कोई जग मे हाथा–हाथ हजूर।
तूठा तत्क्षण मिले कामना दु ख कर दे सब दूर रे।।म्हारी।।

इस पद मे बताया गया है कि दया माता के समान ससार म दूसरी कोई देवी नही है। आजकल जिसे देवी माता या शक्ति कहते हैं उस लागा ने भयानक रूप दे डाला हे। वह देवी आज घोर हत्याकारिणी बनी हुई हे। इस पर पशुओं का ओर कहीं–कही तो मनुष्या तक का वलिदान दिया जाता हे और उस बलिदान से देवी को सतोप हुआ समझा जाता हे। यह कितनी वडी भ्रमणा हे जो देवी हे– जगत की माता ह उसके लिए मनुष्य पशु, पक्षी कीट–पतग आदि समस्त छोटे–बडे जीवधारी अपने पुत्रा की वलि से प्रसन्न हो सकती हे? कदापि नहीं। अगर वह प्रसन्न हाती हे ता उस भगवती या दवी शब्द से पुकारना उन शब्दो को लजाना है। मगर दया दवी का स्वरूप

अतिशय सौम्य है अत्यन्त आह्लादकारी है कल्याणमय है। वह देवी घात नही करती किन्तु जगत् की रक्षा करती है।

विचार कर देखा जाये तो ज्ञात होगा कि ससार की स्थिति दया देवी के अनुग्रह पर ही निर्भर है। ससार मे दया देवी का राज्य न होता तो ससार श्मशान के समान भयानक होता और जीवधारियो का जीवन दुर्लभ बन जाता। किसी ने ठीक ही कहा है–

माता दया हो तुमको प्रणाम तेरे बिना है जग मृत्यु–धाम।
तू ही बचाती अरु पालती है,दु खी जनो के दु ख टालती है।

यही कारण है कि अलकार की भाषा मे दया को देवी माता या भगवती कहा जाता है।

देवीपुराण मे द्विभुजी चतुर्भुज, अष्टभुजी या सहस्त्र भुजी देवी किसे कहा गया है और उनके विषय मे क्या–क्या बतलाया गया है वह बताने का समय नही है। यहा सिर्फ एक ही बात देवीपुराण की कहता हू। पुराण मे बतलाया गया है कि शुम्भ और निशुम्भ नामक दो राक्षसो का देवी के साथ युद्ध हुआ। देवी इन राक्षसो का जब सिर काटती थी तब उनके सिर से जो रक्त के बून्द गिरते थे उन बून्दो से सहस्रो शुम्भ–निशुम्भ उत्पन्न हो जाते थे। देवी इन राक्षसो का वध करते–करते हैरान–परेशान हो गई, तब उसने एक उपाय किया। उसने रक्त भूमि पर नही गिरने दिया। अपने खप्पर मे वह खून लिया और वह पी गई। इससे देवी का नाम रक्त–पायिनी पड गया।

इस घटना के कारण आज उस देवी को हत्यारी और रक्तप्रिय समझा जाता है। उनके नाम पर हजारो लाखो निर्दोष और मूक प्राणियो की बलि चढाई जाती है। मैंने उस देवी का जो स्वरूप समझा है, उसके अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव मे वह देवी 'दया–देवी' ही है। उसके राग–द्वेष रूपी शुम्भ और निशुम्भ नामक दो शत्रु हैं। इन दोनो दुश्मनो को अगर राग–द्वेष से ही नष्ट करने का प्रयास किया जाये तो एक ही जगह सहस्रो राग–द्वेष उत्पन्न हो जाते है। अतएव दया–देवी उन्हे पी गई। उन्हे पी जाने से शुम्भ–निशुम्भ रुप राग–द्वेष की उत्पत्ति बन्द हो गई।

देवीपुराण की पूरी घटना जो अलकार है उसका विश्लेषण करके उस रूपक को सागोपाग समझने का समय नही है। अतएव सिर्फ यहा यही कहूगा कि दया के समान दूसरी देवी नही हे। जिस दिन दुनिया से दया उठ जायेगी उस दिन दुनिया मृत–धाम बन जायेगी। माता अपने पुत्र का सन्तान अपने माता–पिता का और एक आदमी दूसरे आदमी का रक्षण नही करेगा।

परोपकार, पारस्परिक सहकार क्षमा, सेवा आदि दिव्य भावनाए भूतल से उठ जाएगी। इस प्रकार दया के अभाव मे ससार की क्या स्थिति होगी इस बात की कल्पना ही दिल दहला देती है। पर ऐसा हो नहीं सकता। अगर ससार सदा—शाश्वत बना रहता है तो दया का अस्तित्व सर्वथा मिट नही सकता। प्राणिमात्र के अन्त करण मे न्यूनाधिक मात्रा मे उस देवी का निवास रहता है। सिह अत्यन्त निर्दय और हिसक माना जाता है फिर भी वह अपने कुटुम्ब के प्रति दयालु ही होता है। उसके अन्त करण के एक कोने मे दया की देवी की सौम्य—मूर्ति विद्यमान् है। वह घट—घट वासिनी है। हृदय के पट खोलो और जरा सावधानी से देखो तो तुम्हे अपना हृदय ही दया देवी का मदिर दिखाई देगा और तुम उस देवी के दर्शन करके कृतार्थ हो सकोगे।

और दया देवी क्या प्रत्यक्ष नही? उसके विषय मे 'इस हाथ दे उस हाथ ले' की कहावत पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। अन्तगड—सूत्र मे यही बात कही है कि दया देवी का शरण ग्रहण करने वाला कभी अपमानित नही होता। सुदर्शन सेठ दया का भक्त बन कर के ही अर्जुन माली के सामने गया था। भगवान् अरिष्टनेमि ने भी श्री कृष्ण महाराज से यही कहा था कि —

हे कृष्णजी आप उस पुरुष पर क्रोध न करे। उसने गजसुकुमार मुनि का कुछ भी अनिष्ट नहीं किया है। उसने उलटा उनका उपकार किया है— उन्हे सहायता पहुचाई है।

गीता मे भी यही कहा गया हे कि अत्यन्त अल्प दया धारण करने से भी प्राणी महापाप और महाभय से बच जाता हे।

मेघकुमार ने हाथी के भय मे खरगोश की दया की थी। अगर काई आदमी तीस प्रहर तक आपकी सेवा करे तो आप उसे पच्चीस—पचास रुपये या बहुत उदारता दिखायेगे तो सो रुपये दे देगे। मगर हाथी ने दया दवी की सेवा की तो देवी ने प्रसन्न होकर उसे तिर्यंच से मनुष्य बना दिया ओर फिर भगवान् का अन्तेवासी बनाकर विजय नामक स्वर्ग तक पहुचा दिया। यह हे दया देवी की देन।

प्रश्न किया जा सकता हे कि आपने दया की देवी को रूप दिया है —देवी का वाहन सिह है—सिह पर देवी सवार होती हे तो दया दवी का वाहन क्या? उत्तर यह हे कि हमारी दया देवी भी सिह पर आरूढ हे। देखिये—

ज्ञानरूप सिह की असवारी तप—तिरशूल हाथ।
हाक—धाक करती दुश्मन पर करे रिपू की घात रे।।म्हा ।।

दया देवी ज्ञान–रूपी सिह पर सवार होती है। ज्ञान सिह पर सवार होकर वह अज्ञान–तिमिर का विनाश करती है। जैसे सिह निर्बल पशुओ को मार कर खाता जाता है, उसी प्रकार यह ज्ञान–रूपी सिह, अज्ञान से निर्बल हुई इन्द्रियो को अर्थात् इन्द्रिय–जन्य भोगोपभोग की लोलुपता को मार कर खा जाता है– लोलुपता का समूल विनाश कर देता है।

पुस्तके पढ लेना और परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना ही ज्ञान नहीं है। दया देवी की अनुपस्थिति मे वह ज्ञान तो अज्ञान कहलाता है। इन्द्रिय दमन करना ही सच्चा ज्ञान है। इन्द्रिय दमन मे ही ज्ञान की सार्थकता है। इसके बिना ज्ञान निरर्थक है– बोझ है जो उल्टी परेशानी पैदा करके मनुष्य का शत्रु बन जाता है।

पढम नाण तओ दया।

अर्थात् पहले ज्ञान की आवश्यकता है, उसके पश्चात् ही दया देवी का आविर्भाव होता है।

जैसे कहा गया है कि बिना सिह के देवी ठहरे किस पर? इसी तरह बिना ज्ञान के दया कैसे हो सकती है? दया के वास्तविक स्वरूप का भान ही न होगा तो उसकी यथावत् आराधना कैसे सभव है? आज दया को जो रूप दिया जाता है और जिस रूप मे दया का पाल लेना माना जाता है उसका एकमात्र कारण अज्ञान ही है। ज्ञान प्राप्त करोगे तो पता चलेगा कि सच्ची दया का स्वरूप क्या है? अतएव मोह को हटाओ और सम्यक्–ज्ञान प्राप्त करो।

कई लोग आलस्य मे ही दया मान बैठे हैं। शरीर से काम न करना और ऐशोआराम मे पडे रहना यहा उनके लिए दया बन गई है। परन्तु ऐसा करने से आलस्य ने शरीर को घर बना लिया है। इसी आलस्य के कारण स्त्रिया घूमने लगती है तो यह समझा जाता है कि इन्हे भूत लग गया है या हिस्टीरिया रोग हो गया है।

मित्रो! स्वय आलस्य के वश होकर पडे रहना और दूसरो से काम करा लेना दया नही है। दया करनी हो तो पहले ज्ञान सीखो–ज्ञान से ही दया होती हे। दया देवी के दर्शन करना हो तो वह देखो ज्ञान रूपी सिह पर सवार है। अज्ञान से उसके दर्शन न होगे। जब तक अज्ञान विद्यमान है तब तक दया की परछाई पाना भी कठिन हे।

देवी के हाथ मे त्रिशूल होता हे जिसके द्वारा वह अपने शत्रुओ का हनन करती ह। इस दया देवी के हाथ मे क्या हे? इसका उत्तर यह है कि

दयादेवी तप रूपी त्रिशूल को ग्रहण किये हुए हे। तप–त्रिशूल से दुश्मन सदा भयभीत रहते हैं। इसी त्रिशूल के द्वारा वह अपने शत्रुओ का सहार करती ह।

यहा यह शका हो सकती हे कि जो दया देवी है वह वैरियो का नाश केसे करती हे? क्या वह हिसा करती हे? अगर वह हिसा करती हे तो फिर दया केसी?

जगत का निरीक्षण करो तो सर्वत्र विरोध या प्रतिपक्षिता दृष्टि–गोचर होती हे। यहा एक का दूसरा दुश्मन हे। प्रकाश का शत्रु अधेरा है ओर अधेरे का शत्रु प्रकाश हे। ज्ञान का शत्रु अज्ञान ओर अज्ञान का शत्रु ज्ञान हे। इस प्रकार एक शक्ति अपनी विरोधी शक्ति का सहार किया करती हे। लोग यह समझ बेठते हैं कि विरोधी शक्ति का नाश करना भी हिसा हे। वास्तव मे आत्मा या आत्मिक शक्तियो के विरोधियो का नाश करना हिसा नही है। अगर ऐसा होता तो अरिहत–अर्थात आत्मिक शत्रुओ को नाश करने वाले महापुरुष एव भगवान् क्यो कहलाते?

गीता मे जो धर्म–क्षेत्र ओर कुरु–क्षेत्र कहे हैं वे भी दूसरे ही हैं। कु–कुत्सित, का रु अर्थात उत्पत्ति जहा होती हे अर्थात जिस स्थान पर बुराइया उत्पन्न होती है वह कुरुक्षेत्र हे। जहा धर्म की उत्पति होती हे वह धर्म क्षेत्र कहलाता है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बनाने के लिए ही गीता का विस्तार है। गीता मे वास्तव मे देवी ओर आसुरी प्रकृति का युद्ध करवाया है। परन्तु साधारण लोग हिसा को ही लडाई समझते हे। यहा धर्मक्षेत्र ओर कुरुक्षेत्र का जो अर्थ किया गया है वह मेरी कल्पना का फल नही हे स्वय गाधीजी ने अपने अनुवाद मे यही अर्थ किया हे।

तात्पर्य यह हे कि ससार मे एक दूसरे का शत्रु हे। झूठ का शत्रु सत्य है सत्य का शत्रु झूठ हे। क्राध का शत्रु क्षमा ओर क्षमा का शत्रु क्राध हे। जब दया देवी ज्ञान सिह पर आरूढ होकर तप–त्रिशूल हाथ म लकर प्रकट होगी तब वह अपने विरोधी दल को केस बचा रहने दगी? अब प्रश्न यह हे कि दया का विरोधी कोन हे? उत्तर यह है कि दया की विरोधिनी हिसा ज्ञान का विरोधी अज्ञान ओर तप का विरोधी इन्द्रियभाग हे। दया दवी इन्ही की शत्रु हे। जब वह ज्ञान–सिह पर आरूढ हाकर तप का त्रिशूल हाथ म लकर युद्ध–क्षेत्र मे आती हे तब उसक विरोधिया के छक्क छूट जात हैं।

दया की यह शक्ति आज प्रत्यक्ष ही दिखाई पडती ह। जिनक हाथ मे एक फूल की छडी भी नहीं ह उनस विराट भौतिक शक्ति स सम्पन्न सरकार भी क्या कापने लगी है? सरकार क पास ताप तलवारे बन्दूक और मशीनगन हैं फिर भी अहिसा क सामने सब बकार क्यो हा गई हैं? यह दया का ही

अदभुत् प्रभाव है। गाधीजी विलायत गये हैं पर क्या अपने साथ तोप तलवार बाध कर गये है?

'नही।'

और जब वायसराय कही जाते है तो रेलवे लाइन पर पुलिस मडराती रहती है ट्रेन पर ट्रेन छोडी जाती है कि लोगो को यह पता न चले कि वायसराय साहब किस ट्रेन मे चल रहे है। इस अन्तर का कारण क्या है? यही कि गाधी जी के पास अहिसा की अमोघ शक्ति है और वायसराय के पास वह शक्ति नही है। जो शस्त्र का प्रयोग करता है उसे शस्त्र का भय बना ही रहता है। इसके विपरीत जो शस्त्र रखता ही नही है– जो शस्त्र द्वारा दूसरो को भयभीत नही करता, शस्त्र उसे भयभीत नही कर सकते। इतना ही नही जिसने शस्त्र–भय पर विजय प्राप्त कर ली है उसके सामने शस्त्र भोटे (भौथरे) हो जाते हैं।

दया देवी की सवारी का जैसा अलकारिक वर्णन किया गया है वैसा ही उसके मुकुट और उसकी भुजाओ का भी है पर उसे कहने के लिये अधिक समय अपेक्षित है। उसका वर्णन छोड कर यहा यही बताना है कि दयादेवी का निवास स्थान कहा है?

लख कर दु खीजन दीन जिसका हृदय है न पसीजता।
मुझ को रिझाना चाहता कैसे भला मैं रीझता?
जिसके हृदय मे है दया उसी पर मैं दया।
कर दू सुलभ उसको सभी सुख दू उसे मैं नित नया।।

दीन–दु खी–जन को देखकर ही दिल मे दया का उद्रेक होता है। दया कहती है कि जहा कही दुखिया को देखो, वही मेरा मदिर समझ लो। दुखिया का मन ही मेरा मदिर है। मै ईट और चूने के कारागार मे कैद नही हू। जड पदार्थो मे मेरा वास नही है। मैं जीते–जागते प्राणियो मे निवास करती हू।

यूनान के सुप्रसिद्ध तत्व–वेत्ता ने बूचड खाने मे दया के दर्शन किये थे। अगर तुम भी दया–देवी के दर्शन करना चाहते हो तो बूचडखाने मे जाकर देखो जहा अत्यन्त क्रूरता के साथ पीडा मे बिलखते हुए प्राणियो की गर्दन पर छुरिया चलाई जाती है। उन निस्सहाय और निरपराध प्राणियो का आर्त्तनाद कलेजे मे भाले की भाति चुभता है। यद्यपि जिन्होने अपना कलेजा फौलाद का बना लिया है उन पर उनका असर नहीं होता तथापि जिनका हृदय मास–पिड का है वे उससे थर्रा उठते हैं। वहा दया साकार होकर प्रकट

होती है। सर्वत्र विषादमयी करुणा व्याप्त रहती है। वहा के करुण दृश्य देख कर विवेकी का रोम–रोम न काप उठेगा। अतएव जहा दया के दर्शन होते हैं, वहा देखो। जहा देखने से दया दृष्टिगोचर नही होती वहा नजर दौडाने से क्या लाभ है?

जब आप व्याख्यान सुनने आते हैं तब रास्ते में अगर कोई लूला–लगडा भूखा–प्यासा, दीन–दुखिया मिल जाए तो क्या होना चाहिये?

'दया आनी चाहिये।'

मगर यदि कोई उसे देख कर मुह मोड ले और यहा आकर उच्च स्वर से दया के भजन गाये तो क्या यह ठीक कहा जायेगा? 'नहीं।'

परमात्मा और दया का कहना है कि दु खी को देखकर जिसका हृदय न पसीजे जिसके हृदय मे मृदुता या कोमलता न आये वह यदि मुझे रिझाना चाहता है तो मैं कैसे रीझ सकता हू?

मित्रो! दया का दर्शन करना चाहते हो तो गरीबो और दु खी प्राणियो को देखो। देखो, न केवल नेत्रो से, वरन् हृदय से देखो। उनकी विपदा को अपनी ही विपदा समझो और जैसे अपनी विपदा का निवारण करने के लिए चेष्टा करते हो वैसे ही उनकी विपदा निवारण करने के लिए यत्नशील बनो।

सुना है कि अमेरिका का जज बग्घी मे बैठा अदालत जा रहा था। मार्ग मे उसने देखा कि सूअर कीचड मे ऐसा फस गया है कि प्रयत्न करने पर भी वह निकल नहीं पाता है। सूअर की बेबसी देखकर जज गाडी से उतर पडा और सूअर के पास जाकर कीचड से उसका उद्धार कर दिया। जब सूअर बाहर निकल आया और भाग गया तब जज प्रसन्न होकर अपनी गाडी मे बैठ गया। सूअर को निकालने मे जज की पोशाक कीचड मे भीग गई थी। कोचवान कहने लगा–'हजूर आपने मुझे आज्ञा क्यो नहीं दी? आपकी सारी पोशाक खराब हो गई हे। सूअर को तो में ही निकाल देता। जज ने जवाब दिया–'इस कार्य से मुझे आन्तरिक आनन्द हुआ हे जो सात्विक सन्तोष हुआ है वह तुम्हारे द्वारा करवाने से क्या सम्भव हो सकता था? भोजनजन्य आनन्द लाभ करने के लिए मनुष्य स्वय खाता है दूसरो को अपने बदले नहीं खिलाता तो फिर उस आनन्दप्रद कर्त्तव्य को में स्वय न करके दूसरे से क्या कराता?

जज साहब बग्घी मे बेठे ओर बग्घी अदालत की ओर अग्रसर हुई। अदालत पहुचने पर वहा के लोगो ने जज साहब की पाशाक देखी ता आश्चर्य–चकित हो रहे। साच रहे–आज मामला क्या ह जज साहब ओर इस भेष मे? आखिर कोचवान ने सारी घटना सुनाई। उस सुनकर सब लागा क

विस्मय का पार न रहा। लोग कहने लगे—इतना बडा आदमी सूअर को भी कष्ट मे न देख सका। जो व्यक्ति न्यायासन पर बैठकर अपने कर्त्तव्य का पालन करने मे कठोर—से—कठोर बन सकता है, वही दूसरे क्षण फूल से भी कोमल होता है। कवि ने ठीक ही कहा है—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणा चेतासि, को हि विज्ञातुमर्हति।।

अर्थात् असाधारण पुरुषो का चित्त वज्र से भी अधिक कठोर और फूल से भी अधिक कोमल होता है। उनके चित्त की थाह पाना बडा कठिन है।

सचमुच असाधारण पुरुष वह है जो अपने धर्म एव कर्त्तव्य का पालन करने मे वज्र से भी अधिक कठोर बन जाता है। उसे ससार की कोई शक्ति धर्मपथ से या कर्त्तव्यमार्ग से च्युत नही कर सकती। वह लोक लाज की भी परवाह नही करता और वैसा करने से कोई तात्कालिक बाधा आती है तो उससे भी नही डरता। किन्तु जब किसी प्राणी को विपदा मे पडा हुआ पाता है तो उसका हृदय एकदम फूल—सा कोमल बन जाता है। दूसरे प्राणी के आन्तरिक सताप की आच लगते ही उसका हृदय नवनीत की भाति पिघल जाता है।

जज साहब की दया से सभी प्रभावित हुए। सभी लोग मुक्तकठ से उनकी प्रशसा करने लगे। अपनी प्रशसा सुनकर जज साहब ने कहा—मैंने सूअर का उद्धार नही किया है वरन् अपना उद्धार किया है। उस सूअर को कीचड मे फसा देखकर मेरे हृदय ने दु ख अनुभव किया। अगर मैं उसे यो ही फसा हुआ छोड आता तो मेरे दु ख का अकुर नष्ट न होता, बल्कि वह अधिकाधिक बढता चला जाता। वह सूअर निकल गया तो मेरे दिल से दु ख का काटा निकल गया है। अब निश्शल्य हू, निराकुल हू।

जज की यह कैफियत सुनकर लोग अधिक दग हुए। लोग पैसे भर भलाई करते है तो सेर भर अहसान लादने की चेष्टा करते है और अपना बडप्पन प्रकट करते नही अघाते। एक जज साहब हैं जो सूअर जैसे प्राणी पर उपकार करके भी अपने—आपको उपकृत समझते है। न किसी पर अहसान न किसी किस्म की डीग।

यह दया है। यह धर्म है। यह कर्त्तव्य है। जो दूसरे को दु खी देखकर उसके दु ख को आत्मीय भावना से ग्रहण करता हे और दूसरे के सुख मे प्रसन्न होता है वही दयालु हे वही धर्मी है कर्त्तव्यनिष्ठ है।

भाइयो! अगर आपके अन्त करण मे दया का वास होगा तो आप ऐसे वस्त्र कदापि न पहनेगे जिसकी बदोलत ससार मे बेकारी और गरीबी बढती है। आप ऐसा भोजन कदापि न करेगे जिससे आपके भाई–बन्दो को भूख के मारे तडफ–तडफ कर मरना पडता है। आपके प्रत्येक व्यवहार मे गरीबो की भलाई का विचार होगा। आपके अन्त करण मे निर्धनो के दु खो के प्रति सदा सवेदना जागृत रहेगी। आप उनके प्रति सदेव सहानुभूतिमय होगे। उनके सुख के लिए प्रयत्नशील होगे। आप उनकी सहायता करेगे और उस सहायता के बदले उन पर अहसान का बोझा नही लादेगे, वरन् उनका उपकार करके अपने आपको उपकृत समझेगे।

भगवान् सुबुद्धिनाथ का जो राज्य मैंने बताया है वह राज्य अहिसा की जड जमा कर प्राणिमात्र को सुख पहुचाने से हुआ है। अगर आप लोग भगवान् के राज्य का सुख अनुभव करना चाहते है–अगर आप उसमे हिस्सा लेना चाहते हैं तो भगवान् द्वारा प्रतिपादित दया की आराधना करो।

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु, वैर मज्झ ण केणई।।

अर्थात् मैं समस्त जीवो से क्षमा –याचना करता हू। सब जीव मेरे अपराध क्षमा करे। प्राणिमात्र पर मेरा मैत्रीभाव है। मेरा किसी के प्रति वेर नही है।

इस भव्य भावना को जिह्वा से न बोलो, वरन् हृदय से बोलो। इस भावना मे जो उत्कृष्ट भाव भरे हैं उन्हे हृदय मे स्थान दो। प्राणिमात्र के प्रति मैत्री का भाव अनुभव करो और सच्चे मित्र की तरह व्यवहार करो।

द्वारका नगरी मे बूढा ईंटे ले जा रहा था तो इससे श्रीकृष्ण का क्या बिगडता था? उन्होने यह क्यो नहीं समझ लिया कि बूढा अपने कर्मो का फल भोग रहा हे ओर हम अपने कर्मो का फल भोग रहे हैं? जो तीन खण्ड क नाथ थे, समस्त यादव जिनको शिरोधार्य करते थे, जिनकी द्वारका सोने की बनी थी, उन कृष्ण को देखने के लिए कितने राजा–महाराजा लालायित न रहत होगे? पर कृष्ण ने ओर किसी को न देखकर उस बूढे को देखा। द्वारका म और कोई दु खी दिखता ही कहा, केवल वही दु खी दिखाई दिया। कृष्ण क दिल मे दया नही होती तो वे उसकी ओर नजर ही क्या दोडाते?

कोई–कोई शास्त्र ईश्वर और जीव को मूलत भिन्न–भिन्न कहते हैं। लेकिन महाभारत म लिखा हे कि श्रीकृष्ण जी ने वदरीवन म कई जन्म तप किया है। कृष्णजी स्वय कहत ह–'ह अर्जुन! मंन और तूने साथ–साथ तप किया है।

इससे यह सिद्ध है कि आत्मा अपने समस्त विकारो को जब तपस्या की आग मे भस्म कर देता है तब वह निर्विकार होकर अपने सहज स्वभाव मे स्थित हो जाता है। सवर के द्वारा नवीन कर्मो के आगमन रुक जाने पर और निर्जरा द्वारा पूर्वकृत कर्मो का विनाश हो जाने पर आत्मा निष्कर्म बन जाता है। उस निष्कर्म अवस्था मे अनन्त–ज्ञान, अनन्त–दर्शन अनन्त–सुख और अनन्त–शक्ति का आविर्भाव हो जाता है। यही मोक्ष है अतएव प्रत्येक आत्मा परमात्मपद का अधिकारी है। अगर आप तपस्या करके कर्मो का क्षय करेगे तो अनन्त अक्षय और अव्याबाध कल्याण के भागी होगे।

महावीर–भवन देहली ता0 12–9–31

6. कल्याणी करुणा

श्री दृढरथ नृपति पिता, नन्दा थारी माय।
रोम–रोम प्रभु मो भणी, शीतल नाम सुहाय।।जय।।

सभा मे मैंने जो प्रार्थना बोली है वह केवल मेरी नही है, किन्तु सभा मे जितने व्यक्ति बैठे हैं, उन सभी की है। यह प्रार्थना समष्टि की ओर से की गई है।

ईश्वर की प्रार्थना मे कितना बल है यह बात वही जानता है जो प्रार्थना करता रहता है। अभी आप प्रार्थना के बल को भले ही न समझ सके लेकिन निरन्तर प्रार्थना करते रहने से उसका बल मालूम हो जायेगा। बालक जब अक्षराभ्यास आरम्भ करता है तब उसे अक्षर का महत्व मालूम नही होता। धीरे–धीरे अभ्यास करके जब वह निष्णात बन जाता हे। तब अक्षर का महत्व भी समझने लगता है। इसी प्रकार श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करने वाला धीरे–धीरे प्रार्थना की अद्भुत शक्ति का अनुभव करने लगता है। उसे यह भी प्रतीत हो जाता है कि अन्त मे प्रार्थी और प्रार्थ्य अर्थात् प्रार्थना करने वाला और जिसकी प्रार्थना की जाती है वह दोनो एक हो जाते हैं। प्रार्थना जब प्रार्थी को प्रार्थ्य बना देती हे तब प्रार्थना की उपयोगिता नही रह जाती।

इस प्रार्थना मे कहा गया है–

जय जय जिन त्रिभुवन धनी करुणानिधि करतार।
सेव्या सुरतरु जेहवो वाछित सुख दातार।।

हे जगन्नाथ! हे भूतनाथ! हे प्रभो तुम करुणा–निधि करतार हो। तुम करुणा के अक्षय कोष हो। हे नाथ! तुम्हारी करुणा अपार हे। चर्म चक्षुआ स तुम्हारी करुणा का पार नहीं मिल सकता। जहा चर्म–चक्षुआ का तुम्हारी करुणा दृष्टिगोचर नही होती वहा ज्ञानी–जन अपन दिव्य नेत्रा स तुम्हारी परम करुणा के विस्तार को देखत हें।

भगवान् करुणानिधान किस प्रकार है इस प्रश्न का समाधान यह है कि जो हमारी रक्षा करे, हमे कल्याण का पथ बतावे और जो स्वय कल्याण–पथ पर चलकर उस पथ की आचरणीयता सर्वसाधारण जनता के समक्ष सिद्ध कर दिखावे, वही करुणानिधान कहलाता है। भगवान् हमारे ज्ञान, दर्शन आदि भाव प्राणो के रक्षक हैं सिद्ध–पथ के उपदेशक हैं और मुक्ति–मार्ग पर स्वय अग्रसर होने के कारण उस मार्ग की आचरणीयता के समर्थक हैं। इसलिए भगवान् करुणानिधान हैं।

करुणानिधान की करुणा निराली होती है। अगर कोई मनुष्य घोर कष्ट पहुचा रहा है यहा तक कि प्राणान्तक दण्ड दे रहा है, उस पर भी करुणानिधान की करुणा का प्रवाह अखण्ड रूप से प्रवाहित होता रहता है, ऐसा मनुष्य भी उसकी करुणा से वचित नहीं होता। जिसकी करुणा का स्रोत इतना प्रवाहशील होता है वही करुणानिधान पद का अधिकारी होता है।

करुणानिधान का स्वरूप स्पष्ट करने के लिए एक कथा कहना अधिक उपयोगी होगा। गजसुकुमार मुनि का उल्लेख मै पहले व्याख्यान मे कर चुका हू। उसी का स्पष्टीकरण यहा किया जाता है।

वसुदेवजीरा नन्दन, नामे गजसुकुमार।
छो अति सुन्दर कलावत वय बाल,
सुनि नेमीजीरी वाणी छोड्यो मोह–जञ्जाल।।
भिक्खुनी पडिया, गया मसाने महकाल।
देखी सोमल कोप्यो मस्तक बाधी पाल।।
खेराना खीरा सिर ठोका असराल।
मुनि नजर न खण्डी मेटी मननी झाल।।
कठिन परीषो सहने मोक्ष गया तत्काल।
भावे करि वइ त्रिविधे तिहुकाल।।

थोडे–से शब्दो मे उन परम करुणानिधान की यह प्रार्थना है।

पहले बताया जा चुका है कि महारानी देवकी को पुत्र की इच्छा हुई और कृष्णजी ने देव की आराधना की। देव आया। कृष्णजी ने उससे अपना प्रयोजन कहा। देव ने कहा– आपके छोटा भाई अवश्य होगा परन्तु वह युवावस्था मे पैर धरते ही मुनि–दीक्षा अगीकार करके कल्याण–मार्ग का साधन करेगा।

देव की बात सुनकर कृष्ण बहुत प्रसन्न हुए। वे मन ही मन सोचने लगे–'मनुष्य जन्म की सार्थकता स्व–पर का कल्याण निरपेक्ष साधु–अवस्था

धारण करने से ही होता है। विलास-मय जीवन व्यतीत करके विलास की गोद मे ही उत्पन्न होकर अन्त मे अशुचि मे ही मरता है। विलासितापूर्ण जीवन आत्मा के लिए अहितकर तो है ही, साथ मे ससार के समक्ष अवाछनीय आदर्श उपस्थित कर जाने से ससार के लिए भी अहितकर हे। मेरे लिए बडी प्रसन्नता की बात है कि मेरा लघु-भ्राता सयमी बन कर जगत् मे एक स्पृहणीय आदर्श उपस्थित कर जाएगा ओर अपना भी कल्याण करेगा। वह अपने आपको प्रकाशित करेगा ओर ससार मे भी प्रकाश की किरणे बिखेर जायेगा।

कृष्णजी घर लौट आए और माता देवकी से कहने लगे-माताजी आप विषाद न कीजिये। मेरा छोटा भाई जन्म लेगा और वह ससार को मोहित करने वाला होगा।

एक रात को देवकी ने स्वप्न मे सिह देखा। सिह देखकर उसने गर्भ धारण किया ओर यथा समय पुत्र का प्रसव किया। नव-जात पुत्र अत्यन्त सुकुमार था-ऐसा सुकुमार जेसे गज का तालु हो या जैसे इन्द्रगोप (वीरबहूटी नामक कीडा) सुर्ख, कोमल और सुन्दर होता है-उसी प्रकार वह पुत्र भी अनुपम सुन्दर, सुकुमार ओर सुर्ख रग का था। जो यादव वश उस समय ससार मे अद्वितीय था, जिसकी ऋद्धि अपार थी उस वश मे उत्पन्न होने वाले महाभाग्यशाली पुत्र का जन्मोत्सव किस धूम-धाम से मनाया गया होगा? जन्मोत्सव खूब खुले दिल से मनाया गया मानो पहले के समस्त पुत्रो के जन्मोत्सव की कसर इसी समय पूरी की जा रही हो। वास्तव मे गजसुकुमार का जन्मोत्सव जिस आनन्द ओर उल्लास के साथ मनाया गया वेसा उत्सव यादव वश मे किसी भी कुमार का नही मनाया गया। जन्मोत्सव के वर्णन करने के लिये समय नहीं है, अतएव सक्षेप मे इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि गजसुकुमार का जन्मोत्सव ससार के उत्सवो म एक महत्वपूर्ण वस्तु थी।

नवजात-शिशु का जन्मोत्सव मनाये जाने के पश्चात् उसका नामकरण किया गया। शिशु गज के तालु के समान सुकुमार था, अत उसका नाम गजसुकुमार रखा गया। गजसुकुमार कृष्ण बलदेव आदि के अन्त पुर का तथा साब, प्रद्युम्न आदि समस्त यादवो की आखो का तारा बन गया।

बालक अपनी स्वाभाविक हसी से तथा बाल चेष्टाओ स देवकी को अपूर्व आनन्द पहुचाने लगा ओर यादव कुल मे चहल-पहल मचाने लगा। गजसुकुमार मानो प्रसन्नता की मूर्ति था जो ओरो को भी प्रसन्नता प्रदान करता रहता था। इस प्रकार आनन्दोल्लास मे गजसुकुमार का शशवकाल समाप्त हुआ। शैशव की समाप्ति हो जाने पर उसे समस्त कलाआ का शिक्षण दिया गया।

आजकल पुत्र को जन्म देने की लालसा का तो पार नही है, पर उसमे उत्तम सस्कार डालने की ओर शायद ही किसी का ध्यान जाता है। लोग पुत्र पाकर ही अपने को धन्य मान बैठते हैं। पुत्र को जन्म देने से कितना महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सिर पर आ जाता है, यह कल्पना बहुतो को नही है। पुत्र को जन्म देकर सुसस्कृत न बनाना, घोर नैतिक अपराध है। अगर कोई मा–बाप अपने बालक की आखो पर पट्टी बाध दे तो आप उन्हे क्या कहेगे?

'निर्दयी।

बालक मे देखने की जो शक्ति है उसे रोक देना माता पिता का धर्म नही है। इसके विपरीत उसके नेत्र मे अगर कोई रोग है– विकार है तो उसे दूर करना उनका कर्त्तव्य है।

यह बाह्य–चर्म–चक्षु की बात है। चर्म–चक्षु तो बालक के उत्पन्न होने के पश्चात कुछ समय मे आप ही खुल जाते है, पर हृदय के चक्षु इस तरह नही खुलते। हृदय के चक्षु खोलने के लिये सत्सस्कारो की आवश्यकता पडती है। बालको को अच्छी शिक्षा देने से उनके जीवन का निर्माण होता है। शिक्षा के सम्बन्ध मे भी बहुत विचार की आवश्यकता है। शिक्षा अर्थ, काम और मोक्ष से सम्बद्ध होनी चाहिये। जो शिक्षा इन चार पुरुषार्थो मे से किसी का विरोध करती है वह जीवन को सर्वांगपूर्ण और सफल नहीं बना सकती। तात्पर्य यह है कि अर्थ की शिक्षा ऐसी न हो जो काम और धर्म का विरोध करती हो या उनसे निरपेक्ष हो। इसी प्रकार काम की शिक्षा अर्थ या धर्म आदि का विरोध करने वाली नही होनी चाहिये। धर्म की शिक्षा अर्थ और काम की विरोधिनी नही होनी चाहिए। परस्पर सापेक्ष भाव से धर्म अर्थ और काम की शिक्षा होने से मोक्ष सुलभ होता है। कहा भी है–

परस्पर विरोधिन, त्रिवर्ग यदि सेव्यते।
अनर्गलमद सौख्यमपवर्गी ह्यनुक्रमात्।।

अर्थात–परस्पर विरोध न करके–एक दूसरे से अनुस्यूत करके धर्म अर्थ और काम रूप त्रिवर्ग का सेवन किया जाये तो निर्बाध सुख की प्राप्ति होती है और अनुक्रम से मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है।

शिक्षा किस प्रकार की होनी चाहिये इस विषय का अच्छा वर्णन महाभारत और किरात काव्य मे मिलता है। आज उस शिक्षा को प्रचलित किया जाए तो जमाना ही पलट सकता है और वही जमाना फिर आ सकता है जिसमे ससार सानन्द शान्त सतुष्ट और समृद्ध था तथा नैतिकता ओर धार्मिकता जीवन मे ओत–प्रोत थी। लेकिन आज वह शिक्षा–विधि सस्कृत के महाकाव्यो मे ही पडी है।

सारांश यह कि अर्थ, काम और धर्म—इन तीनो को साथ लेकर शिक्षा चलनी चाहिये। दो को भुलाकर एक को ही सामने रखने से जीवन सम्पन्न नहीं बन सकता। धर्म—शिक्षा का होना अनिवार्य है पर वह ऐसी न हो जिससे भूखो मरने का समय आ जाए और धर्म—शिक्षा के प्रति जनता मे कुत्सा भाव उत्पन्न हो जाए। धर्म, अन्याय—आचरण का विरोध करता है, लेकिन गृहस्थ के लिए न्याययुक्त आचरण से धनोपार्जन का निषेध नही करता। इसी प्रकार काम भी अर्थ और धर्म का विरोधी न हो तथा अर्थ धर्म और काम मे बाधक नही होना चाहिये।

शिक्षा—सम्बन्धी इस सक्षिप्त कथन मे शिक्षा—नीति का मूल—भूत आधार समाविष्ट हो जाता है। इस आधार पर अगर शिक्षा की इमारत खडी की जाए तो जीवन सफल और सुखमय बन जायेगा।

गीता मे एक जगह कहा गया है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

अर्थात्—हे अर्जुन! मैं वह काम हू जो धर्म से विरोध नही करता।

कुमार गजसुकुमार को ऐसी ही विद्या सिखाई गई। तदनन्तर जब वे कुमारावस्था से युवावस्था मे प्रवेश करने लगे तब उनके विवाह की तैयारी होने लगी।

इधर विवाह की तैयारी होने लगी और उधर द्वारका नगरी के बाहर भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ मानो, वे भी गजसुकुमार के लिये एक अलौकिक कन्या लाये हो। कृष्ण वसुदेव आदि यादव गजसुकुमार का ऐसा विवाह करना चाहते थे जैसा अभी तक किसी यादवकुमार का न हुआ हो। किन्तु गजसुकुमार का यह विवाह नही होना था। उनका विवाह तो उस अलौकिक कन्या के साथ होना था जिसे स्वय भगवान् अरिष्टनेमि लेकर पधारे हैं। जैसे अच्छे वर की बारात सभी अपने—अपने यहा बुलाना चाहते हैं उसी प्रकार गजसुकुमार की बारात बुलाने के लिये भगवान् नेमिनाथ भी एक कन्या लाए हे—ऐसी ही कुछ उपमा यहा बनती दिखाई देती हे।

द्वारका नगरी के बाहर भगवान् का समवशरण हे। उसमें भगवान् शात—दात—भाव से विराजमान् है। आसपास के वातावरण मे पवित्रता हैं। सर्वत्र सात्विकता का साम्राज्य हे। सोम्य वायुमण्डल मे एक प्रकार का आह्वान हे—उत्साह हे फिर भी गम्भीरता हे। अनेक भव्य—जन आते हे और भगवान् के मुख—चन्द्र से झरने वाले अमृत का पान करके कृतार्थ होते है।

महापुरुष ही महापुरुष की चाहना करते है। वही महापुरुष की महत्ता जानते है। बहुमूल्य रत्न लाने वाले का महत्त्व जोहरी ही जान सकता है। जो ग्रामीण मूल्यवान रत्न की कद्र नही जानते वे उस रत्न को लाने वाले की क्या कद्र कर सकेगे? एक कवि ने कहा है–

वे न यहा नागर बडे, जेहि आदर तव आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयो, गवई गाव गुलाब।।

अर्थात्–नगर मे–विवेकी पुरुषो मे–गुलाब के पानी का भी आदर होता है–परन्तु मूर्खो के गाव मे फूले हुए गुलाब की भी कद्र कौन करता है। वे तो काटेदार पौधा समझकर उसे काट फैकेगे। इसी बात को दृष्टि मे रख कर कवि कहता है–हे गुलाब! यहा वे बडे नागरिक नही हैं जो तेरे पानी की भी कद्र करते हैं। यहा तो तेरा फूलना भी न फूलने के समान है।

तात्पर्य यह है कि जो जिसके गुणो को जानता है वही उसका आदर करता है। जिसे जिसके गुणो का पता नहीं वह उसका आदर करने के बदले निरादर ही कर बैठता है।

न वेत्ति यो यस्य गुण–प्रकर्ष, स त सदा निन्दति नात्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भजातान् मुक्तान्परित्यज्य विभर्त्ति गुञ्जान्।।

अर्थात–जो जिसके गुण की विशेषता से अनभिज्ञ है वह सदा उसकी निन्दा करता है तो इसमे क्या आश्चर्य है? भीलनी, गज–मुक्ता को छोडकर गुजाफल (चिरमी) को ही अपना आभूषण बनाती है।

जैसे भीलनी के व्यवहार से गजमुक्ता का मूल्य या महत्व घट नही जाता उसी प्रकार महापुरुष का आदर न करने से ही महापुरुष की महत्ता कम नही हो जाती। जो महापुरुष के गुणो से अनभिज्ञ है वे भले ही उनका आदर न करे पर गुणज्ञ–जन तो उन्हे अपने सिर–आखो पर लेते हैं।

श्रीकृष्ण भारतीय साहित्य मे महापुरुष माने गये हैं। वे सदा मुनियो का सम्मान करते थे। महाभारत मे लिखा है कि कृष्णजी युधिष्ठिर के पैरो पडते थे और युधिष्ठिर उनके सिर पर हाथ फेर कर उन्हे प्रेम–पूर्वक आशीर्वाद देते थे। इस प्रकार की भारत की प्रत्येक साहित्य–शाखा मे यह स्पष्ट है कि कृष्णजी मुनियो का और सज्जन पुरुषो का खूब आदर करते थे।

भगवान अरिष्टनेमि के पधारने का वृत्तान्त जब श्रीकृष्णजी को मालूम हुआ तो उनकी प्रसन्नता का पारावार न रहा। भगवान् अरिष्टनेमि का आदर करने तथा उन्हे वन्दना करने के लिए भक्ति के आवेश मे वे भगवान् के सम्मुख जाने को तेयार हुए। कृष्णजी जाने की तेयारी मे ही थे कि

गजसुकुमार अचानक वहा आ पहुचे। गजसुकुमार ने कृष्णजी को तैयार होते देख कर पूछा– भैया, आज कहा जाने की तेयारी हे? यह बाजे क्यो बज रहे हें? सेना किस लिए सजाई जा रही हैं?

हिरणगमेषी देव ने कृष्णजी को पहले ही बता दिया था कि गजसुकुमार युवावस्था मे पेर धरते ही मुनि हो जाऐगे। फिर भी उन्होने भगवान् के आगमन का वृत्तान्त गजसुकुमार से गुप्त रखना उचित न समझा। उन्होने यह नहीं सोचा कि कहीं भगवान् के दर्शन करके यह मुनि न बन जाय इसलिये इसे भगवान् के आगमन का हाल बताना ठीक नही है। श्रीकृष्ण साधुत्व को उत्कृष्ट समझते थे। गीता से भी इसका समर्थन होता है। फिर तो जो जिस दृष्टि से किसी ग्रथ को देखता हे उसे वही दिखाई देने लगता है।

गजसुकुमार की बात का उत्तर देते हुए कृष्ण ने कहा–'भाई नगरी के बाहर भगवान् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ हे उन्ही की वन्दना और सेवा के लिये जाने की तैयारी हे। आज द्वारका का सोभाग्य जागा हे तो उसका स्वागत करना ही चाहिये।

गजसुकुमार–'मैं समझता था आप ही ससार मे सर्वश्रेष्ठ हें आप ही सबसे बडे हैं, लेकिन आप भी उन्हे वन्दना करते हें। अगर वे भगवान इतने महान् हें तो में भी उन्हे वन्दना करने चलूगा। आप आज्ञा दे तो में भी तेयार हो लू।

श्री कृष्ण ने कहा– अच्छी बात हे, तुम भी चलो।

श्रीकृष्णजी ओर गजसुकुमार जी एक ही हाथी पर सवार हुए। दोना पर चमर ढोरे जाने लगे ओर छत्र तान दिया गया। इस प्रकार राजोचित वेभव के साथ श्रीकृष्णजी भगवान् के दर्शनार्थ नगरी के वीचो वीच होकर रवाना हुए। कृष्णजी गजसुकुमार की युवावस्था का विचार करके उनके विवाह सम्बन्धी मसूबे बाध रहे थे। नगर के मध्य भाग मे उनका हाथी अपनी गभीर गति से चला जा रहा था। इसी समय सामल नामक ब्राह्मण जिसकी पत्नी का नाम सोमश्री था कन्या सोमा अपने राजमार्ग पर क्रीडागण म गद खल रही थी। सोमा–क्या रूप मे क्या गुण म आर क्या उम्र म– इतनी उपयुक्त आर उत्कृष्ट कन्या थी कि कृष्णजी की नजर उस पर ठहर गई।

जिस पर कृष्णजी की नजर ठहर जाये उसकी सुन्दरता कितनी अधिक हागी? 'वडा हीरा वह ह जिस जाहरी वडा कह। काहिनूर हीर क नाम का अर्थ ह–प्रकाश का पहाड। यह नाम काहिनूर न अपन–आप नहीं

रख लिया है किन्तु परीक्षको ने उसकी परीक्षा करके गुण की उत्कृष्टता के कारण उसे वह नाम दिया है। श्रीकृष्णजी इस कन्या के सुयोग्य परीक्षक थे। उन्होने उसे सुयोग्य समझा और सोचा–यह गजसुकुमार की सह–धर्मिणी बनने योग्य है–सभी प्रकार से यह सम्बन्ध उपयुक्त होगा।

कृष्णजी ने अपने एक आदमी को बुलाया और सोमा की ओर सकेत करके कहा– देखो यह कन्या किसकी है? जिसकी कन्या हो उसे गजसुकुमार के लिए मेरी ओर से इसकी याचना करो। यदि इसके माता–पिता मेरी याचना स्वीकार करे और कन्या दे तो इसे ले जा कर मेरे कुवारे अन्त पुर मे पहुचा देना।

प्राचीनकाल मे महिला–वर्ग को किस दृष्टि से देखा जाता था, यह बात कृष्ण के कथन से स्पष्ट हो जाती है। उस समय भी आजकल की तरह स्त्री को 'पाव की जूती' समझा जाता होता तो कृष्ण उसके लिये याचक न बनते। जिन के पैरो पर ससार का वैभव लोटता था, वे कृष्ण एक सामान्य घर की लडकी के लिये प्रार्थी बने यही घटना स्त्री–समाज का गौरव सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

कृष्णजी की इस याचना से एक बात और प्रकट होती है। वह यह कि उस समय आजकल की भाति जाति–पाति का भेद–भाव नही था। कृष्णजी को याचना करते समय यह पता नही था कि वह कन्या किसकी है–किस जाति की या किस वर्ग की है? उन्होने यह जानने की आवश्यकता भी नही समझी। फिर भी सिर्फ कन्या को देखकर उसे योग्य जानकर उसकी याचना की है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आजकल के समान प्रगाढ जातीय–बन्धन उस समय नही था। हा वर्ण–व्यवस्था उस समय भी थी। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का विभाग विद्यमान था किन्तु इस विभाग के कारण अहकार या अभिमान नही था। वर्ण–व्यवथा के आधार पर रत्न का अनादर नही किया जाता था। नीच समझे जाने वाले वर्ण मे भी यदि कन्या या वर रत्न होता तो उसे बिना किसी सकोच के आदर के साथ चक्रवर्ती भी अपना लेता था।

आज असली वर्ण–व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो चुकी हे और उसके स्थान पर अनगिनत–जातिया–उप–जातिया दिखाई पडती हे। अब तो ब्राह्मण–ब्राह्मण क्षत्रिय–क्षत्रिय वैश्य–वैश्य और शूद्र–शूद्र भी एक नही हें। शूद्रो मे भी एक जाति का शूद्र दूसरी जाति के शूद्र को स्पर्श करना पाप समझता है। न जाने अस्पृश्यता कहा से ओर कसे चल पडी हे जिसने

भारतीय जन–समाज की एकता को छिन–भिन्न कर दिया और जो भारतवर्ष के विकास मे बडी बाधा बनी हुई है। इससे समाज का उत्थान कठिन हो गया है और अब लोग अस्पृश्यता को भी धर्म का अग मान रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जैसे आजकल जातियो के नाम पर सकीर्ण दल मौजूद हैं और उनके कारण व्यापक भावना उत्पन्न नहीं होने पाती वैसे दल उस समय नही थे। अतएव विवाह आदि कार्यों मे जातीय भेद–भाव बाधक नही बनता था। वर्ण थे, सभी वर्णो मे परस्पर विवाह–सम्बन्ध होता था।

यदि यह कहा जाये कि कृष्णजी राजा थे, अतएव उनका इस प्रकार का सम्बन्ध करना अनुचित नही समझा जा सकता पर सर्व सामान्य जन ऐसा करते थे, इसका क्या प्रमाण है? इसका उत्तर प्राचीन सस्कृत साहित्य मे यत्र–तत्र–सर्वत्र बिखरा पडा है। विवर्ण–विवाह, अनुलोम विवाह प्रतिलोम विवाह आदि के सैकडो उदाहरण मिलते है। यही नही, इन विवाहो का स्मृति–कारो ने विधान भी किया है।

पालित श्रावक था। वह पिहुण्ड नामक नगर के लिये समुद्र पार गया और वहा से कन्या ब्याह कर लाया था। पालित वैश्य था पर उस कन्या का क्या पता कि वह किस जाति की थी? इससे भी यही विदित होता है कि पहले जाति का ऐसा बधन नही था।

हा, जाति–बधन न मानकर–जाति का उत्कर्ष करने वाले और वास्तविक गौरव बढाने वाले नियमो का उल्लघन करके उच्छृखल बन जाना एक बात है और जातीय स्वतत्रता होना दूसरी बात है।

पालित की विदेशी पत्नी से उत्पन्न हुआ समुद्रपाल नामक पुत्र भी श्रावक हुआ और दीक्षा लेकर अन्त मे मुक्त हुआ।

जैन–धर्म सकीर्ण धर्म नही है। वह अपनी विशालता के कारण समस्त धर्मों का सम्राट बनने योग्य धर्म है। मगर उस धर्म के मर्म को समझने और आचरण मे लाने वालो की कमी है। धर्म धर्मात्मा के विना प्रत्यक्ष नही होता। अगर जैन–धर्म के अनुयायियो मे वह विशालता आ जाये तो जैन–धर्म एक कोने मे उपेक्षणीय की तरह न पडा रहे और ससार को आदर्श बना दे।

कृष्णजी का भेजा हुआ प्रतिनिधि सोमल के पास पहुचा। उसने कृष्णजी की याचना सोमल के सम्मुख रख दी। सोमल बहुत प्रसन्न हुआ। भला रत्न के कटोरे मे कौन भीख न देना चाहेगा? गजसुकुमार जैसा वर और श्रीकृष्ण जैसा याचक मिले तो कौन अभागा ऐसा होगा जो अपनी कन्या देना स्वीकार न करे। सोमल ने प्रसन्नता के साथ अपनी कन्या दे दी। वह कृष्ण के आदेशानुसार कृष्ण के कुवार अन्त पुर म भेज दी गई।

कुवारे अन्त पुर मे भेज देने से पता चलता है कि अभी गजसुकुमार के विवाह मे देर है। विवाह होने से पहले कन्या राजघराने के लायक हो जाये ऐसी शिक्षा देने के लिए प्रचीन काल मे कन्या को अक्सर कुवारे अन्त पुर मे रखा जाता था–जैसे हीरे को शाण पर चढा कर उसकी कान्ति बढाई जाती है उसी प्रकार कन्या की योग्यता बढाने के उद्देश्य से उसे कुवारे अन्त पुर मे रखकर उपयोगी शिक्षा दी जाती थी।

इस ओर महाराज श्रीकृष्ण गजसुकुमार के साथ भगवान् अरिष्टनेमि के पास आये। जब भगवान का समवशरण सन्निकट आया तो वे हाथी से नीचे उतर पडे और गजसुकुमार को आगे करके भगवान् की सेवा मे उपस्थित हुए। यथा–विधि वन्दना करके श्रीकृष्णजी नीचे आसन पर बैठे। भगवान् के मुख–कमल से दिव्यवाणी प्रकट हुई। उसे श्रवण करके श्रीकृष्ण अपना जीवन धन्य और कृतार्थ मानने लगे। उनके आनन्द का ठिकाना न रहा।।

पानी सब जगह एक–सा होता है, परन्तु उससे रस वैसा ही उत्पन्न होता है जैसा बीज हो। भगवान् की प्रशात दिव्य–ध्वनि सुनकर न जाने किसने क्या सोचा होगा पर गजसुकुमार सोचने लगे–'यह मानव जीवन सचमुच ही ऐसा है जैसा भगवान् ने कहा है। यह बडी–बडी कठिनाइयो के पश्चात प्राप्त हुआ है। नरक तिर्यच आदि गतियो मे, नाना योनियो मे चिरकाल पर्यन्त भटकने के बाद अत्यन्त पुण्य के योग से इसकी उपलब्धि हुई है। फिर वह चिरस्थायी नही है। जल के बुलबुले के समान क्षणभगुर है। एकबार इसका अन्त हो जाने पर फिर कौन जाने कब इसकी प्राप्ति होगी? इसे प्राप्त किये बिना ससार के दु खो से छुटकारा नही मिल सकता। इस स्थिति मे क्या यह उचित है कि इस अनमोल रत्न को यो ही फेक दिया जाये? विषय भोगो मे इसे व्यय करना क्या विवेकशीलता होगी?

बहु पुण्य केरा पुजथी शुभ देह मानवनो मल्यो।
तो ये अरे भवचक्रनो आटो नही एके टल्यो।।
लक्ष्मी अने अधिकार वधता शु वध्यु ते तो कहो।
शु कुटुम्ब के परिवारथी वधवापणु ए न वि–ग्रहो।।
बधवा पणु ससारनु नर देह ने हारी जवो।
एनो विचार नही अहो हो! एक पल तमने अहो।।

भगवान की अमोघ दिव्य–ध्वनि से क्या निकला था यह तो नही मालूम लेकिन उसके परिणाम से कुछ पता चलता है। जो शरीर तीर्थकर का है वही हमारा भी है। किस पुण्य–योग्य से किस शुभ दशा से मनुष्य जन्म

की यह सामग्री हमे प्राप्त हुई? विचार करो तो मालूम होगा कि मनुष्य जन्म की इस सामग्री का बदला रत्नो से भी नही हो सकता। हीरा यदि बहुत मूल्यवान होगा तो पाच या दस हजार रुपये की रत्ती का होगा लेकिन आखो का प्रकाश यदि कोई खरीदना चाहे तो किस भाव मिलेगा? क्या आप लोगो ने एक क्षण भर भी इस पर विचार किया है? तुम ककर पत्थर की कीमत करते हो तो तुम्हारी कीमत कौन करे, इस बात का विचार करो।

जीभ मास का पिण्ड ही तो है पर उसे अगर कोई खरीदना चाहे तो आप बेच सकेगे? और किस भाव पर बेच सकेगे? वास्तव मे मनुष्य शरीर का एक–एक अवयव ही इतना अधिक कीमती है कि ससार के समस्त वैभव के बदले भी उसे नही दिया जा सकता। लेकिन खेद है कि ऐसा अमूल्य मनुष्य शरीर पा लेने पर भी यदि ससार–वृद्धि की तो इसके नष्ट हो जाने पर क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? अनमोल मानव –शरीर को विषय–भोग भोगने मे व्यतीत करना हीरे को पत्थर के लिए व्यय करने के समान है। लक्ष्मी की वृद्धि हुई या अधिकार बढ गया तो क्या बढा? इनकी वृद्धि से न तो आयु वृद्धि होती है ओर न दो के बदले चार आखे बन जाती हैं। इस प्रकार ससार बढने से कल्याण की किचित् भी वृद्धि नही होती।

भगवान् ने उपदेश मे कहा–देखो तुम्हारे शरीर के ही समान मेरा शरीर है। विचार करो मैं राजीमती को छोडकर इस कार्य मे क्यो लगा हू? में जिस पथ पर चल रहा हू, उसी पथ पर चल कर अनन्त आत्माओ ने अपना कल्याण किया हे–और उसी पथ पर चलने से तुम्हारा कल्याण हो सकता हैं। अतएव हे भव्य–जनो अपने कल्याण के मार्ग पर चलो।

भगवान् का दिव्योपदेश जब समाप्त हो गया और सब श्रोता भगवान् को विनय–पूर्वक वन्दना करके चल दिय तब भी गजसुकुमार वही बेठ रहे। कृष्णजी भी उठ आर अन्यत्र चल गये। उन्हाने भी गजसुकुमार स चलन को न कहा।

महापुरुप क पास किसी को ल जाना ता उचित हे पर ले जाने क बाद उसकी इच्छा क विरुद्ध उठा कर उसे ल आना उचित नहीं समझा जाता। इसी नियम का ख्याल करक श्रीकृष्णजी न गजसुकुमार से उठ चलन क लिय नही कहा।

उस समय गजसुकुमार किसी दूसरी दुनिया म चक्कर लगा रह थ। व सोच रह थ– भैया श्रीकृष्णजी मेरा विवाह करना चाहते है लेकिन भगवान नेमिनाथ ने अपना विवाह क्यो नही कराया? जिस परम प्रयोजन की सिद्धि

के लिये भगवान् ने विवाह करना अस्वीकार कर दिया उसी के लिये मुझे भी विवाह का त्याग क्यो नही कर देना चाहिये? भगवान् समुद्रविजयजी के पुत्र है—और मैं वसुदेव का पुत्र हू। दोनो एक ही कुल मे उत्पन्न हुए है। विवाह मे कोई तथ्य होता तो भगवान् क्यो नही करते? भगवान् का उपदेश उचित ही है कि यह शरीर विवाह करके भोगोपभोग भोगने के लिए नही है किन्तु ऐसा कल्याण करने के लिए है जिसमे अकल्याण का अश—मात्र भी न हो और जिसके पश्चात् अकल्याण की भावना तक न रहे।'

इस प्रकार मन ही मन सोच कर गजसुकुमार भगवान् के समक्ष खडे होकर कहने लगे—'भगवान्। मैं माता—पिता से आज्ञा लेकर आपसे दीक्षा ग्रहण करूगा—आपके चरण—शरण मे आऊगा।

भगवान् पूर्ण वीतराग हैं। उनके अन्तर मे किसी प्रकार का स्पृहा शेष नही रही थी। अतएव शिष्य के रूप मे राजकुमार को पा लेने की उन्हे लेशमात्र भी उत्सुकता न थी। उन्होने उसी गम्भीर गिरा से कहा—'देवानुप्रिये, जिस प्रकार तुम्हे सुख हो वही करो।

ससार मे कई लोग ऐसे होते हैं जो शिक्षा लेने वाले को घसीट कर, बलात्कार से या प्रलोभनो से ससार मे ही रखते हैं, तब कई व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो ससार से विमुख करके उत्कृष्ट अवस्था मे पहुचा देते हैं।

गजसुकुमार भगवान् के पास से विदा होकर देवकी के पास आये। महारानी देवकी ने गजसुकुमार को प्रेमपूर्वक पुचकारते हुए कहा—'बेटा। आज अब तक कहा रहे?

गजसुकुमार—'माताजी, मैं भगवान् नेमिनाथ के दर्शन करने गया था।

देवकी— अच्छा किया जो भगवान् के दर्शन किये।

गज— 'भगवान् का उपदेश सुनकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। मुझ पर उपदेश का खूब प्रभाव हुआ है। भगवान् से मुझे अनुपम प्रेम हो गया है। मैने भगवान को प्रणाम क्या किया मानो अपना सर्वस्व उनके चरणो पर निछावर कर दिया है।

देवकी—'वत्स।भगवान् का भक्त निकला अतएव मेरा तुझे जन्म देना नहलाना—धुलाना और पालन—पोषण करना सब सार्थक हुआ।

महारानी देवकी के इस उत्तर से गजसुकुमार समझ गये कि माताजी ने अब तक मेरा अभिप्राय नही समझा तब स्पष्ट कहने के उद्देश्य से गजसुकुमार बोले—'माताजी मरी इच्छा है कि अगर आप आज्ञा दे तो मे

भगवान् से मुनि–दीक्षा ग्रहण कर ससार का त्यागकर आत्मा का शाश्वत श्रेय–साधन करू।

देवकी गजसुकुमार का कथन सुनकर गभीर विचार मे डूब गई। उन्होने सोचा–'गजसुकुमार ने भगवान से दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया है तो इस निश्चय का बदलना सरल नही है। अब यह दीक्षा रुक न सकेगी। इस प्रकार विचार करने और पुत्र–वियोग की कल्पना से देवकी को मूर्छा आ गई। तदनन्तर जब देवकी होश मे आई तो कहने लगी–'वत्स! तू मेरा इकलोता पुत्र है। यो तो मैने तुझ सहित आठ पुत्रो को जन्म दिया है परन्तु तुझ अकेले को ही पुत्र रूप मे लालन पालन करने का अवसर मुझे मिला है। इस दृष्टि से तू ही मेरा एकमात्र पुत्र है तू ही मेरा प्राणाधार है। मेरे जीवन का तू ही सहारा हे। मै यह कैसे सहन कर सकती हू कि तू चढती जवानी मे साधु वन कर ससार के सुखो से सर्वथा विमुख हो जाये।

वेटा! जब हम यह पर्याय त्याग कर परलोक की ओर प्रयाण करे तब तू भले ही दीक्षा अगीकार कर लेना। तब तक तू भुक्तभोगी भी हो जाएगा। मे इस समय दीक्षित हाने की आज्ञा नही दे सकती ।

गजसुकुमार–माता आपका कथन सत्य हे। आपके साधारण एव लोकोत्तर वात्सल्य का पात्र होने का सोभाग्य मुझे प्राप्त है। मगर मेरी एक बात सुन लीजिये। आप वीर माता हे। आप कायरो की माता नही हे। मैं पूछता हू–हमारे राज्य पर कोई शत्रु आक्रमण कर दे ओर प्रजा को लूट कर उसकी सुख–शान्ति का सहार करन लगे तो उस समय आपका कर्त्तव्य क्या होगा? उस समय में आपकी सम्मति लेने आऊ तो आप क्या सम्मति दगी? क्या आप कहगी कि ना वेटा शत्रु के सामने मत जाना। आप यह आदेश दे सकगी कि–तू मुझे अत्यन्त इष्ट प्रिय ओर कान्त हे। तू वाहर मत निकलना। राज्य उजडता हे ता उजड तू घर मे ही छिपा रह। मे जानता हू आप ऐसा कदापि नही कर सकती। उस समय आपका आदश यही होगा कि जाआ वटा शत्रु का सहार करा वीरतापूर्वक राज्य की रक्षा करा। तुमने मेरे स्तना का दूध पिया ह उस दूध का लजाना मत। आप यही कहगी या चढती जवानी दख कर मुझ अपन अन्त पुर म छिपा रखगी। आपका धर्म उस समय क्या हागा?

सत्याग्रह–सग्राम म एसा ही हुआ था। जिनक एक पुत्र था वह भी उस सग्राम म कूद पडा था ओर वह सग्राम कसा था–जिसम मरना धम ओर ... माना जाता था! मर्दो की वात छाडिय। अवला कहलान वाली

[illegible]

अनेक बहिने जिनके पेट मे बालक था शक्ति की साकार प्रतिमा बन कर उस सग्राम मे जूझ पडी थी। उन बहिनो ने सग्राम मे भाग लेकर, शाति और अद्वेष भाव से मार–पीट सहन की और अनेको ने कारागार मे पुत्र का प्रसव किया। साराश यह है कि जिसमे ज्ञान है जो विजयी जीवन का धनी है, वह अपने कर्त्तव्य के आगे अपनी अवस्था का विचार नही करता। उसे अपने एकाकीपन की परवाह नही होती।

देवकी–'वत्स! तुमने जो प्रश्न किया है उसके उत्तर मे तो यही कहना होगा कि अगर ऐसा अवसर उपस्थित हो जाये तो मैं तुम्हे कर्त्तव्य पालन के लिये देश का सकट टालने के लिये, शूरवीर योद्धा की भाति शत्रु के सम्मुख जाने की और डट कर युद्ध करने की आज्ञा दूगी। ऐसे अवसर पर वीर प्रसविनी माता कभी कायरता का उपदेश नही दे सकती और न अपने बालक को कायर होने दे सकती है। पर यहा कौन–सा शत्रु आगया है, जिससे युद्ध करने की समस्या उठे?

गजसुकुमार–'वीर माता का यही धर्म है। मै आपसे इसी उत्तर की आशा रखता था। माताजी मेरे सन्मुख शत्रु उपस्थित है। वह मुझे पकडने और परास्त करने के लिए सतत प्रयत्न कर रहा हैं। वह चर्म–चक्षु से दिखाई नही देता परन्तु भगवान् अरिष्टनेमि के वचनो से उसका प्रत्यक्ष हुआ है। अनन्त जन्म मरण के चक्कर मे डालने वाला वह शत्रु है। वह मुझे पकडने के लिए मृत्यु रूपी पाश लेकर घूम रहा है।

मित्रो! क्या आपसे बडे आपकी सदृश वय वाले और आपसे छोटी उम्र के लोगो का प्रतिदिन मरण नही हो रहा है?

अवश्य–हमेशा मरण होता रहा है।

गजसुकुमार कहते हैं–'माताजी! उसके आने का कुछ भरोसा नही है। न जाने कब वह आ धमकेगा और जीवन को निश्शेष कर जायेगा। अगर मैं इसी भाति प्रमत्त दशा मे रहूगा तो वह किसी भी क्षण आकर मुझे ले जायेगा। अतएव मै ऐसा उपाय करना चाहता हू कि उस शत्रु से खुल कर युद्ध कर सकू और अन्त मे मेरी विजय हो माता अब तू ही बता मुझे क्या करना चाहिये? तेरा निर्णय ही मेरा सकल्प होगा। तेरी आज्ञा के बिना मैं एक डग भी इधर–उधर न धरूगा।

'देवकी वीर–माता थी। क्षणिक मोह के पश्चात उसका विवेक जागृत हो गया। उसने कहा–'वत्स! तू धन्य है। तू ने यदि दृढ सकल्प कर लिया है तो उसमे बाधा डालना उचित नही ह। लेकिन मे यह अवश्य चाहती

हू कि कम–से कम एक दिन तुझे राजा के रूप मे देख लेती। बेटा माता की ममता को माता ही समझ सकती है।

देवकी की बात सुनकर गजसुकुमार ने हा तो नहीं भरी पर मौन रह गये। उनके मौन को अर्द्ध–स्वीकृति का लक्षण समझ कर श्रीकृष्ण जी ने गजसुकुमार को द्वारका का राजा बना दिया।

एक दिन के लिए ही सही पर राजा बना देने के अनेक कारण थे। प्रथम तो यह कि कोई यह न सोचे कि गजसुकुमार को राजा बनने की हवस थी। वह पूरी न हो सकी, तो साधु बन गये। दूसरा कारण यह कि इससे उनके वेराग्य की परीक्षा हो गई। कच्चा वैराग्य होता तो राज्य पाते ही कपूर की भाति उड जाता। तीसरा कारण यह है कि ऐसा करने से श्रीकृष्ण का बन्धु–वात्सल्य प्रकट हो गया। उनके लिए भाई बडा है राज्य नही। इस प्रकार अनेक कारणो से गजसुकुमार को द्वारकाधीश पद पर प्रतिष्ठित कर दिया गया।

जिस राज्य–वैभव के लिये भूतल पर अनेकानेक विकराल युद्ध हो चुके ओर होते रहते हे जिसकी प्राप्ति के लिए लोग रक्त की सरिताए बहाते हें जिस राज्य–श्री को अपनाने के लिए भाई अपने भाई का गला काटते नही झिझकता उसी विशाल राज्य–श्री का तृण की तरह त्याग देना हसी–खेल नही है। श्रीकृष्ण ने प्रसन्नतापूर्वक राज्य का त्याग करके गजसुकुमार के वैराग्य की परीक्षा ही नहीं की हे वरन उन्होने अपनी उदारता अपने भ्रातृ स्नेह ओर अपन काशल की परीक्षा भी दी हे ओर उसम वे सफलता के साथ उत्तीर्ण हुए हें।

गजसुकुमार को राजसिहासन पर आरूढ करक श्रीकृष्ण जी ने कहा– भाई! अव ओर क्या इच्छा हे सो स्पष्ट कहो। तत्काल उसकी पूर्ति की जायगी।

गजसुकुमार ने कहा–

‘यह हुक्म हमारा दीक्षा लेने की तैयारी करो।
तीन लाख सोनैया गिणने श्रीमण्डार से लाओ।।
एक लाख नाई को देकर उसको शीघ्र बुलाओ।
दो लाख का ओघा–पातरा कुत्यापन से लाओ।।

इस राजा की हसियत स मरा यही हुक्म हे कि भडार म तीन लाख स्वर्ण–मोहर निकाली जाए। उनम स दो लाख मोहर देकर कुत्रिक आपण स ओघा और पात्र मगवाए जाए और एक लाख मोहर दकर नाई को बुलवा [illegible]।

सच्चे वैरागी की यह पहचान है। जिसके अन्त करण मे रग–रग मे विरक्ति रम गई होगी वह अपने लिये हाथी घोडा पालकी आदि सामग्री कदापि न चाहेगा। उसे तो उन्ही उपकरणो की दरकार होगी जो सयम की साधना मे सहायक होते है।

गजसुकुमार बोले–'मुझे और किसी वस्तु की आवश्यकता नही है। सिर्फ ओघा पात्र मगवा दीजिये और मुण्डन के लिए नाई बुलवा दीजिये।

गजसुकुमार की बात सुनकर श्रीकृष्ण और देवकी ने भलीभाति समझ लिया कि अब इनके हृदय मे से ममता चली गई और समता आ गई है। राज्य का प्रलोभन कारगर नही हो सकता। इस स्थिति मे वही करना उपयुक्त है जिससे इनका कल्याण हो इन्हे शान्ति लाभ हो।

श्रीकृष्ण जी ने गजसुकुमार की दीक्षा की तैयारी आरम्भ की। जिनके लौकिक विवाह की तैयारी थी, उनके लोकोत्तर विवाह की तैयारी होने लगी।

जैनधर्म के रहस्य को समझने वाले से किसी तुच्छ वस्तु के त्याग के लिए कहना पडे तो समझना चाहिए कि अभी तक वह धर्म का सच्चा रहस्य नही समझ पाया है। मित्रो सोचो तो सही, आप किसके शिष्य हैं? आप जिसके शिष्य हैं उन्होने तो ससार का त्याग कर दिया और आपसे धिक्कार देने योग्य वस्तुए भी छोडते नही बनती?

अगर घर का धन नही त्याग सकते तो दूसरे के धन का अपहरण करना तो त्याग दो! इतना भी नही बनता तो, कम–से–कम मील के पापमय वस्त्रो को तो त्याग सकते हो। गजसुकुमार का चरित्र तुम्हे क्या सिखा रहा है? इस परम पवित्र चरित्र पर विचार करके अपना कर्त्तव्य स्थिर करो, गभीरता से मनन करो।

गजसुकुमार की दीक्षा का उत्सव मनाया जाने लगा। सब चकित होकर घटनाक्रम को देखने लगे।

गजसुकुमार का वर घोडा द्वारका नगरी मे चला। द्वारका की प्रजा उनके दर्शन के लिए पलट पडी और सब ने एक स्वर मे कहा– धन्य है गजसुकुमार जी जो ऐसी महान ऋद्धि को त्याग कर मुनिधर्म मे दीक्षित हो रहे है। इनका जीवन सार्थक है– कृतार्थ है।

आखिर गजसुकुमार सब के साथ भगवान श्री अरिष्टनेमि की सेवा मे उपस्थित हुए। गजसुकुमार को आगे करके वासुदेव और देवकी भगवान नेमिनाथ के पास गये। देवकी की आखे आसू टपका रही थी। उसने भगवान

से विनम्र स्वर मे कहा–'प्रभु! मेरा यह पुत्र गजसुकुमार पूरा गज ही है। अभी इसकी जवानी भी पूरी नही आई है। हमने न मालूम क्या–क्या आशाए इससे बाध रखी थीं। न जाने कितने मनोरथ इसके सहारे लटक रहे थे। वे सब आज भग हो गये हैं। आपकी दिव्य वाणी के प्रभाव से प्रभावित होकर आज यह मुनिधर्म मे दीक्षित होना चाहता है। अतएव हम आपको पुत्र की भिक्षा देते हैं। आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार कीजिये।

भगवान् से इस प्रकार प्रार्थना करके देवकी ने गजसुकुमार से कहा–वत्स यत्न और उद्योग करते रहना। जिस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए उद्यत हुए हो उसमे आलस्य न करना। यद्यपि तेरे विरह को सहन करना अत्यन्त कठिन हे, फिर भी तू जिस परम मगलमय धर्म की आराधना करने के लिए उद्योगशील हो रहा है उसमे विघ्न डालना भी उचित नही है। अब हम तुझे दीक्षित होने की आज्ञा देते हैं। मगर साथ ही यह भी कहती हू कि ऐसा पुरुषार्थ करना जिससे हमे छोड कर दूसरे माता–पिता न बनाने पडे। ऐसा मत करना कि कोई दूसरी जननी तुम्हे गर्भ मे धारण करे–अर्थात् पुनर्जन्म का अवसर न आने देना। इसी भव मे अनन्त अक्षय ओर अव्याबाध सुख–स्वरूप मुक्ति प्राप्त करने की चष्टा करना।

देवकी की शिक्षा के उत्तर मे गजसुकुमार ने कहा– आपका आशीर्वाद मुझे फल। में वही प्रयत्न करूगा जेसा आपका आदेश हे।

तत्पश्चात गजसुकुमार जी ने भगवान् से मुनिधर्म की दीक्षा ली। सव यादव द्वारका नगरी का लोट गए।

नव–दीक्षित गजसुकुमार का एकान्त मे बेठ–वेठे विचार आया क्या म इस शरीर मे वना ही रहूगा? अगर यह शरीर नष्ट हागा ही तो क्या मुझ पुनर्जन्म लकर नया शरीर धारण करना पडगा? में वीर यदुवश मे पेदा हुआ हू। मुझ एसा कर्त्तव्य करना चाहिए कि शीघ्र ही मरा प्रयाजन पूर्ण हो जाय। मुझ जन्म–मरण क चक्र स छूट कर इसी भव म मोक्ष प्राप्त कर लेना चाहिय।

इस प्रकार विचार कर गजसुकुमार न भगवान् के समीप जाकर प्रार्थना की–

अरज करत जन देखत ऐसे सुनिये श्री जिनराय।
किल्ला कायम तुरत हुवे मुझ राह बताया।।
द्वादशमी पडिमा करने का हुक्म दिया फरमायजी।
धा आप जिनेश्वर परम दयाल कृपाल हो।।

हे प्रभो! मुझे उपाय बतलाइये जिससे जल्दी ही आत्मा का कल्याण हो। अब मुझे एक क्षण भर इस शरीर मे रहना नही सुहाता।

गजसुकुमार मुनि की प्रार्थना के उत्तर मे भगवान् अरिष्टनेमि ने भिक्षु की बारहवी प्रतिमा को तत्काल मुक्ति–लाभ का उपाय बतला दिया। वह प्रतिमा एक प्रकार की विशिष्ट तपस्या है। इसकी आराधना के लिए श्मशान मे जाकर ध्यान धारण करके खडा रहना पडता है। उस समय कोई देव मनुष्य या तिर्यच आकर कष्ट देता है तब निश्चल, निर्भय भाव से उसे सहन करना होता है। इतना ही नहीं कष्ट पहुचाने वाले प्राणी पर लेशमात्र भी क्रोध का भाव उत्पन्न नही होना चाहिये, वरन् उसे तपस्या मे सहायक मान कर मित्र समझ लेना चाहिये। इस प्रकार सम–भाव जब परम प्रकर्ष पर हो जाता है तब शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त होती है।

गजसुकुमार मुनि बोले– भगवान्' आप अत्यन्त दयालु हैं। मैं भिक्षु की इस प्रतिमा की आराधना करना चाहता हू। कृपा कर मुझे आज्ञा दीजिए।

गजसुकुमार अत्यन्त सुकुमार है राजकुमार है और अभी–अभी दीक्षित हुए हैं। उनकी उम्र अभी बहुत थोडी है। इस परिस्थिति मे गजसुकुमार की रक्षा करनी चाहिये। लेकिन भगवान् ने उन्हे बारहवीं प्रतिमा की आराधना करने का उपदेश दिया! वह भगवान् की दया है या निर्दयता? इस प्रश्न पर थोडा–सा विचार कर लेना अप्रासगिक नही है। अगर आज्ञा दी थी तो अन्य साधुओ को उनके साथ न भेज कर उन्हे एकाकी ही क्यो भेज दिया? इसका कारण क्या है?

मित्रो! भगवान् नेमिनाथ लोकोत्तर ज्ञानी थे। उन्हे मुनि गजसुकुमार की स्थिति का भलीभाति परिज्ञान था। सम्पूर्ण भविष्य उनके ज्ञान मे वर्तमान की तरह झलकता था। इसलिए उन्होने गजसुकुमार मुनि की इच्छा पर प्रतिबन्ध न लगाते हुए उनकी इच्छा के अनुसार बारहवी प्रतिमा के आराधना की आज्ञा दे दी। इसमे गजसुकुमार का परम कल्याण था। जिस महत्तम प्रयोजन की सिद्धि के लिए दीक्षित हुए थे उसकी सिद्धि का यही एकमात्र उपाय था। तब भगवान इस मगलमय अनुष्ठान मे कैसे बाधा डालते? गजसुकुमार के प्रति भगवान की यही परम करुणा थी दिव्य दया थी।

कल्पना कीजिए आप के किसी पुत्र को कोई रोग हो गया है। आप जानते हैं और मानते हे कि इसका शीघ्र ही प्रतिकार करना चाहिए अन्यथा रोग भयकर अवस्था मे आ जाएगा। आपको यह भी मालूम है कि अमुक चिकित्सक इस रोग को समूल नष्ट कर सकता हे परन्तु पुत्र को नश्तर लगाना

पडेगा या उसका ऑपरेशन करना होगा मगर ऐसा करने से वह निरोग अवश्य हो जाएगा। तब आप अपने पुत्र को चिकित्सक के पास आरोग्य के लिए भेजेगे या नहीं ?

अवश्य भेजेगे।

आपका यह कार्य अपने पुत्र पर दया करना होगा या दु:ख मे फसाना होगा?

इसी प्रकार भगवान् अरिष्टनेमि को गजसुकुमार मुनि के पूर्वभव भविष्य आदि सभी कुछ का परिपूर्ण ज्ञान था। उन्हे विदित था कि इस मुनि की कितनी आयु शेष है इसका भविष्य क्या हे और उसका फल क्या होगा? इसी कारण भगवान् ने गजसुकुमार मुनि को श्मशान मे जाकर बारहवी प्रतिमा की आराधना करने की आज्ञा दे दी। यह भगवान् की निर्दयता नही किन्तु पूर्ण दया ही थी।

भगवान् की आज्ञा मिलते ही मुनिवर गजसुकुमार श्मशान की ओर चल पडे। वहा पहुच कर उन्होंने अपनी नासिका पर दृष्टि स्थिर की ओर निश्चल होकर खडे रहे।

सामान्यया भिक्षु की बारहवी प्रतिमा की आराधना वही मुनि कर सकता है जिसने कम–स–कम बीस वर्ष पर्यंत सयम का पालन किया हो नोव पूर्व की तीसरी आचार–वस्तु का ज्ञान हो ओर जिसकी उम्र कम–से–कम उनतीस वर्ष की हो। एसा मुनि ही इस प्रतिमा की आराधना का अधिकारी माना जाता ह। मगर धन्य हे गजसुकुमार मुनिराज जिन्हे दीक्षित हुए दा–चार घडी भी व्यतीत नही होन पायी जा अपनी माता के हाथ का ही आहार किय हुए हैं जिन्हाने मुनि क पात्र का पानी भी ग्रहण नही किया हे फिर भी जिन्हान वह समुन्नत दशा प्राप्त की जिस सेकडा वर्षो पर्यन्त सयम पालन वाला प्रत्यक मुनि भी प्राप्त नही कर सकता। एस आदर्श महापुरुष जगत म विरल ही हा सकते हैं।

यद्यपि विशिष्टज्ञानी भगवान का यह विदित था कि मुनिराज ग[illegible]सुकुमार पर सामल द्वारा उपसर्ग किया जायगा फिर भी उन्हान अकल ही भ[illegible] दिया। उनक साथ किसी दूसर मुनि का नही भजा। इसका एक मात्र [illegible] यही था कि भगवान जानत थ कि यह मुनि आज ही मुक्ति प्राप्त करन [illegible] ह।

[illegible] क [illegible] था। सामल ब्राह्मण हाम क निमित लकडी लन [illegible] था। उस विदित ह कि मरी कन्या सामा कृष्णजी क कुआर [illegible]

अन्त पुर मे पहुच गई है और उसका गजसुकुमार शीघ्र ही पाणिग्रहण करेगे। सयोगवश सोमल उसी श्मशान मे जा पहुचा जहा मुनिराज गजसुकुमार ध्यानारूढ खडे थे। गजसुकुमार मुनि को साधु के वेश मे ध्यानावस्थित देख सोमल के आश्चर्य का पार न रहा। वह सोचने लगा– मैं यह क्या देख रहा हूँ। कुमार गजसुकुमार और श्मशान भूमि मे, साधु का वेश धारण किये हुए। यह कुमार क्या विशाल राज्य त्याग कर साधु बन गया है? इसकी मूढता का क्या ठिकाना है! धिक्कार है इस अप्रार्थ्यप्रार्थी को धिक्कार है इस पुण्यहीन को! इसने मुझे चौपट कर दिया। मेरी कन्या का घोर अपमान किया!

इसे इस अपमान का बदला चखाऊगा। आज ही इसे परलोक मे न पहुचाया जो मेरा नाम सोमल नही।

मित्रो! भवितव्य की गति को सावधान होकर देखो। सोमल के अन्त करण मे यह प्रेरणा कहा से उत्पन्न हुई? सोमल क्यो इस प्रकार के उदगार निकाल रहा है? उसके इतने उग्र कोप और भीषण सकल्प का वास्तविक कारण क्या है?

वास्तव मे सोमल जो कुछ विचार रहा है उसके मुख से जो उद्गार निकल रहे हैं वे सब गजसुकुमार के कल्याण के लिये ही हैं। वह गजसुकुमार की भलाई का निमित्त बन रहा है। ज्ञानीजन जो वस्तु के वास्तविक स्वरूप के ज्ञाता हैं ऐसे व्यक्ति पर क्रोध्र नही करते। होनहार की प्रबलता का विचार करके साम्याभाव के अवलम्बन से अपने अन्त करण को स्थिर रखते हैं।

अगर कोई धोबी स्वय परिश्रम करके अपनी गाठ का साबुन लगा कर आपसे बदले मे कुछ भी न लेकर आपके वस्त्र स्वच्छ कर दे तो आप उस पर प्रसन्न होगे या क्रोध करेगे?

'प्रसन्न होगे।

सोमल ब्राह्मण गजसुकुमार मुनिराज का आपकी दृष्टि मे भले ही अनिष्ट कर रहा है परन्तु भगवान् नेमिनाथ की दृष्टि मे उनका मेल धो रहा है। ऐसी अवस्था मे गजसुकुमार मुनि या भगवान नेमिनाथ उस पर क्रोध क्यो करेगे? वह तो इष्टसिद्धि मे निमित्त बन रहा है।

सोमल का क्रोध नही दबा। वह प्रचण्ड रूप धारण करता गया। उसने पास के सरोवर से गीली मिट्टी निकाली और गजसुकुमार के माथे पर पाली बाध डाली। उसके बाद श्मशान भूमि से लाल–लाल जलते हुए अगार लाकर मुनि के मस्तक पर रख दिये।

मित्रो! मुह से यह कथा कह देना सरल है पर विचार कीजिए उस समय गजसुकुमार को कैसा अनुभव हुआ होगा? उनके कोमल मस्तक की

क्या दशा हुई होगी? किन्तु धन्य है मुनिवर गजसुकुमार जिन्होने उफ तक न किया। यही नही वे विचारने लगे– 'धन्य है भगवान् नेमिनाथ जिन्होने अनुपम दया करके मुझे आत्महित की साधना का यह सुअवसर दिया।' इस प्रकार विचार कर उन्होने अपने साम्यभाव रूपी दिव्य जल से जलते हुए अगारो को भी शीतल बना लिया।

यहा यह कहा जा सकता है कि सत्य के प्रभाव से अग्नि शीतल हो जाती है शस्त्र भौंथरे बन जाते हैं और विष अमृत के रूप मे परिणित हो जाता है। यह सत्य गजसुकुमार मुनि के विषय मे चरितार्थ क्यो नही हुआ? इसका समाधान यह है कि सत्य सदा सत्य ही रहता है। वह कभी असत्य नही बन सकता। अगर गजसुकुमार चाहते तो अग्नि क्षण भर मे शीतल बन जाती। मगर उनकी भावना क्या थी, इसका विचार करो। गजसुकुमार मुनि अगर जीवित रहना चाहते तो अग्नि की क्या मजाल थी कि उन्हे जला सके। तप के प्रभाव से अभिभूत होकर वह पानी–पानी बन जाती। किन्तु मुनिवर गजसुकुमार ऐसा नही चाहते थे। उनकी इच्छा शीघ्र–से शीघ्र मोक्ष जाने की थी। वे अपावन शरीर मे केद नही रहना चाहते थे ओर इसी उद्देश्य से भगवान की आज्ञा लेकर यहा आये थे।

जिनका मस्तक जल रहा है वे तो यह कहते नही कि दुनिया से धर्म उठ गया– मेरी कोई सहायता करने नही आया अन्यथा क्यो मेरा मस्तक जलता। फिर भी दूसरे लोग बीच मे ही कूद पडते हें ओर कहने लगते हें– धर्म मे कुछ भी सामर्थ्य नही हे। यह तो वेसी ही बात हे कि राम ने सीता को अग्नि मे प्रवेश करने की आज्ञा दी द्रोपदी को पाण्डवो ने जुए मे हारा ओर दमयन्ती को राजा नल ने जगल मे छोड दिया फिर भी सीता द्रोपदी ओर दमयन्ती ने अपने पति के कार्य को श्रेष्ठ समझा ओर दूसरे लोगो ने उनके कार्य की भरपट बुराई की!

गजसुकुमारमुनि की घटना सुनकर हम आश्चर्य करने लगते हें। हम साचत हें–इतनी भीपण वेदना काई केसे सहन कर सकता हे! माथे पर अगार रख हा ओर मुनि तपस्या मे लीन हो यह केसी भयकर कल्पना हे! परन्तु हमारी यह सम्भावना अपनी निर्वलता को प्रकट करती हे। हमने शरीर और आत्मा क प्रति अभद की भावना स्थिर कर ली हे। हमार अन्त करण म दहाध्यास प्रवल रूप स विद्यमान ह। हम शरीर का ही आत्मा मान वेठ हैं। अतएव शरीर की वदना का आत्मा की वदना मान कर विकल हा जात हैं। परन्तु निर्ग्रन्थ परमहंस की वृत्ति स्वीकार करक स्व–पर भद विज्ञान का

आश्रय लेकर अपनी आत्मा को शरीर से सर्वथा पृथक् कर लिया है –जो शरीर को भिन्न और आत्मा को भिन्न अनुभव करने लगते हैं, उन्हे इस प्रकार की शारीरिक वेदना तनिक भी विचलित नहीं कर सकती । वे सोचते हैं–शरीर के भस्म हो जाने पर भी मेरा क्या बिगडता है? मैं चिदानन्दमय हू, मुझे अग्नि का स्पर्श नही हो सकता।

जब आपका ध्यान दूसरी ओर होता है तो मामूली–सी चोट का आपको पता नही चलता। बालक को खेल मे खासी चोट लग जाती है पर वह खेल मे तल्लीन होने से उस समय चोट का किचित् भी अनुभव नही करता। इसी प्रकार मुनि की आत्मानुभूति इतनी उग्र होती है–आध्यात्मिक ध्यान मे ऐसी निश्चलता होती है कि शरीर की ओर उनका ध्यान ही नही होता। इस दशा मे हम जिसे भीषण उपसर्ग समझते हैं वह उपसर्ग उनके लिए साधारण–सी वस्तु हो जाता है। दु ख एक प्रकार का प्रतिकूल सवेदन है। वह अपने आप मे कुछ भी नही है। जिस घटना को प्रतिकूल रूप मे अनुभव किया जाता हे वही घटना दु ख बन जाती है। अगर उस पर ध्यान ही न दिया जाये अथवा उसे प्रतिकूल सवेदन न किया जाये तो दु ख की वेदना नही हो सकती। यही कारण है कि एक ही घटना विभिन्न मानसिक स्थितियो मे विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करती है। गाली कभी प्रतिकूल सवेदन के कारण दु ख उत्पन्न करती है और वही गाली ससुराल मे प्रियजनो के मुख से निकलने पर अनुकूल सवेदना के कारण सुख–रूप हो जाती है। इससे यह स्पष्ट है कि दु ख या सुख पहुचाने की शक्ति गाली मे नही है। अगर ऐसा होता तो वह सदा दु ख ही पहुचाती या सदा सुख ही प्रदान करती। मगर ऐसा होता नही है। अतएव यह स्पष्ट हे कि गाली को सुख–रूप या दु ख–रूप मे ढालने वाला साचा दूसरा है। वह साचा आत्मा के अधीन है। वही सवेदना का साचा हे। साधारण जनता को भीषण प्रतीत होने वाली घटना को भी मुनिराज अपनी सवेदना के साचे मे ढाल कर सुख–रूप परिणत कर लेते है। यही कारण है कि गजसुकुमार मुनि मस्तक जलने पर भी दु ख की अनुभूति से बचे रहे।

गजसुकुमार मुनि ने शुक्लध्यान की लेश्या लगाई ओर उससे उनमे अनन्त लब्धि प्रकट हो गई। इस प्रकार शुक्लध्यान मे अवस्थित होकर पाच लघु अक्षरो (अ इ उ ऋ लृ) के उच्चारण मे जितना समय लगता हे उतने समय की आयु भोगकर सिद्धि को प्राप्त हुए। देवो ने आकर उनका अन्तिम सस्कार किया आर अपने मस्तक पर उनकी चरणरज लगा कर कृतार्थता का अनुभव किया।

मित्रो! मैं आपसे पूछता हू कि आप किसके पुजारी हैं?

'सयम के ।

सयम तप, क्षमा आदि सद्गुण धारण करने वालो के तथा जिन्होने ऐसे विकट प्रसग उपस्थित होने पर भी अपना ध्यान भग न होने दिया ऐसे महापुरुष के आप पुजारी हैं। इनके पुजारी होकर के भी यदि आपका यह विचार हो कि—धर्म मागलिक कहलाता है पर सचमुच ही यदि धर्म मगलमय होता तो गजसुकुमार मुनि का घात क्यो होता समझना चाहिए कि अभी विश्वास मे कमी है। अब तक आपके अन्त करण मे परिपूर्ण और जागृत श्रद्धा का आविर्भाव नही हुआ है। वास्तव मे घात वह है जिसके पश्चात पुनर्जन्म धारण करना पडे और पुन पुन जन्म—मरण का शिकार होना पडे। गजसुकुमार के माथे की आग ठडी हो जाती तो आज उनके नाम से ही हम सब का मस्तक न झुक जाता ओर न इतनी जल्दी उन्हे सिद्धि—लाभ हुआ होता।

इधर गजसुकुमार निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं अशरीर अवस्था धारण कर लोक के अग्रभाग पर विराजमान हैं उधर महारानी देवकी गजसुकुमार के विषय मे सोच रही हे—'फूल की डडी जिसके शरीर मे चुभ जाती थी वह अतिशय सुकुमार गजसुकुमार आज भूमि पर केसे सोया होगा? कोन जाने उसे नींद आई होगी या नही? पर इस चिन्ता मे भी सान्त्वना का कारण था। वह यह कि गजसुकुमार भगवान् अरिष्टनेमि के चरण—शरण मे गया हे। उसे कष्ट किस बात का हो सकता हे? देवकी ने इसी उधेड—बुन मे जागते—जागते रात व्यतीत की।

मित्रो! गजसुकुमार जी ने जो कुछ किया उससे उन्हे मुक्ति प्राप्त हुई। हमारी आर आपकी यह शक्ति नहीं हे कि हम या आप अगारे सहन कर सके। लेकिन एक वस्तु ऐसे आदर्श की हे जिसे हम सभी कर सकते हैं—

याद हम करते है जी उन सत्पुरुषो की बात।
श्रीकृष्ण ने ईंट उठाई द्वारका दरम्यान
वृद्ध पुरुष की दया जो कीनी शास्तर मे बयान।
याद हम करते हैं जी।।

श्रीकृष्णजी क ईंट उठाने का वृत्तान्त म पहले कह चुका हू। जेस एक डाक्टर नाडी दखन गया। उसने सब की नाडी देखी परन्तु किसी का [illegible] नही था इसस उसन कुछ न दखा। एक का उसने रागी पाया अतएव [illegible] का दखा। इसी प्रकार कृष्णजी न भी एक वृद्ध का ही दखा क्याकि [illegible] दुखी नही थ। श्रीकृष्ण सिर्फ भगवान् क दर्शन करन नहीं जात

किन्तु सब का दु ख दूर करने जाते हैं। उन्होने देखा वह जर्जरितकाय वृद्ध था।

जिसकी ओर देख कर सब लोग घृणा के साथ आख फेर लेते थे, और जिससे आडे–टेढे थे ऐसे बूढे को कृष्ण जी ने देखा। श्रीकृष्णजी ने सुखी और समृद्ध जनो को न देखकर उस जीर्णजन दुर्बल वृद्ध की ओर दृष्टि डाली। वह जरा की साक्षात् मूर्ति था। अपने कापते हाथो से बाहर पडे हुए ईटो के ढेर मे से बडी कठिनाई के साथ एक–एक ईट लेकर घर मे ले जाता था। परेशानी उसके चेहरे पर तैर रही थी। विवशता उसकी आखो मे नाच रही थी।

श्रीकृष्ण की नजर उस दीन वृद्ध पर पडी। उसे देखते ही उनका हृदय दया से आर्द्र हो उठा। उसके दु ख से वे दु खी हो गये। सोचा–कितना दु खी है यह वृद्ध पुरुष! अगर मैने इसका दु ख दूर न किया तो मेरा राजपाट किस काम का! मेरे ऊपर होने वाले यह छत्र–चमर क्लेश रूप ही होगे। मै अपने राज–कर्त्तव्य से च्युत हो जाऊगा।

श्रीकृष्ण जी के हुक्म देने की ही देर थी। उनके साथ बहुसख्यक सेना थी। क्षणभर मे वृद्ध की ईटे उठ जाती। पर नहीं उन्होने हुक्म देकर ईटे उठाना पसन्द नही किया। वे स्वय हाथी से उतर पडे और उन्होने ढेर मे से एक ईट उठाकर वृद्ध के घर मे रख दी। दया का प्रशस्त कार्य आज्ञा देकर नही वरन् स्वय करने से होता है। इसी कारण कृष्णजी ने यह कार्य स्वय अपने हाथ से करना ही उचित समझा।

आज आप लोगो मे आलस्य घुस गया है। आप मे से बहुतेरे ऐसे भी है जिनसे आसन भी उठाकर नही बिछाया जाता। कोई दूसरा आसन बिछा दे तब वे बैठ सकते हैं। आप धार्मिक कृत्यो मे भी आलस्य करते हैं, तो दया की खातिर ईट कैसे उठा सकते हैं? सच्ची सेवा वही कर सकता है जो दूसरो की आत्मा को अपनी आत्मा के तुल्य समझता है। वह बूढा कृष्णजी का कोई रिश्तेदार तो था ही नही, फिर भी उन्होने उसे अपनी आत्मा के समान समझा अपना दु ख जैसा असह्य लगता हे उसी प्रकार श्रीकृष्ण को बूढे का दु ख भी प्रतीत हुआ। इस स्थान पर शास्त्र का पाठ है–

"तएण से कण्हे वासुदेवे तस्स पूरिसस्स अणुकपणट्ठाए हत्थिखधवरगते चेव एग इट्टग गेण्हति ताहिया रत्थापहाओ अतोगिह अणुप्पयेसेति।

इस पाठ से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीकृष्णजी ने केवल उस वृद्ध की दया के खातिर उसकी ईट उठाई थी।

क्या कृष्ण ने बूढे की ईंट उठाकर अपनी महत्ता को कलक लगा दिया? कहा उनके छत्र–चामर और कहा बूढे की ईंट उठाना? ऐसा सोचने वाला वस्तु–तत्व को नहीं समझता। कृष्ण के इस व्यवहार से बूढे के घरवालो पर तो प्रभाव पडा ही होगा, साथ ही दूसरो पर और साथ की सेना पर भी कितना प्रभाव न हुआ होगा? कृष्णजी वासुदेव–भरत क्षेत्र के तीन खडो के अधिपति थे। यह स्वाभाविक ही है कि बडे –बडे राजा भी उनके साथ रहे हो। निस्सन्देह कृष्ण को ईंट उठाते देख कर उन्होने भी उनका अनुसरण किया होगा। कृष्ण अगर आज्ञा देते तो भी ईंट उठ जाती पर सम्भव है कि अनेक लोग न भी उठाते और सेवा का जो पाठ उन्हे मिला वह तो कदापि न मिलता। कृष्णजी के आचार ने जो पाठ पढाया वह उनके सैकडो उपदेश भी नही पढा सकते थे।

दया करने के सैकडो तरीके हो सकते है। कृष्णजी चाहते तो ईंट न उठाकर बूढे को जागीर देने की घोषणा कर सकते थे। लेकिन इसमे उनकी कोई विशेषता न होती। उनके उच्च व्यक्तित्व का दूसरो को भान नही हो सकता था। मानवीय आदर्श की स्थापना इस व्यवहार से होती है। वह जमीन–जागीर देने से नही हो सकती थी।

कृष्णजी के व्यवहार से बूढे के घर वाले उसे देवता की भाति मानने लगे होगे। आज यदि गाधीजी किसी गरीब के घर जाकर उसकी टोकरी अपने सिर पर उठा ले तो और लोग उस गरीब के पेर पकडने लगेगे। यही बात उस बूढे के विषय मे भी हुई होगी।

कृष्णजी के ईंट उठाने के कार्य पर दृष्टि रखते हुए विचार करो कि तुम किससे कितना काम ले रहे हो? और किस पर कितना बोझ लाद रहे हो ? अगर कृष्णजी को अपने अन्त करण मे स्थान देना चाहते हो तो आप भी किसी से बोझ न उठवाइये जिसका उठाना उसकी शक्ति से परे हो। गरीबो पर इतना बोझ मत लादो जिससे तुम उनके बोझ बन जाओ–वे तुम्हे अपना भार समझने लगे।

पूज्य श्री श्रीलाल जी महाराज ने एकबार कहा था–'ऐ धनिको! सावधान रहो। अपने धन म से गरीबो को हिस्सा देकर यदि उन्हे शान्त न करोग उनका आदर न करोगे तो साम्यवाद फेले बिना न रहेगा। सामाजिक स्थिति इतनी विषम हो जायगी कि गरीब लोग धनवानो के गले काटेग। उस समय हाय–हाय मच जायगी।

दिवगत पूज्यश्री की बात आज ठीक होती दिखाई द रही है। [illegible] दया करो और गरीबो को तथा वृढ भारतवर्ष को कष्ट न पहुचाओ।

यह देश भारतवर्ष इतना बूढा है कि शायद ही दूसरा कोई देश इसकी बराबरी का हो। इस बूढे से ईट उठाने का काम मत कराओ। जब उस बूढे से ईंट उठाने का काम लिया गया था तो मोहन का दिल पसीज गया था और उस बूढे भारतवर्ष से ईट उठाने के समान काम कराये जाते थे तब इस पर भी मोहन (गाधीजी) को दया आई है। उस बूढे पर दया करके उन मोहन ने उसकी ईट उठाई थी और इस बूढे पर दया करके इन मोहन ने खादी पहन कर अपने ऊपर भारी भार उठाया है।

जब कृष्ण जी ने बूढे की ईट उठाई तब ऐसे मसखरे भी रहे होगे जो कृष्णजी के कार्य की हसी उडाते हो। इस सभा मे कोई ऐसा तो नही है जो खादी की हसी उडाता हो? अगर आप लोगो से कृष्ण के साथियो की तरह ईट उठाते न बने अर्थात् मोहन ने जिस खादी को पहन कपडे का बोझ उठाया है वैसा करते न बने तो कम–से–कम खादी की, चर्खे की दया की और अहिसा की हसी तो न उडाओ। अगर कुछ करते नहीं बन पडता तो अच्छे को बुरा कहने का पाप तो न करो।

कृष्णजी ने बूढे की ईट उठाई उसमे उनका कुछ स्वार्थ नही था। उन्होने सिर्फ दया से प्रेरित होकर ही यह कार्य किया था और बूढे का बोझ हल्का कर दिया था। इसी प्रकार खादी पहनने और पहनने का उपदेश देने मे गाधीजी का कोई स्वार्थ नहीं हैं। आप भारतवर्ष का जितना बोझ हल्का कर सकते हो उतना हल्का करो। अगर हल्का नहीं कर सकते तो कम–से–कम उसका बोझ तो मत बढाओ।

कुछ लोग कहते हैं, कृष्णजी ने ईट उठाकर आरभ का कार्य किर है अतएव उनका कार्य पापरूप है। लेकिन मैं पूछता हू उन्होने ईट उठाक अपने अभिमान का नाश किया या नहीं ? गाधीजी नमक लूटने गये थे उस आरभ तो हुआ ही होगा। लेकिन अभिमान का नाश होने से आरभ घटा र नही ? गाधीजी जब नमक लूटने गये थे तब मशीनगने कहा चली गई थी गाधीजी के कार्य से हिसा मिटकर अहिसा का जो लाभ हुआ वह लाभ जि दिखाई नही देता और जो कृष्णजी के कार्य मे दया के दर्शन न कर आरभरूप पाप ही देखते हे उन पापदृष्टि वाले भाइयो को क्या कहा जा

मित्रो। कृष्णजी ने करुणा की थी उसका प्रभाव आज भी विद्यम है। मै यह नही कहता कि गाधीजी ने दया के जो कार्य किये हे वे इ अन्तगडसूत्र मे कृष्ण की इस कथा को पढ कर ही आरम्भ किये हैं लेवि तत्व दोनो बातो मे वही आ गया है। तात्पर्य यह ह कि जिस प्रकार कृष्ण

ने ईंट उठाकर अपना अभिमान त्यागा था उसी प्रकार गाधीजी ने भी दुखिया के दु खो का भार अपने माथे लेकर अभिमान का त्याग किया हे। कृष्णजी के ईंट उठाने से जैसे उनके साथियो ने भी ईंट उठाई होगी ओर उस वृद्ध की सेवा की होगी, उसी प्रकार गाधीजी द्वारा गरीबो की सेवा करने से अनेक करोडपतियो के पुत्रों ओर स्त्रियो ने भी गरीबो की सेवा की हे। कौन कह सकता हे कि इन स्वेच्छा–सेवको के दिल मे दया का वास नही है? जिस दिन दुनिया से दया उठ जाएगी उस दिन दुनिया भी नही टिकी रहेगी।

महाराज श्री कृष्ण वृद्ध पर दया करके–उसकी ईंट उठाकर भगवान नेमिनाथ के दर्शनार्थ गये हें। आप भी दया करेगे–सेवा करेगे तो कल्याण के भागी बनेगे।

महावीर–भवन देहली ता0 13–9–31

7. निरवद्य दया

श्रीयास जिनद सुमर रे।
चेतन जान कल्याण करन को, आन मिल्यो अवसर रे।
शास्त्र प्रभा पिछान प्रभु गुण,मन चचल थिर कर रे।।
श्रेयास जिनद सुमर रे।।

यह परमात्मा की प्रार्थना की गई है। प्रार्थना करने का काम हमेशा का है। जीवन का प्रत्येक क्षण–चौबीसो घटे प्रार्थना करते–करते ही व्यतीत होना चाहिये। एक श्वास भी बिना प्रार्थना का–खाली नहीं जाना चाहिये। प्रार्थना मे जिनका अखड ध्यान वर्त्तता है उन्हे बारम्बार श्रद्धा–पूर्वक नमन है। हम लोगो मे जब तक जीवन है, जब तक जीवन मे उत्साह है जब तक शक्ति है यही भावना विद्यमान रहनी चाहिये कि हमारा अधिक–से–अधिक समय प्रार्थना करते–करते बीते। आचार्य मानतुग ने कहा है–

अल्पश्रुत श्रुतवता परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिल किल मधौ मधुर विरौति,
तच्चारु–आम्रकलिकानिकरैकहेतु ।।

अर्थात–हे प्रभो मेरा शास्त्रज्ञान अत्यन्त अल्प है ज्ञानी समझदार ओर शास्त्रज्ञाता पुरुषो के लिए तो मैं हसी का पात्र हू। ऐसा होते हुए भी मैं आपकी स्तुति करने के लिए विवश हू। आपकी शक्ति बोलने के लिए मुझे विवश कर रही है।

कोई कहे कि स्तुति करने की शक्ति नही है तो फिर मोन क्यो नही रहते? लेकिन यह तो अपनी–अपनी गति की बात है। जिस समय आम के वृक्ष मे मजरिया लगती हैं और उनकी सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर उन पर मडराते है तब कोयल से कहो कि तू चुप रह–बोल मत। तो क्या कोयल चुप

रह सकेगी ? कोयल किसी के कहने से नही गाती। आम मे मजरी आने से उस पर जो मतवालापन सवार हो जाता है मतवालेपन मे वह बोले बिना नहीं रह सकती।

एक कवि कहता है—जिसके हृदय मे भक्ति हो वही भक्ति की शक्ति को जान पाता है। केतकी ओर केवडा के फूलने पर भौंरे को गुजार करने से कभी रोका जा सकता है ?

भ्रमर हमारे आपके लिए गुजार नही करता। केतकी और केवडा के फूलने से उसमे एक प्रकार की मस्ती आ जाती है। उस मस्ती की अवस्था मे गुजार किये बिना वह अपने चित्त को शात कैसे रख सकता है ? इसी प्रकार वसन्त ऋतु आने पर जब आम फूलो से सुसज्जित हो जाता है तब कोयल से चुप रहा नहीं जा सकता। मेघ की गभीर गर्जना होने पर मयूर बिना बोले कैसे रह सकता हे। पवन के चलने पर ध्वजा हिले बिना रह सकती है ? इसी प्रकार कवि कहता है—मुझसे अगर कोई कहे कि तुम बोलो मत—चुप रहो तो मेरे अन्त करण मे भक्ति का जो उद्रेक हो रहा है उस उद्रेक के कारण बिना बोले मुझसे केसे रहा जा सकता है?

बसन्त ऋतु आने पर भी अगर कोयल नही बोलती तो उसमे और कोवी मे क्या अन्तर हे? केतकी के फूलने पर भी भ्रमर मतवाला होकर गुजार नही करता तो भ्रमर मे ओर दुर्गन्ध पर जाने वाली मक्खी मे अन्तर ही क्या रहेगा? कोयल वसन्त के आने पर ओर भ्रमर केतकी के कुसुमित होने पर भी न बोले—अगर उन्होने वह अवसर गवा दिया तो फिर कोनसा अवसर उन्हे मिलेगा जब वे अपने कोयल होने का परिचय देगे? अतएव कोयल म ओर भ्रमर मे जब तक चेतन्य हे जब तक जीवन हे तब तक वे अवसर आने पर बोले बिना नही रहेगे। इसी प्रकार अगर मयूर मे जीवन हे तो मेघ की गर्जना सुन कर उससे चुपचाप बेठा न रहा जायेगा। अगर वह चुपचाप रहता हे तो उसमे और गिद्ध मे क्या अन्तर हे? मेघ की गर्जना सुनते ही मयूर के उर म जो प्रेम उमडता हे वह गिद्ध के हृदय मे नहीं उमडता।

तात्पर्य यह हे कि वसन्त आदि अवसरो पर कोयल आदि के बोलने म निसर्ग की प्ररणा हे। निसर्ग की यह प्रेरणा इतनी बलवती होती है कि उसक आग किसी की नही चलती। उसी प्रकार भक्त के अन्त करण म भक्ति की आन्तरिक प्ररणा उत्पन्न हाती हे। उससे प्रेरित होकर भक्त मोन नही रख सकता।

पर्युषण पव क कारण आप लागा पर भी भक्ति का रस चढा हे यह [illegible] है। आप भी यह साचत हागे कि पर्युषण क पवित्र पर्व क [illegible]

अवसर पर भी यदि धर्म–ध्यान न करेगे तो फिर कब करेगे? जैसे बसन्त ऋतु के आने पर कोयल न बोले तो उसमे और कौवी मे अन्तर नही रह जाता, इसी प्रकार चातुर्मास एव पर्युषण पर्व आने पर भी आत्मा ने धर्म–ध्यान ना किया–धर्म के सुखद सौरभ से आत्मा को सुवासित न किया तो मनुष्य और पशु मे क्या अन्तर रहा?

हे आत्मन् ! अनन्तकाल व्यतीत हो चुका है। फिर भी तू ने धर्म की विशिष्ट आराधना नही की इस कारण तू सिद्ध रूपी कोयल न बनकर ससारी जीव रूपी कौवी बना हुआ है। अब तुझे अत्यन्त अनुकूल अवसर हाथ लगा है। यह बार–बार नही मिलने का। इस समय तू अपनी शक्ति का प्रयोग कर। अपने पुरुषार्थ को काम ला। अगर अब भी तू अपना जोश न दिखाएगा तो अनादि काल से अब तक जिस स्थिति मे रहा है, उस स्थिति मे चिरकाल पर्यन्त रहना पडेगा।

बसन्त ऋतु मे मौन रह कर कोयल, कौवी कहलाने का अपमान सहन नही कर सकती तो आप मनुष्य होकर पशु कहलाने का अपमान बर्दाश्त कर सकते हैं?

मित्रो! आप लोगो के माता–पिता श्रावक थे, अतएव आपको जिस धर्म की प्राप्ति हुई है वह उनके घर जन्म लेने के कारण ही। यदि आप श्रावक कुल मे जन्म न पाते किसी नीच कुल मे जन्म ग्रहण करते तो आपकी बुरी आदते छुडाने मे भी कठिनाई होती। नीच कुलोत्पन्न व्यक्ति से गोमास के भक्षण का त्याग करने के लिये कहा जाये जिसे कि सभी लोग बुरा समझते हैं तो वह सरलता से छोड देगा?

नही।

और आप लोगो मे से किसी को लाख रुपया पुरस्कार देने की प्रतिज्ञा पर मासभक्षण करने के लिए कहा जाये तो कोई भक्षण करेगा?

नही।

मित्रो ! यह किसका प्रताप है?

कुल का।

गीता मे एक जगह कहा है–योगभ्रष्ट ही उत्तम कुल मे जन्म लेता ह। अथार्त योग की साधना करते–करते उससे जो भ्रष्ट हो जाता हे जिसके याग मे किसी प्रकार की मलिनता आ जाती है वह उत्तम कुल मे जन्म ग्रहण करता ह। वास्तव मे धार्मिक कुल म जन्म मिल जाना साधारण बात नही हे। ससार मे ऐसे–ऐसे अधर्म कुल हे कि उनका वर्णन नही किया जा सकता। किसी–किसी कुल मे हिसा की इतनी तीव्र वासना ह कि व विना ही किसी

प्रयाजन के हिसा करते हे ओर वैसा करके अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। कोई उन्हे समझाता हे कि भाई कम से कम बिना प्रयोजन तो किसी प्राणी के प्राण मत लूटो तो वे उत्तर देते हैं—वाह क्या खूब उपदेश देते हो। अगर हम पशु—पक्षियो को सदा मारेगे नही तो हमारा अभ्यास छूट जायेगा। फिर मौके पर शिकार केसे खेल सकेगे? निशाना अचूक कैसे बनेगा? इससे सर्वथा विपरीत श्रावक के हाथ मे चिउटी देकर कोई उसे मारने के लिए कहे और उसके बदले उसे कुछ रुपये देने का प्रलोभन दे तो भी क्या श्रावक चिउटी मारना पसन्द करेगा?

नही।

यह सब जन्म के सस्कार का प्रभाव है। श्रावक के कुल मे जन्म लेने से आपके अन्त करण मे अनेक प्रकार के सुसस्कार विद्यमान हैं। आपके हृदय मे करुणा हे सत—असत का विवेक है धर्म के प्रति प्रेम है और कई अन्य प्रकार की विशेषताए हैं। अगर इस कुल मे जन्म पाकर और धर्म—श्रवण आदि का सुन्दर योग मिलने पर भी आपने धर्म का आचरण न किया धर्म की आराधना म उत्साह न दिखाया तो फिर श्रावक के कुल मे जन्म पा लेने से ही आपको क्या लाभ हुआ? आप अनेक दुष्कर्मों से बचे हुए हैं यह तो श्रावक —कुल म जन्म लेने का प्रताप हे किन्तु मासभक्षी मनुष्य धर्म के लिए जितना जोर लगाता हे उतना ही जोर भी अगर आपने न लगाया तो कहना होगा कि आप उस अयोग्य सन्तान के समान हैं जो अपने पूर्वजो की पूजी पाकर उसे बढाती नही घटाती है। अतएव भाइयो सदा स्मरण रखो कि धर्म ही तुम्हारे बडप्पन का कारण हे। धर्म से ही बडप्पन स्थिर रहता हे। धर्म को कभी मत भूला। तुम्हे जा सुसस्कार अपने पूर्वजो से प्राप्त हुए हैं उनमे सुयोग्य सन्तान की तरह वृद्धि करा और आगामी सन्तान को अधिकतर सुसस्कार देते जाओ।

अगर दूसरा काई आदमी आपसे कहने लगे—हम हिसा करते हैं घोर घातक ह फिर भी परोपकार का अमुक कार्य तो करते हैं। मगर आप हिसक नही ता क्या हुआ आपस परापकार का कार्य तो नही करते बनता। तो आप इनका क्या उत्तर दग ? यह दु ख की वात हागी या नही? इससे आपकी अहिसा लज्जित हागी या नही ? क्या आप म हिसा करने वाले से अधिक गुण नहीं हान चाहिय? दयावान म क्षमा निरभिमानता परोपकार आदि उत्तम गुण अवश्य हान चाहिय। इन्हीं गुणा क कारण अहिसा की— धर्म की प्रतिष्ठा हाती ह। इन्हीं स धर्म की महत्ता बढती ह। आप मास का भक्षण नही करते अतएव [illegible] और तम[illegible] स बच हुए ह। आपकी बुद्धि भ्रष्ट हान स बची हुई ह। [illegible] का परिचय दा। जगत म सात्त्विकता का विस्तार करा। [illegible] स आपका यह सिद्ध करना चाहिय कि मास भक्षण [illegible]

न करने और मदिरा आदि अयोग्य वस्तुओ का सेवन न करने वाले मनुष्य का जीवन कितना उन्नत कितना स्पृहणीय और कितना धर्म–मय होता है।

मैंने अभी बतलाया है कि कोयल, भ्रमर और मयूर समय पाकर चूकते नही है। केतकी के फूलने पर भ्रमर गुजार न करे, वसन्त आने पर कोयल न बोले और मेघ–ध्वनि सुनकर मयूर न बोले तो किसका दर्जा घटेगा? मेघ की गर्जना करने पर मोर न बोले तो उसी का दर्जा घटेगा और कहा जाएगा कि मेघ–गर्जना सुनकर मयूर नही बोला तो क्या गिद्ध होकर बोलेगा। इसी प्रकार भगवान् की वाणी–रूपी मेघ गरज रहा है। अगर आप लोगो ने इस अवसर पर भी अपना कर्त्तव्य न सोचा यदि इस मौके पर भी मयूर की तरह मस्त होकर न बोल उठे तो कब बोलेगे? आपको क्या बोलना चाहिये, यह जानने के लिये शास्त्र की कल वाली कथा को ही लीजिये।

हमारे यहा चक्रवर्ती और वासुदेव के राज्य की कल्पना बहुत बडी है। आठ हजार देव वासुदेव के सेवक होते हैं। वासुदेव के पास सुदर्शन चक्र होता है सारग धनुष होता है नद–खडग होता है कौमुदी गदा होती है और गरुडध्वज रथ होता है।ससार मे किसी की सामर्थ्य नही कि वह वासुदेव को पीछे हटा सके। श्रीकृष्ण जी को यह सब दिव्य सामग्री प्राप्त थी। उनका गरुडध्वज रथ ही ऐसा था कि उस पर सवार होने पर ससार की समस्त शक्ति मिलकर भी उन्हे परास्त नही कर सकती थी। ऐसे देवकीनन्दन को सभी भारतीय किसी न किसी रूप मे मानते है। यहा तक कि यहूदी और ईसाई आदि भी उन्हे किसी दूसरे नाम से पुकारते हैं यह सुना जाता है। फ्रास के एक विद्वान पादरी ने जो बहुत समय तक भारतवर्ष मे भी रहा है, लिखा है कि (क्राइष्ट) शब्द कृष्ण का ही रूपान्तर है। इसमे सत्य का कितना अश है या नही इस बहस मे हमे पडने की इच्छा नही है। हमारा आशय तो यह बताना है कि कृष्ण अपने युग के महापुरुष थे। उस समय भी सभी लोग उनकी ख्याति से परिचित थे और उनका लोहा मानते थे। ऐसा महान् प्रसिद्ध पुरुष एक साधारण श्रेणी के बूढे आदमी की ईट उठाये यह क्या साधारण बात है? यह कथा कोई कल्पित नही है वरन् शास्त्र इसका वर्णन करता है।

विचार आता है कि जब कृष्ण उस बूढे की ईट उठाने के लिए तत्पर हुए तब उन्होने अपना बडप्पन अपना महत्त्व कहा रख दिया था? उन्हे अपने बडप्पन मे दट्टा लगता नही मालूम हुआ होगा? उन्होने यह नहीं सोचा होगा कि मेरे मित्र मुझे क्या समझेगे। इन बातो की परवाह किये बिना ही वे जर्जरित देह वाले की ईट उठाने को तैयार हो गये?

'घटी आख की जोत,
छोत सब घर को करता।
डोकरा क्यो नही मरता ?

आख की ज्योति घट गई है। शरीर की कान्ति चली गई है। पोपले मुह से लार टपक पडती है। घर के सब लोग घृणा करते हैं। सोचते हैं--यह बूढा अब मर क्यो नही जाता?

श्री मोतीलाल जी महाराज बुढापे के वर्णन का एक गाना बोला करते थे। उसका कुछ भाव इस प्रकार है–

वूढा ने वालपन की हर आवे लडडू पेडा जलेबी मगावे।
घर से करडी रोटी आवे, दाता से चाबी नहि जावे।।
वहुआ वडा घरा की जाई, दे न खाट गोदडा बिछाई।
ससुरा थारे रे छाडे चालू, रेटया मे पूणी कद घालू।।
म्हारो बालक बिलबिल रोवे झोरी मे सुवाओ नहि सोवे।
सुसरो खू–खू करतो थूके वहुअर ऊठ सबेरे आगण लीपे।।
सुसराजी वड पीपल पण झडिया, सुसरोजी हजू नहि मरिया।

बुढापे मे ऐसी दशा हो जाती हे कि घर वाले भी उसके शीघ्र मर जाने की भावना करते हैं। कोई बात पूछने वाला नही मिलता। ऐसे बूढे की ईंट उठाने के लिए हाथी के होदे पर बेठे हुए कृष्णजी को प्रेरणा क्यो हुई? उन्हे ऐसा करने की क्या गरज पडी थी? लेकिन इस चरित्र मे न जाने क्या भाव भर दिया गया हे। कृष्णजी की बूढे की ईंट उठाने की दया पर ओर गजसुकुमार का साहित्य तुच्छ दिखाई देने लगता हे।

दया मे घृणा को कतई स्थान नही हे। अन्त करण मे जव दया का निर्मल स्रोत वहन लगता हे तव घृणा आदि के दुर्भाव न जाने किस ओर वह जात ह। श्रीकृष्णजी ने सिर्फ दया क खातिर वूढ की ईंट उठाई थी। इस प्रसग म शास्त्र का पाठ यह हे–

तए ण कण्हे वासुदेवे तस्स पुरिसस्स श्रणुकपणट्ठ ए–इत्यादि

इस पाठ न प्रकट हे कि कृष्णजी के हृदय म उस वृढ क प्रति दया का प्रादुर्भाव हुआ। इसी कारण उन्होन उसकी ईंट उठाई।

कम्प् धातु का सस्कृत भाषा मे कापना अर्थ होता है। उसके पहले अनु उपसर्ग लगने से अनुकम्पा शब्द सिद्ध होता है। अनुकम्पा का अर्थ होता है–

अनुकम्पन–अनुकम्पा।

जैसा सामने वाला है वैसा ही मैं हू–वरन् वही मैं हू, वह दु ख उसका नही, मेरा है इस प्रकार का कम्पन होना। दूसरे के समस्त विचारो को भूलकर उस दु ख के प्रतिकार का विचार हो उठना। यह अनुकम्पा शब्द का अर्थ है।

ऐसे भी कुछ लोग हैं जो इस प्रकार की अनुकम्पा को पाप बतलाते और मानते हैं। अनुकम्पा को पाप बताने वाले भाइयो पर भी मुझे अनुकम्पा है बल्कि वे अनुकम्पा के अधिक पात्र हैं। अगर उन पर अनुकम्पा का भाव मेरे हृदय मे विद्यमान न होता तो मैं उनकी चर्चा ही यहा न करता। जैसे आज सच्चे काग्रेसी पुरुषो को अग्रेजो के प्रति शत्रुता का भाव न होने पर भी, अग्रेजो की नीति और उनकी शासन–प्रणाली से विरोध है– वे उस प्रणाली का समूल विनाश करना अपना अभीष्ट समझते हैं क्योकि इससे दूसरो को हानि पहुचती है और स्वय अग्रेज भी नैतिकता के आदर्श से भ्रष्ट होते हैं उसी प्रकार कृष्णजी की अनुकम्पा को पाप बताने वाले भाइयो के प्रति मेरे हृदय मे किचित् मात्र रोष या द्वेष न होने पर भी अनुकम्पा जैसे प्रशस्त कार्य को उनका पाप बताना मुझे सह्य नही है। इससे मै बेचैन हो जाता हू, क्योकि इस प्रकार के उपदेश से धर्म का प्रधान आधार ही डगमगा जाता है। मैं सोचने लगता हू–वे लोग अनुकम्पा को पाप कैसे बताते हैं? आखिर उनकी विचार–सरणि का आधार क्या है? इस अनुकम्पा मे मोह क्या है? और मोह हुआ किस पर? कृष्णजी ने जिस पर अनुकम्पा की वह जीर्ण–शीर्ण शरीर वाला बूढा है। उसके घर वाले भी उसका अनादर करते है। जो अनादर करते है वे घर वाले भले ही मोह मे पडे हो पर कृष्णजी की अनुकम्पा को मोह बता कर उसे पाप कहने वालो से क्या कहा जाये? उन भोले भाइयो मे यह मिथ्या धारणा न जाने क्यो घुस पडी? कृष्णजी को मोह होता तो वे हाथी पर से क्यो उतरते? उन्होने हाथी से उतर कर एक साधारण मजदूर की तरह बूढे की ईंट उठाई और जगत मे दीन–दुखियो की सेवा–सहायता करने का अनुपम आदर्श उपस्थित किया अभिमान का त्याग किया सो वह भी पाप हो गया यह केसी विडम्बना हे?

आज यदि चरितानुयोग न होता तो हमे अनुकम्पा के लिए उदाहरण देना भी कठिन हो जाता। कृष्णजी ने बूढे का बोझ अपना बोझ माना। ऐसे

अनुकम्पा के कार्य को मोहानुकम्पा कर पाप केसे बताया जाता हे सो कुछ समझ मे ही नही आता।

दया धर्म पावे तो कोई पुण्यवत पावे
जाने दया की बात सुहावे जी।
भारी–कर्मा ने अनन्त ससारी
जा रे दया दाय आवे जी।।

पुण्यवान् बनने की इच्छा तो सभी की होती है पर वास्तव मे पुण्यवान् होता कौन है? हाथी पर बैठकर छत्र–चवर कराने तथा राजसिहासन् पर बेठकर प्रजा पर हुक्म चलाने से ही कोई पुण्यात्मा नही कहलाता। यह सव सामग्री पुण्य से भले ही मिली हो लेकिन इनका उपभोग करना पुण्यवानी नही हे–इस सामग्री के उपभोग से पुण्य का क्षय ही होता है पुण्य का उपार्जन नही होता। इस वात को समझने के लिए उदाहरण देना अधिक उपयुक्त होगा।

एक धनाढय सेठ मोटर मे बेठकर जा रहा हे। उसके गले मे कठा ह हाथो मे कडे पडे हें। उसके पास ही उसके वडे–वडे मनीम गुमाशते बेठे हें। वढिया मोटर मे जो वायु–वेग से दोडती चली जाती हे। मार्ग मे आपका वालक खेल रहा हे ओर वह धक्का लगने से गिर पडता हे बालक को गिरते देख कर सेठ की आखे लाल हो जाती हे। वह क्रोध से कापता हुआ कहता हे– केसे मूर्ख हें ये लोग जो अपने वालक को भी नही सम्हालते हें। अगर वालक को सभाल नहीं सकते तो उत्पन्न ही क्यो करते हैं? उन्हे गृहस्थी वसाने का अधिकार क्या हे? अगर वालक इतना चचल ओर नटखट हे कि रोकने स नही रुकता ता उसे कोठरी मे क्यो वद नही कर रखते। उन्हे इतनी भी समझ नही कि यह आम रास्ता हे ओर हम लोगा की माटरे इस रास्ते पर दाडती रहती हैं। दूसर का हत्या लगाने के लिये अपने वालक को छोड दन वाल पिता पर मुकद्दमा चलाना चाहिये जिससे उसकी अक्ल ठिकान आ जाय। वाप वनन का मजा चखाये विना अव काम चलगा नही।

इस प्रकार वडवडा कर सेठ मुकद्दमा चलान का तेयार हाता हे। उनका अभियाग ह कि लाग अपन वालक का न सभाल कर आम रास्त का उजाड आर खतरनाक वनात ह। हॉन वजान पर भी वालक रास्ते स नही हटा अतएव मुकद्दमा चलाना ही चाहिय।

को जिसके पास टट्टू भी नही है जिसके पैर मे जूते तक नही है वहा आया और उस बालक को पडा देखा। उसने उसे उठाया और छाती से लगा कर पुचकारा। किसी प्रकार मौखिक सान्त्वना देकर वह उसे अस्पताल ले गया और वहा उपचार कराया। दोनो आपको सयोगवश मिल जाते है, तो आप किसे पुण्यात्मा कहेगे? धनाढ्य सेठ को या उस चिथडे वाले गरीब को? आपका हृदय क्या कहता है? वास्तव मे पुण्यात्मा कौन है ?

'गरीब।

तो क्या प्रथम श्रेणी की मोटर और वह कडे–कठे पुन्याई की निशानी नही है?

'नहीं।

सेठ के कडे और कठे को आप धूल के समान समझेगे। जब आप गृहस्थ ही ऐसा समझने लगेगे तब हम तो साधु ठहरे। हमारा कहना ही क्या है? हम यही तो कह रहे हैं कि सच्चा पुण्यवान् वह है, जिसके घट मे दया का बास होता है।

हमे सेठ की मोटर से द्वेष नही है। उसके कडे और कठे से हमारे हृदय मे डाह पैदा नही होती। हम उसे पुण्यवान् तब कहते हैं जब वह तत्काल मोटर से उतरकर काप उठता। आपके उस लडके पर करुणा करता और आपसे तथा लडके से अपने कृत्य के लिए क्षमा याचना करता। लेकिन वह तो उलटा मुकद्दमा चलाने को कहता है उसे पुण्यवान् कैसे समझा जाय? हम तो उसी को पुण्यवान् समझते हैं जिसका दिल दीन–दु खी जीवो को देखते ही पिघल कर पानी–पानी हो जाता है जिसके दिल मे दया की विद्युत दौडने लगती है।

महाराज श्रीकृष्णजी भावी तीर्थकर माने जाते हैं। अगले अत्सर्पिणी काल मे वे हमारे वन्दनीय और पूजनीय होगे। मगर स्मरण रखो वे चक्र धनुष और गदा आदि के प्रयोग करने से या विशालकाय हाथी पर आरूढ होने से तीर्थकर नही होगे वरन् दया देवी की आराधना करने से ही उन्हे तीर्थकर पद की प्राप्ति होगी। उन्होने दया का जो उदाहरण उपस्थित किया उसकी समानता मिलना भी सहज नहीं है। इतने विख्यात सम्माननीय और अर्द्धचक्रवर्ती होकर भी निस्सकोच भाव से अपने आपको तीन कोडी के गरीब दुखिया की कोटि मे सम्मिलित कर लेना उसके कार्य मे हाथ बटाना साधारण त्याग नही है। ऐसा करने के लिए प्रबल नैतिक साहस की आवश्यकता है उग्रतर दयाभाव अपेक्षित है। उन्होने अपने जीवन मे न जाने और कितने दया के कार्य किये होंगे। न मालूम कितने दुखियो के दु ख दूर किये होगे कौन जानता है

उन्होने कितने अबल और असहायजनो के साथ इस प्रकार की आत्मीयता का नाता जोडा होगा ? उनके हृदय–सरोवर मे रात–दिन दया की कितनी प्रबल ऊर्मिया उठती होगी ? अन्यथा वे जगत् वन्द्य तीर्थंकर पद के अधिकारी कैसे बनते।

मित्रो! भगवान् नेमिनाथ के सच्चे दर्शनार्थी यात्री वही हैं जिनके दिल मे दया का वास हो। कृष्णजी ने न तो आप लोगो की तरह सवत्सरी मनाई न सामायिक ही की यद्यपि वे ऐसा करना चाहते थे पर निदानवश ऐसा करने का अवसर ही न मिला। मगर उनकी वृत्ति इतनी कोमल और दया इतनी अमोघ थी कि इसी से वे तीर्थकर पद प्राप्त करने मे समर्थ हो सके।

आप पोषध करते हैं, सामायिक करते हैं यह सब धर्म–क्रिया उचित ही हे–कर्त्तव्य हे किन्तु होनी चाहिये दया के साथ! दिल मे दया नही है परिणामो मे कठोरता है तो कहना पडेगा कि आपकी भक्ति मे वास्तविकता नही है– वह वगुला भक्ति हे।

एक वगुला बैठा तीर ध्यान वाको नीर मे
एक लोग कहे याको चित्त बस्यो रघुवीर मे।
याको चित्त माछला माय जीव की घात मे
पण हा वाजिद दगावाज को नाहि मिले रघुनाथ है।

इस प्रकार बक–वृत्ति से कल्याण न होगा। जगत को ठगना आसान हो सकता ह पर परमात्मा को ठगने का प्रयास करना वृथा हे।

कृष्णजी के अन्त करण मे करुणा का प्रादुर्भाव हुआ था इसी कारण आज उनकी महिमा गाई जा रही हे। अव आप अपने विषय मे विचार कीजिये। आपका क्या करना चाहिय ओर केसे वनना चाहिये? आप सोचत हाग–चला हम भी किसी की ईंट उठा दगे तो तीर्थंकर वन जायेगे ओर हमारी महिमा भी कृष्णजी के समान गाई जाने लगगी! पर इस वात का विचार करो कि कृष्णजी किस श्रष्ठतर मानसिक स्थिति पर पहुच थे ओर किस उत्कृष्ट स्थिनि म उन्हान ईंट उठाई थी ? उनक परिणामा म करुणा का केसा प्रकृष्ट रसायन आ गया था? ईंट उठाना अन्त करण म उत्पन्न हान वाली दया भावना स कृष्णजी तीर्थंकर पद क अधिकारी हुए हैं कवल ईंट उठा देन स नहीं। अगर इतना न कर सक ता कम–स–कम इतना ता अवश्य दख कि आपकी आत्मा किसी पर भार ता नही पड रहा ह! दूसर का भार अपन ऊपर आढन स पहल इतना ता करला कि अपना बाझ दूसरा पर न लाद।

उठाने मे जुट पडा होगा। उस बूढे के घर वालो की भाति आपसे तो कोई व्यवहार नहीं हो रहा है ? आप तो अपने असमर्थ वृद्ध माता–पिता आदि से ऐसी कोई बात नही कहते जो उन्हे चुभती हो जिससे उनके दिल मे चोट पहुचती हो? एक दृष्टान्त सुनिये–

एक आदमी घोडी पर सवार होकर चला जा रहा था। घोडी के पेट मे बच्चा था। आदमी मूर्ख था। उसने सोचा–'घोडी के पेट मे बच्चा है। इस पर अधिक बोझ लादना ठीक नही है।' यह सोचकर उसने, अपने पास जो बोझ था, वह घोडी पर बैठे–बैठे ही अपने सिर पर रख लिया। अब वह मूर्ख घोडी पर था और उसका बोझ उसके सिर पर था। रास्ते मे उसे कुछ लोग मिले। उन्होने उस सवार से पूछा कि भाई तू घोडी पर बैठा है, फिर यह बोझ अपने ऊपर क्यो लादा है ? मूर्ख सवार ने कहा–घोडी के पेट मे बच्चा है, अगर उस पर इतना बोझ लाद देगे तो वह मर न जाएगी? उन्होने उससे कहा–भले आदमी तू बैठा किस पर है। यह सारा बोझ पड किस पर रहा है?

आप लोग विचार कीजिये कि वह मूर्ख घोडी पर दया कर रहा है या दया की हसी करा रहा है। आप लोग ऐसी मूर्खतापूर्ण दया तो नहीं करते? कृष्णजी के समान ईंट उठाने की बात बाद मे सोचना, पहले यह सोच लो कि आप अपना बोझ गरीबो पर तो नहीं डाल रहे हैं? आप कुछ कार्य तो ऐसे करते हैं जिससे मालूम हो कि आप गरीबों पर दया करते हैं, लेकिन आपने अब तक ऐसे कार्यो को कहा तक त्यागा है जिनके कारण गरीबो को भूखो मरना पडता है उन्हे एक बार भरपेट रोटी भी खाने को नसीब नही होती है? कल्पना कीजिये कि एक आदमी चुरुट पीता हुआ चला जा रहा है। रास्ते मे एक गरीब भूख का मारा बिलबिला रहा है। उस चुरुट पीने वाले ने गरीब को एक पैसा दिया। इस घटना पर ज्ञानी कहते है गरीब को एक पैसा देकर अपनी दया का प्रदर्शन करते हैं तो चुरुट पीना ही क्यो नही त्याग देते? इस चुरुट के कारण तुम स्वय भार बन रहे हो और तुम्हारा भार गरीबों पर पड रहा है। अगर तुम इसका त्याग कर दो तो गरीबो पर कितनी दया होगी ? दया के प्रदर्शन की अपेक्षा वास्तविक दया से ही वास्तविक और विशेष लाभ होगा।

आज बीडी–सिगरेट मे जो विपुल धनराशि व्यय की जाती है उसे परोपकार के काम मे लगा दिया जाये तो कितना लाभ हो। जगत का इससे बहुत मगल–साधन किया जा सकता है।

मत पीना नशीली तमाखू कभी
देती सुख ना जरा ये तमाखू कभी।
जहर होता है भयकर इस तमाखू मे सुनो
नाम जिसका है निकोटाइन हकीकत सब सुनो।
ज्यादा पीने से प्राणी को मारे कभी,
मत पीना नशीली तमाखू कभी।।
खून हो जाता है पतला दाग पडते सीने मे,
फैफडे कमजोर हो जाते हैं सशय जीने मे।
करती सूखा दिमाग तमाखू कभी
मत पीना नशीली तमाखू कभी।।
रोग होते है अनेको, जिनकी कोई हद नही,
आख–पीडा पेट–पीडा मन्दता होती सही।
पूरे डाक्टर हैं जो वे बताते सभी,
मत पीना नशीली तमाखू कभी।।

डॉक्टर ने प्रयोग करके यह परिणाम निकाला कि तमाखू मे विष की मात्रा काफी परिणाम मे होती हे। एक जगह मेने पढा हे कि एक बीडी की तमाखू का सत्व निकालकर सात मेढको को दिया जाये तो उन सातो की मृत्यु हो जायेगी। तमाखू मे जो विष होता हे, डॉक्टरो ने उसे 'निकोटाइन सज्ञा दी हे। वास्तव मे तमाखू अत्यन्त हेय वस्तु हे। उसमे मादक शक्ति हे, विष हे ओर इसीलिए वह बुद्धि तथा स्मरण शक्ति का विनाश करती हे। इससे रक्तविकार आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं जो जीवन को खतरे मे डाल देते हें। में जब विचार करता हू तो मुझे आश्चर्य होता हे कि तमाखू मे आखिर क्या आकर्षण हे जिससे दुनिया भर मे उसका दोर–दोरा हो रहा हे। तमाखू मे मिठास नही हे कटुकता हे। इन्द्रिया उसे पहले–पहले स्वीकार नही करना चाहती। मनुष्य जब तमाखू को भीतर ठूसना चाहता हे तब इन्द्रिया प्रबल विराध करती ह। छीक क द्वारा खासी के द्वारा या वमन के द्वारा अन्दर ठूसी हुई तमाखू का इन्द्रिया बाहर फेक देती हें। इसी से यह स्पष्ट हा जाता हे कि तमाखू शरीर क लिए अस्वाभाविक वस्तु हे। फिर भी मनुष्य मानता नही आर अपने ऊपर बलात्कार करक तमाखू का सवन किय जाता हे। कुछ दिना तक इन्द्रियाँ विराध करक थक जाती हें ओर मनुष्य तब स्वच्छद होकर शरीर म तमाखू का जहर घुसडन लगता हे अन्त म शरीर तम्बाकू क विष स विषैला बन जाता ह आर तब लाग 'शरीर व्याधिमन्दिरम अर्थात शरीर रोगा का घर

विष होता है कि उससे मनुष्य की मृत्यु हो सकती है। मगर मनुष्य थोडी–थोडी करके सेवन करता है इसी से तत्काल इतना उग्र प्रभाव नही होता फिर भी उससे भयकर हानिया होती है। तम्बाकू ज्ञान–तन्तुओ पर विनाशक प्रभाव डालती है हृदय को दुर्बल बनाती है और मन को भ्रात करके स्मरण शक्ति की जड उखाड फैंकती है। यह एक नशीली वस्तु है। इसके नशे मे अनेक बार घोर अनर्थ हो जाते हैं।

एक अग्रेज को चुरुट पीने का बडा शौक था। एक दिन चुरुट पीने से उसे खूब नशा चढ गया। नशे की हालत मे मनुष्य को कई प्रकार के कुत्सित विचार आते रहते हैं और अनेक प्रकार की ऊलजलूल बाते सूझती हैं। उस अग्रेज को भी एक भयकर विचार आया। उसकी पत्नी सोई पडी थी। उसने उसे मार डालने का विचार किया। थोडी ही देर मे उसका नशा कम हो गया तब उसे अपने मूर्खतापूर्ण विचार पर धिक्कार आया। वह अपने आपको बार–बार धिक्कारने लगा। थोडी देर बाद उसने फिर चुरुट पिया और अबकी बार उसका वह भीषण कुविचार काम कर गया–उसने अपनी पत्नी की हत्या कर डाली। तमाखू के सेवन से मनुष्य का इतना पतन हो जाता है!

इस विषमयी तमाखू को खरीदने मे भारतीयो का लाखो–करोडो रुपया प्रतिवर्ष विदेशो मे चला जाता है। जरा अपनी विवेकशीलता का विचार तो करो! एक ओर करोडो आदमी भूख के कारण तडफते हैं और दूसरी ओर करोडो रुपया तमाखू खरीदने के लिए विदेशो मे भेज दिया जाता है और उस रुपये के बदले मिलता क्या है– भयकर क्षति भीषण विनाश शरीर शोषण, बुद्धि–भ्रश आदि। इन सब सौगातो के लिए तुम्हारा धन व्यय होता है और वह धन गरीबो के हाथ का कौर छीन कर इकटठा किया जाता है। इस व्यवहार की कहा तक प्रशसा की जाये? वैश्यो की वाणिक् बुद्धि भी आज कहा चली गई है?

मित्रो! दूसरो पर दया नही कर सकते तो कम से कम अपने ऊपर तो दया करो! अपने पैर पर आप कुल्हाडा मत मारो। तमाखू जैसे निन्दनीय पदार्थो के सेवन से बचने का प्रयास करो। अपनी वृत्ति को सात्विक बनाओगे तो जीवन का आदर्श तुम्हे सूझ पडेगा। उस समय तुम्हारा हृदय दया से द्रवीभूत होगा। वह दया तुम्हारा परम कल्याण करेगी। वह सच्ची दया जगत् को आनन्द का धाम बना सकती है। दिखावटी दया से काम नहीं चल सकता। अत करण को करुणामय बनाओ। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा और जगत् का भी कल्याण होगा।

महावीर भवन देहली ता– 13 9 31

8. सदा सहायक

प्रणमू वासुपूज्य जिननायक, सदा सहायक तू मेरो।
विषम वाट घाट भय थानक, परम श्रेय सरनो तेरो।।
प्रणमू वासुपूज्य जिननायक।।

भगवान् वासुपूज्य की यह स्तुति की गई है। प्रार्थना की भाषा सीधी–सादी ओर सरल हे। एक बच्चा भी उसे समझ सकता हे। किन्तु सरल भाषा की इस प्रार्थना मे जो भावगाम्भीर्य हे भावो की जो महत्ता हे उसकी ओर भी दृष्टि देना चाहिये। भावो की गम्भीरता और महत्ता को समझना ही प्रार्थना को समझना है।

प्रार्थना मे एक सीधी–सी बात कही गई है कि–हे प्रभो! मै तुझे प्रणाम करता हू, तुझे वन्दन–नमस्कार करता हू। प्रणाम करने का कारण क्या है इसका स्पष्टीकरण करने के लिए बतलाया गया हे कि–क्योकि तू सदा सहायक हे! चलते, फिरते खाते पीते सोते जागते बेहोशी मे ओर होश म बस तू ही सहायक हे।

इस प्रकार की सहायता करने वाले से किसे प्रेम न हागा? ऐसे भगवान् को कौन नमस्कार न करेगा? मगर हमे यह तो जान लेना चाहिये कि वह भगवान सदा सहायक किस प्रकार हे? केसे वह हमारी सहायता करत रहते हैं? अगर हम इस तथ्य को जान जाएगे तो हमारा मस्तक उनके चरणो मे स्वत झुक जायेगा।

भगवान् सदा सहायक किस प्रकार हैं इस जानने के लिए विचार की आवश्यकता है। मगर आप विचार करगे ता स्वय ही आपका विदित हो सकता हे फिर परापदश की आवश्यकता ही नही रह जायगी।

आप जब घर पर थ तब सूर्य आपका प्रकाश द रहा था। आप यहा हैं तब भी प्रकाश द रहा है। आप चाहे दश म हा चाहे विदश म हा चाहे

बेहोशी मे हो चाहे होश मे हो, सूर्य आपको प्रकाश देता ही रहता है। यद्यपि सूर्य के प्रकाश मे और भगवान् की सहायता मे बडा अन्तर है, फिर भी उपमा तो सूर्य की ही देनी पडती है। आचार्य मानतुग ने भी कहा है–

सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र!लोके।

हे मुनीन्द्र!यद्यपि तुम्हारी महिमा सूर्य से बढकर है– अनन्त गुणी अधिक है, लेकिन उपमा तो सूर्य से ही देनी पडती है क्योकि विश्व के अन्य पदार्थो मे उपमा के उपयुक्त कोई और पदार्थ नहीं दिखाई देता।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार सूर्य सब जगह, बिना भेदभाव के सभी को, बिना किसी चाह के प्रकाश देता है, हे प्रभो! इसी प्रकार तू भी सदा, सबका वीतराग–भाव से सहायक होता है।

यहा यह प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा वीतराग है। जैनधर्म की मान्यता के अनुसार वह अकर्त्ता है। तब परमात्मा को माने बिना सहायक कैसे माना जा सकता है? अगर वह सहायक भी नही है, क्योकि कर्त्ता नही है, तो उसकी यह स्तुति सच्ची कैसे हो सकती है?

भलीभाति विचार करने से इस प्रश्न का सहज ही समाधान हो सकता है और प्रश्नकर्त्ता को ईश्वर के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान भी हो सकता है। ईश्वर कर्त्ता न होने पर भी किस प्रकार सहायक होता है यह बात एक उदाहरण से मालूम हो जाएगी।

एक बालक किसी पुस्तक के अक्षर देखकर अपने अक्षर वैसे ही बनाने का प्रयत्न कर रहा है। क्या पुस्तक के अक्षर उस बच्चे की सहायता करते है?

'हा'

बच्चा उस पुस्तक के अक्षरो पर ध्यान देकर वैसे ही अक्षर बनाने लगता है। जब वह ऐसा करते–करते कुशल हो जाता है तब स्वय ही अक्षरो का कर्त्ता बन जाता है। उसे पुस्तक देखकर अक्षर लिखने की आवश्यकता नही रहती। यद्यपि पुस्तक के अक्षर जहा के तहा है उन्होने पुस्तक से उठकर के बालक की सहायता नही की है तथापि बालक मे वह सामर्थ्य था कि वह उन अक्षरो को देखकर–उन पर ध्यान देकर वैसे ही अक्षर बनाने लगा। इस अपेक्षा से वह अक्षर ही उस बालक के सहायक हैं। अब जड अक्षर भी बिना कुछ किए बिना रागभाव धारण किये सहायक हो सकते है तो चिदानन्दमय वीतराग भगवान अकर्त्ता होते हुए भी आत्मा के सहायक क्यो नही हो सकते।

हा, परमात्मा को दाल–रोटी बनाने वाला या कुभार के समान मनुष्यो को घडने वाला कर्त्ता माना जाए तो कहना होगा कि तुमने परमात्मा को पहचाना ही नही है। आशय यह है कि ईश्वर हमारे कल्याण मे सहायक है, निमित्त कारण है, फिर भी वह कर्त्ता नही है। कर्त्ता ही निमित्त कारण हो या सब निमित्त–कारण कर्त्ता ही कहलाए ऐसा नियम नही है। सुन्दर अक्षरो का कर्त्ता बालक स्वयमेव है, फिर भी पुस्तक के अक्षर उसके सहायक है। इसी प्रकार परमात्मा कर्त्ता नही है फिर भी सहायक है।

हे प्रभो! तुझ मे सदा सहायक होने का गुण प्रकट हो गया है। मुझे जितनी सहायता की अपेक्षा है उससे अनन्तगुणी शक्ति तुझ मे प्रकट हो गई है। हे देव! तू विकार–विहीन है वीतराग है। तू ने अपने समस्त विकारो का विनाश कर डाला हे। मोहनीय कर्म का समूल उन्मूलन करके राग–द्वेष को नष्ट कर दिया हे इसी से तू मेरा सहायक है। मैने ससार के सब सहायको को देख लिया। सारा ससार छान डाला। लेकिन सच्चा सहायक कही न मिला। जो स्वय अपनी ही सहायता नही कर सकता वह मेरी क्या सहायता करेगा! अतएव दुनिया मे दर–दर भटक कर निराश हो आज तेरे द्वार पर आया हू।

प्रभो! टेढी–मेढी विषम मार्ग वाली ससार की घाटी से तेरे सिवा कौन निकाल सकता हे। तेरी शक्ति अद्भुत है, तेरा प्रताप अनूठा हे तेरा प्रभाव निराला हे। अगर मे घोर निर्दय दुष्ट के चक्कर मे पड गया होऊ ओर उस समय तेरा कृपाकटाक्ष हो जाये तो वह घोर निर्दय दुष्ट भी मेरा मित्र एव दास वन कर मरी सेवा करने लग जायेगा। ऐसा अपूर्व प्रभाव हे तेरा!

भगवन्! आप सदा सहायक हैं। विकट सकट के समय आपकी सहायता प्राप्त होती हे पर आपकी ओर राजा से प्राप्त होने वाली सहायता म अतर क्या ह! दुष्टजनो द्वारा सताये जाने पर राजा से फरियाद की जाय और यदि राजा का अनुग्रह हो जाए तो वह उन दुष्टो को मरे सामन झुका सकता ह आर मरी रक्षा कर सकता हे। फिर आपकी सहायता मे ओर राजा की सहायता म क्या अन्तर हे या आपकी सहायता म क्या विशेपता हे? राजा ता प्रत्यक्ष दिखाई पडता है आर कहता हे–मेरी शरण आओ। में तुम्हे कष्ट न [illegible] दूगा। म तुम्हारी रक्षा करूगा। इतना सव कुछ हात हुए भी मुझ राजा नही [illegible]–उनकी सहायता लना मुझ नही भाता आर ह प्रभो! आप जो इन्द्रिय [illegible] ह जो रक्षा का मौखिक आह्वान भी नही करत मुझ [illegible] ह। [illegible] शरण आया हू। इसका कारण क्या हे?

[illegible]

प्रभो! राजा मेरे शत्रुओ को मेरे सामने झुका सकता है, पर वह मेरे शत्रुओ का शत्रु–भाव नही छुटा सकता। वह उन्हे दण्डित करके शत्रुता की वृद्धि करता है और अनन्त वैर बढता है। जो लोग राज–दण्ड के भय से मेरी आधीनता स्वीकार करते हैं उनकी आत्मा मे मेरे प्रति तीव्र वैर उत्पन्न हो जाता है। वे सोचने लगते हैं–इसने राजा के भय से मुझे झुकाया है सही, पर अवसर मिलने पर मैं इसे नही छोडने का। मै इसे और अगर हो सका तो राजा को भी झुकाऊगा। इस प्रकार वैर का उपशमन न होकर वैर की परम्परा चल पडती है। किसी ने ठीक ही कहा है–

न हि वैरेण वैराणि शाम्यन्तीह पार्थिव!

अर्थात् हे राजन्! वैर से वैर कभी शान्त नही होते। जैसे रक्त से रक्त नही धुल सकता वरन् उसमे अधिकता ही आती है, उसी प्रकार वैर से वैर बढता है–घटता नही है।

जब ऐसी स्थिति है राजा वैर का उपशमन नही कर सकता बल्कि वह वैर को अनन्त गुणा बढा देता है तो राजा की शरण जाने से क्या लाभ है! मगर आपकी कृपा से जो वैरी झुकता है उसमे और मुझमे कोई भेद ही नही रह जाता। वह ऐसी स्थिति है जहा वह, मैं और साथ ही आप भी मिल कर सब एक हो जाते हैं।

मित्रो! अपने–अपने शत्रु का नाश करना सभी को अभीष्ट है। सब की यही आकाक्षा रहती है कि हम अपने शत्रुओ का विनाश करे उन पर विजय प्राप्त करे! लेकिन कोई शस्त्र बल से शत्रु का सहार करना चाहता है, कोई राजा के बल से कोई बाहुबल से और कोई ईश्वर के बल से शत्रु को नष्ट करना चाहता है। मगर इन सब बलो मे बडा अन्तर है। अन्यान्य बलो से शत्रु का नाश करने पर अनन्त शत्रुता की वृद्धि होती है। मगर ईश्वर के बल से शत्रु का सहार करने पर न वैरी रह जाता है और न वैर ही रह पाता है। अगर आपको ईश्वर के बल का अवलम्बन लेना हो तो उस पर विचार करो। अगर आप अपने या राजा आदि के बल पर भरोसा रखते हैं तो फिर ईश्वरीय बल की शरण जाने का आपको अधिकार नही है। जब तक आप अपने बल पर विश्वास रख कर अहकार मे डूबे रहेगे तब तक ईश्वरीय बल नसीब न होगा। इसी प्रकार अन्य भौतिक बलो पर भरोसा करने से भी वह आध्यात्मिक ईश्वरीय बल आप न पा सकेगे। अहकार का सम्पूर्ण रूप से उत्सर्ग करके परमात्मा के चरणो मे जाने से उस बल की प्राप्ति होती है।

सुनेरी मैने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरू सतन की, आप सुधारे काम। सुनेरी।।
सेठ सुदर्शन निर्बल होकर, धरा अखडित ध्यान।
अर्जुनमाली देख थकित हो, पाया पूरण ज्ञान। सुनेरी।।

इस प्रकार आप ईश्वरीय बल के ग्राहक बन कर उसी पर अखड श्रद्धा रख कर बल प्राप्त करो। राजा का बल पाकर के भी तुम शत्रु का नाश नही कर सकते। राजा के बल से न शत्रु का नाश होता है, न शत्रु का सहार होता हे। पिछले सन् 1974 वाले महायुद्ध मे एक पक्ष की विजय हुई और दूसरे पक्ष की पराजय हुई। कहने को तो युद्ध समाप्त हो गया, पर क्या वास्तव मे वह समाप्त हो गया।

युद्ध की समाप्ति का अर्थ है विरोधी पक्षो मे मित्रता की स्थापना हो जाना–शत्रुता का समाप्त हो जाना। क्या आप सोचते हैं महायुद्ध की समाप्ति के साथ लडने वाले दानो पक्षो मे मैत्री स्थापित हो गई, उन्होने एक –दूसरे के प्रति शत्रुता का त्याग कर दिया ? मैं कहता हू, हर्गिज ऐसा नही हुआ। बाहर का युद्ध सिर्फ भीतर चला गया हे पहले जो युद्ध–भूमि पर लडा जा रहा था। वह अव विरोधी पक्षो के अधिकारियो के अन्त करण मे लडा जा रहा हे। इस समय सभी देश वाले यही सोच रहे हे कि कव हमे अवसर मिले और कव पिछले महायुद्ध का वदला भजाएँ। जो पराजित हुआ था वह विजेताआ को समूल नष्ट करने का उपाय खोज रहा हे। सभी के अन्त करण आग से धधक रहे हें।

ससार की सर्व–श्रेष्ठ शक्तियो ने अपना सम्पूर्ण वल लगा कर युद्ध किया परन्तु फल क्या हुआ? क्या वेर का अन्त हुआ? नही बल्कि वैर की वृद्धि हुई है। भातिक वल के प्रयोग का परिणाम इसके अतिरिक्त कुछ ओर हा ही नही सकता।

कवल ईश्वर की ही ऐसी शक्ति हे जिसके द्वारा शत्रु भी नहीं रहता और शत्रुता का भी नाश हा जाता हे।

खल दल प्रवल दुष्ट अति दारुण जो चौतरफ करे घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी अरियन होय प्रकट चेरो।।

ध्यानपूर्वक सुनो और अपने जीवन मे चरितार्थ करो तो आपका मनोरथ सफल हो जायेगा।

राजगृह नगर मे अर्जुनमाली एक बगीचे मे बागवानी का धधा करता था। बागवानी का काम उसके यहा कई पीढियो से चला आता था। जो मनुष्य अपना पीढीजात धधा करता है, उसका उस धधे मे गहरा और निराला ही अनुभव होता है। जो चलते रास्ते दूसरे के धधे को उडा लेता है और अपना परम्परागत धधा त्याग देता है, वह उस धधे को हानि पहुचाता है। वह परम्परागत व्यवसाय को भी क्षति पहुचाता है और नवीन व्यवसाय को भी। इससे समाज मे बडी गडबडी मचती है और अव्यवस्था की स्थापना फैल जाती हैं।

(पूज्यश्री ने सन 1931 मे यह प्रवचन किया था। इस प्रवचन मे उन्होने अपनी तीव्र कल्पनाशक्ति के द्वारा योद्धा राष्ट्रो की मनोवृत्ति का जो चित्रण किया है वह आज साक्षात् दिखाई पड रहा है। गत महायुद्ध मे पराजित हुए जर्मन राष्ट्र ने अवसर देख कर उस समय के विजेता राष्ट्रो को नीचा दिखाने के लिए जो घनघोर और भीषण सग्राम आरम्भ किया है वह इस कथन का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि राजबल से शत्रुता की वृद्धि ही होती है-विनाश नहीं होता। वर्तमान महायुद्ध गत महायुद्ध की अपेक्षा अत्यन्त विनाशक अत्यन्त व्यापक और अत्यन्त भीषण है। वह युद्ध सिर्फ पश्चिम मे लडा गया था यह समस्त ससार व्यापी है। पहिले युद्ध मे आकाश मे सुरक्षा थी आज के युद्ध मे जल स्थल और नभ तीनो एकाकार हो गये है। पिछली बार सैनिक-नागरिक का भेद बहुत-कुछ विद्यमान था आज सब को एक घाट पानी पिलाया जा रहा है। पिछली बार सैनिक साधनो का और स्थानो का ही सहार हुआ था आज बडे-बडे प्राचीन नगर और सभ्यता के केन्द्र विध्वस किये जा रहे हैं। पूज्यश्री का विवेचन कितना तथ्य पूर्ण है इसे पाठक स्वय देखे।)

—सपादक

इसी कारण भारतवर्ष मे वर्ण-व्यवस्था की स्थापना की गई थी और नियम बनाया गया था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना परम्परागत व्यवसाय ही करना चाहिये। अगर कोई अपना व्यवसाय त्याग कर दूसरे के व्यवसाय मे हाथ डाले तो राजा को हस्तक्षेप करके उसे रोकना चाहिये। अगर ऐसा न किया जाये तो वर्ण-सकरता फल जायेगी।

स्वा हि वृत्तमतिक्रम्य यस्त्वन्या वृत्तिमुद्वहेत्।
स पार्थिवैर्नियतव्यो, वर्णसीर्णिरन्यथा।।

अर्थात् जो अपनी आजीविका छोडकर दूसरे की आजीविका व्यवसाय करे उसे राजा रोक दे, अन्यथा वर्ण–सकरता हो जाती है।

प्रत्येक व्यवसाय को उन्नत अवस्था मे पहुचाने के लिए प्राचीनकाल मे आजीविका सबधी यह उपयोगी नियम बनाया गया था। आज राजाओ को इन बातो के विचार के लिए अवकाश नही है। इस सबध मे उनका कोई नियत्रण भी नही है। अतएव आज धधो की यह वर्णसकरता धडल्ले के साथ चल रही हे ओर प्रजा मे मारा–मारी हो रही है।

अर्जुनमाली अकेला ही अपना काम नही करता था। उसकी पत्नी भी उसकी सहायता करती थी। आजकल की स्त्रिया प्राय अपने पतियो को बोझ रूप हो रही हैं। पहले की स्त्रिया ऐसी नही थी–उनका ढग कुछ ओर ही था। आज पुरुषो पर अपनी स्त्री की जोखिम बनी ही रहती हे और इसीलिए स्त्री पुरुष के लिए भाररूप हो पडी है। पुरुषो को सदा ही यह चिन्ता लगी रहती हे कि हमारी स्त्री की ओर कोई बुरी नजर से न देखे ओर उसका अपमान न करे। उसे बहका कर उडा न ले जाये। इस स्थिति के लिए उत्तरदाता कोन हे? पुरुषवर्ग या स्वय महिला–समाज। मैं इस झझट मे पडना नही चाहता। किसी समूह को अवाछनीय स्थिति मे पडने वाले समूह को निर्दोष नही कहा जा सकता। मगर इस अभियोगप्रणाली को दूर रखकर मैं तो यही कहना चाहता हू कि प्रचीन–काल मे महिला–समाज की ऐसी स्थिति नहीं थी । स्त्रिया पुरुषो की अर्द्धागिनी की हेसियत से उनकी सहायता किया करती थी। वे न केवल व्यावहारिक कार्यों म ही वरन् धार्मिक कार्यों म भी पुरुषा की सहायिका वनती थी। उपसकदशाग सूत्र मे स्त्रिया को धम्मसहाया अर्थात धर्म म सहायता पहुचान वाली कहा हे। स्त्रिया वीरता मे पुरुषा से किसी प्रकार हीन नही हाती।

अर्जुनमाली की स्त्री का नाम वन्धुमती था। नगर म वडा उत्सव था। अतएव पति–पत्नी दाना कुछ रात रहते ही फूल चुनन के लिए वगीचे म जा चुके थे।

होता था। वे गुडे अपनी धाक का अत्यन्त अनुचित उपयोग करने लगे। कहा भी है–

यौवन धनसम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकिता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्?।।

अर्थात्–यौवन, धन–सम्पदा अधिकार और अविवेक–मूर्खता, इनमे से एक–एक भी महा अनर्थ करने वाला है जहा यह चारो एकत्र हो जाए वहा तो कहना ही क्या है?

जवानी दीवानी होती है। ये युवक जवानी से मतवाले हो रहे थे। उनकी आखो मे मद छाया रहता था। इन्हे पहले अकेली जवानी का ही बल था पर अब धन का भी बल मिल गया। अतएव उनमे ग्यारह गुना उन्माद छा गया था।

जवानी कैसी अधाधुध मचाने वाली है? बैठे हुए भाइयो मे जवानी की मदोन्मत्त अवस्था के कारण किसी प्रकार का कुकर्म न करने वालो की सख्या उगलियो पर गिनने लायक होगी। जवानी के साथ धन मिल जाने से तो उसमे ग्यारह गुना उन्माद आ जाता है।

कई भाई कहते है–जिनके पास धन नही होता वही आजीविका उपार्जन करने के लिए पापाचरण करते हैं। किन्तु मित्रो! यदि आप धनिको के पापो को और आजीविका के निमित्त पाप करने वालो के पापो को न्याय की तराजू पर तोलेगे तो धनिको के पापो का ही पलडा नीचा रहेगा। उन पापो की तुलना मे गरीबो के पाप बहुत थोडे से मालूम पडेगे। इससे यह आशय न निकालिये कि मैं यह कहना चाहता हू कि सभी धनवान् एक सरीखे होते है। अनेक धनाढय पुरुष चरित्रवान् देशहितैषी और धर्म–रक्षक भी हुए है और है भी। परन्तु उनकी सख्या बहुत कम है। धन के गुलामो ने अपने आमोद–प्रमोद के लिए सम्पूर्ण देश को दरिद्र बनाने मे काफी सहायता पहुचाई है। जिन धनिको मे विवेक था उन्होने ऐसे महत्वपूर्ण कार्य किये है जिनका इतिहास मे सुवर्णाक्षरो मे नाम लिखा है। उन्होने डूबते देश को बचाया और नष्ट होते धर्म की रक्षा की।

महाराणा प्रताप की सहायता करने वाले देश–भक्त भामाशाह को कौन नही जानता ? भामाशाह ओसवाल जाति का महाजन था। जिस समय महाराणा प्रताप अपनी पाणप्रिय मेवाड भूमि का परित्याग कर सिध की ओर जाने की तैयारी मे थे उस समय जगल मे भामाशाह ने पीछ से 'घणी खमा कहकर महाराणा का ध्यान ही अपनी आर आकर्षित किया। महाराणा ने पीछ

की ओर मुड कर देखा तो चार–पाच मजदूरो के सिर पर बडे–बडे गठडे लादे हुए भामाशाह दिखाई दिये। महाराणा ने सोचा–शायद भामाशाह प्रधान मुझसे अन्तिम भेट करने आया है।

भामाशाह (महाराणा के चरणो मे झुक कर) अन्न–दाता कहा पधार रहे हैं ?

उदासी के साथ राणा बोले भामा, मेरे पिताजी ने सिर्फ चितौड छोडा था, पर मै ऐसा कुलकलक निकला कि सम्पूर्ण मेवाड को छोड जाता हू।

भामाशाह–आप सदृश प्रतापी पुरुषो को यह उदासीनता शोभा नही देती। आप सरीखे नर –वीर क्षत्रिय ही यदि उदास हो जाएगे तो दूसरो का क्या हाल होगा?

राणा–भामा! मेवाड का सौभाग्य–सूर्य अब अस्त होने वाला है।

भामा– नरकेशरी ऐसा न कहिए। मेवाड के सूर्य को मेघो ने अवश्य घेर लिया हे पर मेघ हटेगे ओर सूर्य अपनी प्रखर किरणो के साथ फिर पहले की भाति चमक उठेगा। (गठडो की ओर इशारा करके) यह आपके चरणो मे समर्पित हे। जिस प्रकार चाहे, उपयोग कीजिये।

राणा–(गठडो मे आटा–दाल आदि भोज्य सामग्री समझकर) भाई भामा यह हमारे काम का नही। अब वन के फल–फूल हमारा भोजन है।

भामा ने गठडे खोले ओर हीरो–पन्नो के ढेर महाराणा के चरणो मे लगा दिये।

राणा–यह किस लिये?

भामा–क्षत्रियकुलभूपण इस तुच्छ भेट से मेवाड का उद्धार कीजिय।

इस प्रकार भामाशाह के धन से डूबती हुई मेवाड की नाव बच गई। सचमुच धनवान लाग दश की रक्षा भी कर सकते हें पर विवक हो तभी। अविवकी धनी देश का महान शत्रु हाता हे।

यह छहा युवक विवकहीन हें। धन ओर योवन की शक्ति उनके पास थी जब उनक हाथ म अधिकार की शक्ति आ गई तो उन का मदान्माद एक सा ग्यारह गुना वढ गया। पहल ता एक आर एक मिलकर 11 हुए ओर अधिकार की इकाई मिल जान स 111(एक सो ग्यारह) का अक बन गया।

देगे।

मगर देखना, यह धिक्कार कही तुम्हारे ऊपर ही न आ पडे। पर स्त्री पर इस प्रकार का अत्याचार करने वालो के प्रति राजा और प्रजा का कर्त्तव्य क्या होना चाहिये, जो इस तथ्य को नही जानते, उन्हे भीषण दु ख का सामना करना पडता है। कृष्ण अर्जुन से कहते है –

क्लैव्य मास्म गम पार्थ, नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्र हृदय–दौर्बल्य त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप।।

हे अर्जुन। तुम नपुसक मत बनो–यह हीजडापन तुम्हे नही शोभता। हृदय की तुच्छ दुर्बलता त्यागो और धर्मयुद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

मित्रो! अर्जुन के अपने अधिकार का त्याग कर देने पर कृष्ण इतनी फटकार बताते हैं और युद्ध के लिए उत्साहित करते हैं, तो परस्त्रीगामी–शील–धर्म का सहार करने वाले नीच पुरुषो की नीचता का नाश करने के विषय मे उनका क्या आदेश हो सकता है ? इस बात पर विचार कीजिये। वास्तव मे पर–स्त्री गामी पुरुष नीच से नीच हैं और देश मे पाप का खप्पर भरने वालो मे अगुआ हैं। ऐसे दुष्ट लोग अपना ही नाश नहीं करते वरन् दूसरो का भी सत्यानाश करते है। इन हत्यारो की रोमाचकारिणी करतूतो को सुनकर हृदय थर्रा उठता है। दुनिया की अधिकाश बीमारिया फैलाने वाले यही रोग–कीटाणु है।

शहर मे प्लेग के थोडे–से केस हो जाते हैं तो सारा शहर खलबला उठता है। सब लोग अपने–अपने बचाव का उपाय सोचने लगते हैं। पर मै कहता हू, प्लेग तो थोडे आदमियो का प्रकट रूप से नाश करता है, किन्तु ये व्यभिचारी गुप्त सक्रामक रोग के विषैले कीडे सारे देश को अपना शिकार बनाये हुए है। इनसे बचने का उपाय सब को और सब से पहले सोचना चाहिये। जो पुरुष इनसे बचेगा उनकी देवता भी सेवा करेगे।

प्रसग पाकर मैं अपनी बहनो से भी कुछ कह देना चाहता हू। बहनो! स्मरण रखना कि तुम जगत् की जननी हो ससार की शक्ति हो। तुम माता हो। जगत तुम्हारे सद्गुण–रूप सौरभ से सुरभित है। तुम्ही समाज की पवित्रता और उज्ज्वलता कायम रख सकती हो। तुम्हारी पूर्ववर्त्तिनी महासतिया किससे शोभा पाती थी? महाशीलव्रत से ही। आप सोना पहनती हैं सो इसे ताम्बा न बनाना। तुम्हारे शील पर तुम्हारे कुल–धर्म पर तुम्हारे जाति–धर्म पर किसी प्रकार का धब्बा न लगने पाये। तुम ऐरोगेरो के चक्कर मे मत पड जाना। मगर यह सब कब होगा? सादगी धारण करने पर। बनाव–सिगार करना

तुम्हारा काम नही है। शील के समान दिव्य आभूषण तुम्हारी शोभा बढाने के लिए काफी है। फिर तुम्हे और आभूषणो का लालच रखने की क्या आवश्यकता है? आत्मा की आभा बढाओ। मन को उज्ज्वल करो। हृदय को पवित्र भावनाओ से अलकृत करो। इस मास पिड के शरीर की बनावट मे क्या पडा है? शरीर का सिगार आत्मा को कलकित करता है। अगर तुम अपना सारा शरीर भी हीरो और पन्नो से मढ लोगी, तो भी तुम्हारी कोई पूजा नही करेगा। तुम्हारी सच्ची महत्ता और पूजा शील से होगी।

आपमे कई बहिने ऐसी निकलेगी जिन्होने लगातर अटठ्ाईस दिन तक उपवास–तपस्या की होगी पर सादगी और सयम को धारण करके देश जाति ओर धर्म को उन्नत करने वाली कितनी मिलेगी बहिनो! दिन रात मखमल के बिछौनो पर विश्राम करने वाली और अप्सराओ–सा शृगार करने वाली तुम्हारी कई बहिने ममता का त्याग करके फैशन के भूत से अपना पिड छुडा कर, आज अपने हाथो से या गरीबो के हाथो से बुनी हुई खादी धारण कर रही हें। ओ बडी–तपस्या करने वाली बहिनो! क्या आप धर्म के नाम पर सयम के नाम ओर देश के नाम पर अपनी यह लटपट कम न करोगी ?

में कह चुका हू कि राजगृह मे छह युवक साड की तरह मदोन्मत्त हो कर घूमते थे। प्रकति का नियम हे कि किसी–किसी पाप या पुण्य का फल सारी प्रजा को भुगतान पडता हे।

नगर–निवासियो ने ही अपनी मूर्खता के कारण उन्हे यह अधिकार दे दिया था कि वे चाह सो करे उन्हे किसी प्रकार का दड नही मिलेगा। परन्तु इन युवको के पाप का घडा भर गया था ओर फूटना ही चाहता था। इसलिय ये युवक अर्जुनमाली के बगीचे मे पहुचे। यह लोग अर्जुनमाली के पहुचने से पहल ही वहा जा धमके थे। जब अर्जुन ने अपनी स्त्री के साथ बगीचे मे प्रवेश किया तब इनम स एक की दृष्टि उसकी स्त्री पर पडी। उस देखते ही उसके हृदय म दुर्वासना उत्पन्न हुई ओर व किवाडा क पीछ छिप गये। जब अर्जुनमाली अपनी स्त्री सहित यक्ष को वन्दन करने लगा तभी उन्हान उस पकड कर बाध लिया। इन पापिया न अर्जुनमाली के सामन ही उसकी स्त्री का सतीत्व भग किया। स्त्री कुछ न बाली। जो स्त्री अपन सतीत्व का हीर न बढकर समझती ह उसकी आखा म तज का एसा प्रकृष्ट पुज विद्यमान रहता ह कि उसका सामना हात ही पापी की निबल आत्मा थर–थर कापन लगती ह। पर जब इस स्त्री न अपन सतीत्व का जरा भी मूल्य न समझा।

[illegible]

अपनी आखो के आगे अपनी पत्नी का यह व्यवहार देखकर अर्जुनमाली क्रोध से तिल मिला उठा। उसका समस्त शरीर गुस्से से जलने लगा। असह्य क्रोध से वह अपनी सिर धुनने लगा। पर वह विवश था–बन्धनो से जकडा हुआ।

यह घटना यक्ष के मन्दिर पर घटी थी। अर्जुनमाली इस यक्ष का बडा भक्त था। उसके पूर्वज भी यक्ष की पूजा करते आये थे। आज अर्जुनमाली ने यक्ष से यह प्रार्थना की – 'हे यक्ष! हम तुम्हे कई पीढियो से पूजते आये हैं। क्या उसका पतिफल मुझे कुछ भी नही मिलेगा? इस महान् सकट काल मे भी तुम मेरी मदद न करोगे? अगर अब काम न आये, तो कब आओगे?

अर्जुनमाली के हृदय की पुकार यक्ष ने सुनी। वह प्रकट हुआ और अर्जुन के शरीर मे प्रविष्ट हो गया। उसके बधन तडातड तडक गये। यक्ष की मूर्ति के हाथ मे एक बडा भारी मुद्गर था। अर्जुनमाली ने बन्धनमुक्त होते ही मुद्गर उठाया और उन छहो मदोन्मत्त युवको को और अपनी स्त्री को यमलोक पहुचा दिया। पाप का घडा फूट पडा।

शरीर मे यक्ष के प्रवेश से अर्जुनमाली मे अपार बल आ गया था। वह क्रोध से पागल हो उठा। जिस नगर निवासी पर उसकी दृष्टि पडती उसी को बिना मारे वह नहीं रहता था उसके मन मे यह सस्कार सुदृढ हो गया था कि इन युवको को साड बनाने वाले यह नगर निवासी ही हैं। यह लोग उन्हे आसमान पर न चढाते, तो उनकी क्या मजाल थी कि वे इतना अत्याचार अनाचार करते?

अर्जुन माली के इस राक्षसी व्यवहार की खबर बिजली की तरह सारे राजगृह मे फैल गई। राजा श्रेणिक के कानो तक भी यह समाचार पहुचा। श्रेणिक ने शहर के बाहर न निकलने की आज्ञा घोषित कर दी। यह आज्ञा भग करने पर अगर अर्जुन माली किसी का वध कर डाले तो हमारा उत्तरदायित्व नही है यह भी सर्व साधारण को सूचित कर दिया।

राजा की और नगर–निवासियो की कितनी कायरता है? इस कायरता ने ही उसके दु खो की वृद्धि की। अगर उन्होने कायरता न दिखाई होती और बहादुरी से योग्य प्रतिकार करते तो उन्हे इतनी मुसीबत नही भोगनी पडती। पर प्रकृति यहा तो कुछ और ही दिखाना चाहती थी। सुदर्शन की भक्ति का परिचय कराना था।

पाच महीने से कुछ अधिक समय तक अर्जुन माली नागरिको का कष्ट पहुचाता रहा। यह उनकी कायरता का प्रायश्चित्त था।

तुम्हारा काम नही हे। शील के समान दिव्य आभूषण तुम्हारी शोभा बढाने के लिए काफी है। फिर तुम्हे ओर आभूषणो का लालच रखने की क्या आवश्यकता है? आत्मा की आभा बढाओ। मन को उज्ज्वल करो। हृदय को पवित्र भावनाओ से अलकृत करो। इस मास पिड के शरीर की बनावट मे क्या पडा है? शरीर का सिगार आत्मा को कलकित करता है। अगर तुम अपना सारा शरीर भी हीरो और पन्नो से मढ लोगी, तो भी तुम्हारी कोई पूजा नही करेगा। तुम्हारी सच्ची महत्ता और पूजा शील से होगी।

आपमे कई बहिने ऐसी निकलेगी जिन्होने लगातर अटठ्ाईस दिन तक उपवास–तपस्या की होगी, पर सादगी और सयम को धारण करके देश जाति और धर्म को उन्नत करने वाली कितनी मिलेगी बहिनो! दिन रात मखमल के बिछौनो पर विश्राम करने वाली और अप्सराओ–सा शृगार करने वाली तुम्हारी कई बहिने ममता का त्याग करके फैशन के भूत से अपना पिड छुडा कर, आज अपने हाथो से या गरीबो के हाथो से बुनी हुई खादी धारण कर रही हैं। ओ बडी–तपस्या करने वाली बहिनो! क्या आप धर्म के नाम पर सयम के नाम और देश के नाम पर अपनी यह लटपट कम न करोगी ?

मैं कह चुका हू कि राजगृह मे छह युवक साड की तरह मदोन्मत्त हो कर घूमते थे। प्रकति का नियम है कि किसी–किसी पाप या पुण्य का फल सारी प्रजा को भुगतान पडता हे।

नगर–निवासियो ने ही अपनी मूर्खता के कारण उन्हे यह अधिकार दे दिया था कि वे चाहे सो करे उन्हे किसी प्रकार का दड नहीं मिलेगा। परन्तु इन युवको के पाप का घडा भर गया था और फूटना ही चाहता था। इसलिये ये युवक अर्जुनमाली के बगीचे मे पहुचे। यह लोग अर्जुनमाली के पहुचने से पहले ही वहा जा धमके थे। जब अर्जुन ने अपनी स्त्री के साथ बगीचे मे प्रवेश किया तब इनमे से एक की दृष्टि उसकी स्त्री पर पडी। उसे देखते ही उसके हृदय मे दुर्वासना उत्पन्न हुई ओर वे किवाडो के पीछे छिप गये। जव अर्जुनमाली अपनी स्त्री सहित यक्ष को वन्दन करने लगा तभी उन्होने उसे पकड कर बाध लिया। इन पापियो ने अर्जुनमाली के सामने ही उसकी स्त्री का सतीत्व भग किया। स्त्री कुछ न बोली। जो स्त्री अपने सतीत्व को हीरे से वढकर समझती है उसकी आखो मे तेज का ऐसा प्रकृष्ट पुज विद्यमान रहता है कि उसका सामना होते ही पापी की निर्वल आत्मा थर–थर कापने लगती ह। पर खेद इस स्त्री ने अपने सतीत्व का जरा भी मूल्य न समझा।

अपनी आखो के आगे अपनी पत्नी का यह व्यवहार देखकर अर्जुनमाली क्रोध से तिल मिला उठा। उसका समस्त शरीर गुस्से से जलने लगा। असह्य क्रोध से वह अपनी सिर धुनने लगा। पर वह विवश था–बन्धनो से जकडा हुआ।

यह घटना यक्ष के मन्दिर पर घटी थी। अर्जुनमाली इस यक्ष का बडा भक्त था। उसके पूर्वज भी यक्ष की पूजा करते आये थे। आज अर्जुनमाली ने यक्ष से यह प्रार्थना की – 'हे यक्ष! हम तुम्हे कई पीढियो से पूजते आये हैं। क्या उसका प्रतिफल मुझे कुछ भी नही मिलेगा? इस महान् सकट काल मे भी तुम मेरी मदद न करोगे? अगर अब काम न आये, तो कब आओगे?

अर्जुनमाली के हृदय की पुकार यक्ष ने सुनी। वह प्रकट हुआ और अर्जुन के शरीर मे प्रविष्ट हो गया। उसके बधन तडातड तडक गये। यक्ष की मूर्ति के हाथ मे एक बडा भारी मुद्‌गर था। अर्जुनमाली ने बन्धनमुक्त होते ही मुद्‌गर उठाया और उन छहो मदोन्मत्त युवको को और अपनी स्त्री को यमलोक पहुचा दिया। पाप का घडा फूट पडा।

शरीर मे यक्ष के प्रवेश से अर्जुनमाली मे अपार बल आ गया था। वह क्रोध से पागल हो उठा। जिस नगर निवासी पर उसकी दृष्टि पडती उसी को बिना मारे वह नही रहता था उसके मन मे यह सस्कार सुदृढ हो गया था कि इन युवको को साड बनाने वाले यह नगर निवासी ही हैं। यह लोग उन्हे आसमान पर न चढाते तो उनकी क्या मजाल थी कि वे इतना अत्याचार अनाचार करते?

अर्जुन माली के इस राक्षसी व्यवहार की खबर बिजली की तरह सारे राजगृह मे फैल गई। राजा श्रेणिक के कानो तक भी यह समाचार पहुचा। श्रेणिक ने शहर के बाहर न निकलने की आज्ञा घोषित कर दी। यह आज्ञा भग करने पर अगर अर्जुन माली किसी का वध कर डाले तो हमारा उत्तरदायित्व नही है यह भी सर्व साधारण को सचित कर दिया।

बाहर एक उद्यान मे पधारे। नगर–निवासियो ने भगवान् के पधारने का वृत्तात सुना, पर अर्जुनमाली के भय से कोई बाहर न निकला।

सुदर्शन भगवान् का अनन्य भक्त था। उसने भगवान् के पधारने का समाचार सुना। उसे बिना भगवान् के दर्शन किये चैन नही पडा। वह प्रभु दर्शन के लिए माता–पिता की आज्ञा से जाना चाहता था। माता–पिता ने उसे बहुत कुछ समझाया–'बेटा, तेरे न जाने से कुछ हानि न होगी। तेरा वहा काम क्या अटका है? नगर की चिरैया बाहर नही जाती, तो तू ही क्यो जाता हे?

लेकिन सुदर्शन डरपोक नहीं था। वह अपने सकल्प पर दृढ रहा और प्रभु के दर्शन के निमित्त घर से निकल पडा। नगर की हवेलियो की छतो पर बैठे हुए नर– नारियो के समूह सुदर्शन को देख रहे थे। उनमे से कोई उसे जाने से रोकता था और कोई कहता था–देखो इसे मौत लिये जा रही है। शहर का कोई बच्चा तो बाहर नही निकलता और यह भगतराज बनने चले हैं। दूसरा कोई कहता–'अजी जाने भी दो, हमारा क्या लिया? बच्चू जाते हो पर लौट कर_नही आने के । अर्जुन माली देखेगा तो मुद्गर की मार से चटनी बना देगा तब पता चलेगा भक्ति कैसी होती है? भगवान् तो ज्ञानी हैं। वे घट–घट की बात जानते हैं। घर मे बैठा–बैठा वन्दना कर लेता तो क्या वे स्वीकार न करते?

सुदर्शन सब बाते सुनी–अनसुनी करता हुआ आगे बढता चला जाता था। उसने क्रमश नगर को पार किया और बाहर हो गया। नगर के बाहर अर्जुन मौजूद था। महा–विकराल रूप, लाल–लाल आखे और मुद्गर हाथ मे पकडे हुए वह तैयार था। उसका रूप इतना डरावना था कि नजर पडते ही धैर्यवानो की छाती थरथरा उठे। परन्तु वीर सुदर्शन निर्भय होकर आगे बढते चला जाता था।

अर्जुन माली ने दूर से देखा तो उसकी प्रसन्नता का पार न रहा। अब मिला हे शिकार! आने दू कुछ ओर निकट, तब अपनी प्यास बुझाऊगा।

सुदर्शन अपनी मस्तानी चाल से चलता जा रहा था। उसकी चाल देखकर अर्जुन माली सोचने लगा–'इसकी चाल मे इतना घमड छिपा है! जान पडता हे बडा अकडबाज है! अरे इसने मुझे देख लिया हे। फिर भी इसके पैर ढीले नही पडे। इसके चेहरे पर भय का भाव ही नही दिखाई देता अ अब इतने निकट आ गया है–फिर भी वही चाल वही अकड वही मस्ती!

अब अर्जुन से न रहा गया। उसने ललकार कहा– ओ जाने वाले!

उत्तर मे सुदर्शन कुछ न बोला। वह मौन था।

अर्जुनमाली मन ही मन विचार करने लगा–'इसकी मुखमुद्रा पर जरा भी भय आभास नही हैं! पहले तो कोई ऐसा नही मिला। जो सामने आते थे वही गिड–गिडा कर प्राणो की भीख मागने लगते थे, पर यह तो अद्‌भुत व्यक्ति है!

अर्जुन माली ने रास्ता रोक दिया।

सुदर्शन ने भीषण सकट आया देखा तो उसी समय भूमि का प्रमार्जन किया आसन बिछाया और भगवान् को वन्दना करके 18 पापो का परित्याग किया उसने प्रतिज्ञा की–यदि मै इस सकट से बच जाऊगा तो मेरी जैसी पूर्व क्रिया है वैसी ही रखूगा। इस सकट से पार न हो सका तो अब से महाव्रत धारण करता हू।

सुने री मैने निर्बल के बल राम

ससार मे निर्बलो के सच्चे बल राम ही है। इस बल के सामने तलवार का बल नगण्य–नाचीज बन जाता है।

सुदर्शन ने अहकार त्याग दिया। यह पाषाण–मूर्ति की भाति अचल होकर ध्यान मे बैठ गया। यह देख कर अर्जुनमाली और भी क्रुद्ध हो गया। प्रहार करने के लिए उसने अपना मुद्‌गर ऊपर उठाया।

अनेक नगरवासी अपने मकानो की छतो से यह दृश्य देख रहे थे। उन मे जो प्रभु के भक्त थे वे सोच रहे थे–'प्रभो! सत्य की रक्षा करना। सुदर्शन सत्य भक्त है सत्याग्रही है। इस समय केवल आपका ही सहारा है। कभी ऐसा न हो कि आपके भक्त की पत जाये!

अर्जुनमाली ने मुद्गर उठाया। वह ऊपर उठ तो गया मगर नीचे न आ सका। अर्जुन ने पूरी ताकत लगाई पर मुद्गर स्तम्भित हो गया था। सुदर्शन पर प्रहार न हो सका। अर्जुन तिलमिला उठा था पर विवश था।

इधर सुदर्शन की तरफ देखो। उसकी आखो से अमृत बरस रहा हे।

अर्जुनमाली ने तीन बार पूरी शक्ति लगाई। उसके हाथ नीचे की ओर रच मात्र नहीं झुकते थे। यह अद्भुत अवस्था देख कर अर्जुनमाली हैरान था। वह सम्पूर्ण शक्ति लगा चुका था पर तनिक भी सफलता न मिली। अन्त मे वह परास्त हो गया। उसने सुदर्शन की ओर कातर दृष्टि से देखा। सुदर्शन ने भी अपनी सुधामयी दृष्टि से उसे देखा। जेसे ही उस पर सुदर्शन की नजर पडी, त्यो ही यक्ष शरीर से निकल कर भाग गया। अर्जुनमाली असक्त होकर धडाम से धरती पर गिर पडा।

अर्जुनमाली की यह अवस्था देख सुदर्शन ने अपनी निश्चलता भग की। वह उठा ओर अर्जुन के पास आकर उसके शरीर पर स्नेह पूर्ण हाथ फेर कर बोला—भाई, तुम्हे कष्ट हो रहा हे? जी अच्छा तो है न ?

अर्जुन—तुम कौन हो ?

सुदर्शन—मैं श्रमणोपासक हू।

साधुओ ओर साध्वियो, आपके उपासक शिष्य भी पहले केसे होते थे? आपके शिष्यो मे ऐसी शक्ति हो तो आप मे कितनी होनी चाहिये? आज हम साधु इतना उपदेश देते हें पर जितनी सफलता मिलनी चाहिये—श्रोताओ पर जितना गहरा प्रभाव पडना चाहिये उतनी सफलता नहीं मिलती—उतना प्रभाव पडता दृष्टिगोचर नही होता। यह हमारे आत्मिक बल की न्यूनता हे। जिस दिन हममे विशिष्ट आत्मज्योति प्रकट हो जाएगी उस दिन हमारे श्रोता शिष्य हमारे इशारे से काम करने लगेगे। फिर इतने लम्बे भाषण की आवश्यकता ही नही रहेगी।

मित्रो! सुदर्शन ने अपने राम पर भरोसा रखा इसी कारण उसे लोकोत्तर विजय मिली। आप सुदेव ओर सुगुरु पर विश्वास करेगे तो आपकी आत्मा मे भी ऐसी ही दिव्य शक्ति फूट पडेगी।

कहते लज्जा आती है कि आप भगवान् महावीर के शिष्य होकर कुदेव और कुगुरु को पूजते फिरते हें! आप भेरा ओर भोपो के आगे भटकत आर सिर रगडते ह। ए राने वालो! कहीं राने से भी वेटा मिलता हे? तुम महावीर के शिष्य हो तुम म वीरता होनी चाहिये। उस वीरता की जगह तुमम नपुसकता आ गई है। क्या इसी नपुसकता क वल पर धर्म को दिपाओगे?

तुम अहिसा के परम सिद्धात को मानते हो फिर भी जहा बकरे काटे जाते हैं अन्य पशुओ का क्रूरतापूर्वक वध किया जाता है मदिरा की बोतले उडेली जाती है वहा जाकर शीश झुकाते हो? शर्म!

गीता मे श्री कृष्ण ने कहा है– जो देवताओ को पूजते है वे देवो के पास और भूतो को पूजने वाले भूतो के पास जाते हे।

सुदर्शन को सच्चा उपदेश लगा था। उसने देव की आराधना की थी और अर्जुनमाली ने यक्ष की। यक्ष की शक्ति तामसी होती है दु खजनक होती है। इसके विपरीत देव की शक्ति सात्विक शान्त और सुखप्रद होती है।

अर्जुनमाली की शक्ति सुदर्शन की शक्ति के सामने परास्त हो गई। जनता यह अद्भुत चमत्कार देखकर चकित रह गई। भविष्यवक्ताओ के मुख मलीन से हो गये और धर्म–निष्ठ पुरुषो के प्रमोद का पार न रहा।

जब भक्तवर सुदर्शन भगवान् के दर्शन करने जाने लगा तो अर्जुनमाली ने भी दर्शनार्थ चलने की उत्सुकता प्रकट की। सुदर्शन ने प्रसन्नतापूर्वक उसे अपने साथ लिया। इस अनूठी जोडी को देखकर लोग दातो तले अगुली दबाने लगे। किसी–किसी ने कहा–हम तो समझ रहे थे सुदर्शन चूर–चूर हो जायेगा पर अर्जुनमाली तो उसका शिष्य बन गया है!

मित्रो! यह वृत्तान्त सिर्फ सुनने के लिए नही है। इसे तुम्हे भी अपने जीवन मे उतारना है। सुदर्शन की भाति पापी मनुष्य को अपनाना सीखो। पापी के पाप का क्षय करने का यही उपाय है। पापी से घृणा करके उसे अलग रखोगे तो उसके पाप का अन्त आना कठिन है। अगर उसे आत्मीय भाव से ग्रहण करोगे तो उसका सुधार होना सरल होगा। चाहे कोई ढेढ हो चमार हो कसाई हो कैसा भी पापी क्यो न हो उसे सम्मानपूर्वक धर्मोपदेश श्रवण करने के लिए उत्साहित करना चाहिए। सुदर्शन के चरित्र से पतितो को दुरदुराने का त्याग करना सीखना चाहिये।

'हाय! इसी दुष्ट ने मेरे पुत्र का घात किया था। इसी प्रकार विभिन्न लोग अपने–अपने सम्बन्धियों का स्मरण कर उसकी भर्त्सना करने लगे। किसी–किसी ने तो उस पर प्रहार भी किये। किसी ने थप्पड मारा, किसी ने घूसा जमाया किसी ने लकडी लगाई, किसी ने केवल गालिया देकर ही सन्तोष कर लिया।

मगर अर्जुनमाली पर इन सब व्यवहारो का मानो कुछ भी असर नहीं पड रहा था। वह पहले की ही भाति शात और गम्भीर था। जब कोई उसके शरीर पर प्रहार करता तो वह उस दड को अत्यल्प समझता और सोचता–मैंने असके सबधी का वध किया था। उसका यह बदला तो बहुत थोडा ले रहा है! यह मुझे सस्ते मे निबटा रहे हैं।

अर्जुनमाली ने इस उत्कृष्ट क्षमा–भावना के साथ शरीर का सदा के लिए त्याग किया और सिद्ध अवस्था प्राप्त की।

मित्रो! इस कथानक को सुन कर आप छह युवको और सातवीं स्त्री के वध को ही पाप समझते होगे। भला पाप को कोन पाप न समझेगा। पर महाभारत मे मैंने देखा है कि जो पुरुष शक्ति होते हुए भी अपने सामने अपराध होने देता हे जो अपराध का प्रतिकार नहीं करता वह अपराध करने वाले के समान ही पापी है।

मैं यह कह रहा था कि शत्रु को तोप–तलवार से मारने का प्रयत्न करना निरर्थक हे। इससे शत्रुता की वृद्धि होती हे। शत्रु को मारने का अमोघ उपाय कुछ और हे। वह उपाय क्या हे यह बात सुदर्शन की कथा से आप समझ ही गये होगे। सुदर्शन जब घर से निकला तो उसने समझ लिया था कि शरीर स्वभावत नाशशील हे। इसका नाश होना ध्रुव ही हे। ऐसी अवस्था मे यदि भगवान् की सेवा के लिए सत्य ओर धर्म की महिमा प्रकट करने के लिए इसका उत्सर्ग करना पडे तो इससे उत्तम इस शरीर का ओर क्या उपयोग हो सकता हे ? वस्तु का नष्ट होना जब निश्चित हो तो उसका वहा नाश होने देना चाहिए जहा उत्तम बदला मिलता हे। किवदन्ती प्रसिद्ध हे कि–

वर्षा ऋतु मे एक बार अकबर बादशाह अपने महल मे सो रहा था। वर्षा की अधिकता के कारण यमुना नदी मे जोर का पूर आया। यमुना की घर्र–घर्र ध्वनि से बादशाह की नीद टूट गई। बादशाह ने पहरेदार को बुला कर पूछा–यमुना क्यो रो रही हे?

पहरेदार–जहापनाह इतनी बुद्धि मुझ मे होती तो में सिपाही क्यो बना रहता? वजीर न बन जाता?

बादशाह–हा ठीक हे। जाकर वजीर को बुला लाओ।

पहरेदार वजीर को बुलाने गया। वजीर सो रहे थे। सिपाही ने आवाज लगाई। वजीर की नीद खुली। उसने पूछा—क्या मामला है?

सिपाही—जहापनाह आपको याद फरमा रहे हैं ?

वजीर—क्यो? इस वक्त किसलिये?

सिपाही ने सारा वृत्तान्त उसे बता दिया। रात का समय था। वर्षा हो रही थी। घोर अन्धकार छाया हुआ था। पर वजीर विवश थे। बादशाह की हुक्म—उदूली कैसे की जा सकती थी? अतएव इच्छा न होने पर भी उसे बादशाह के पास जाना पडा।

यथोचित शिष्टाचार के पश्चात् वजीर ने अपने को बुलवाने का कारण पूछा। बादशाह ने वजीर से वही प्रश्न पूछा—यमुना नदी क्यो रो रही है?

वजीर ने उत्तर दिया—जहापनाह! यमुना हिन्दुस्तान की नदी है। हिन्दुस्तान की नदी होने के कारण वह भी हिन्दुओ की रीति—भाति का पालन करती है। हिन्दुओ मे रिवाज है कि लडकी जब पीहर से अपने ससुराल जाती है तब रोती है। यमुना भी अपने पीहर से ससुराल जा रही है इसलिए रोती जा रही है। इसका पीहर वह हिमालय पहाड है जहा से इसका उद्गम हुआ और ससुराल समुद्र है।

वजीर की यह व्याख्या बादशाह को पसन्द आई। उसने वजीर को जाने की इजाजत दी।

वजीर घर जाने के लिए रवाना हुआ। रास्ते मे किसी घर मे एक बूढा जोर—जोर से रो रहा था। वजीर ने उसका रोना सुन कर सोचा नदी का रोना और बादशाह का मुझे बुलाना इसी बूढे के निमित्त हुआ जान पडता है। अगर मैने इसका रोना सुन करके भी इसका दुख दूर न किया तो मेरी वजारत को और आदमियत को धिक्कार है।

वजीर ने बूढे से पूछा—चाचा रात को रोते क्यो थे? सच बताओ।

बूढे ने जबाब दिया—हुजूर में कारीगर हू। जवानी मे मैं रफू करने का काम करता था ओर काफी कमा लेता था। पर जो कमाता था सब खर्च कर देता था बचत नही करता था। उस समय बचत की आवश्यकता ही महसूस नही होती थी। जवान लडका था, सोचा कि बुढापे मे वह कमाएगा और मैं बेठा—बैठा खाऊगा। इस प्रकार बेफिक्री मे अपना समय गुजार रहा था कि अचानक मेरा जवान बेटा चल बसा। मैं पापी बेठा रहा। अब हाथ पेर थक चुके हैं। काम होता नही ओर गुजर करने को फूटी कौडी पास मे नही है। जिदगी मे कभी भीख नहीं मागी—इसी मुसीबत के मारे रात को रोना आ गया था।

मित्रो! किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति पर जब आर्थिक सकट आकर पडता है तब उस पर क्या बीतती हे, इस घटना से यह जाना जा सकता हे।

बूढे की कैफियत सुन कर वजीर ने कहा—तुम अब भी रफू करना जानते हो न?

बूढा—जी हा जानता क्यो नहीं, पर हाथ कापता है।

वजीर—कोई बात नहीं। मैंने तुम्हे अपना चाचा बना लिया है। अब रोने का कोई सबब नहीं हे।

यह कह कर वजीर ने बूढे को कुछ इनाम देकर विदा किया।

कई लोगो मे यह प्रथा है कि जिसके घर कोई मर जाता हे उसके यहा जीमने वेठते हें ओर जीमनवार एक ऐसी प्रथा बन गई है कि उसे किये विना जाति मे प्रतिष्ठा कायम नहीं रह सकती। जमीनवार मे बेठकर भोज्य सामग्री की प्रशसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक भोजन किया जाता हे। क्या यह मृत्यु का अनुमोदन करना नहीं हे ? इस विषय मे भी एक दृष्टान्त हे।

एक बाबा जी थे। वे भीख माग कर खाया करते थे। एक दिन वे भीख मागने के लिए निकले। किसी गृहस्थ ने उनसे निवेदन किया—बाबाजी आज यही वेठ कर भोजन कर लीजिये।

बाबा जी भोजन करने बैठ गये। गृहस्थ ने बडे प्रेम से खीर मालपुवा आदि खिलाए। बाबाजी जीमकर बहुत प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन्होने इस गृहस्थ से पूछा—रोज मैं घर—घर मागता फिरता था तब भी पेट नहीं भरता था। आज तुम अकेले ने ही भर पेट जिमा दिया इसका क्या कारण हे ?

गृहस्थ ने कहा—महाराज गाव के पटेल का साप ने डस लिया था। वह मर गया। उसके उपलक्ष्य म आज जाति का जीमनवार था इसलिये आपको भी जिमा दिया।

बाबाजी बोले–इसमे तुम्हारा क्या अहसान है ?

बलिहारी उस परड की पटेल को खाया।
जाति भी जीमी और हमको भी जिमाया।

मृतक भोजन करने वाले बाबाजी की तरह क्या मृत्यु का अनुमोदन नही करते है? मृतक–भोज जीमनेवाले अनेक लोग व्यक्त या अव्यक्त रूप से यह मानते ही होगे कि–कोई मरे और मुझे भोजन मिले।

हा तो वजीर ने उस बूढे को रुपये देते हुए कहा–मैंने तुम्हे अपना चाचा बना लिया है। अब चिन्ता–फिक्र करना नही।

बूढे ने कहा–जन्म–भर मैने कभी मागा नही है, न किसी का मुफ्त का खाया है। अगर मुझे कुछ काम मिल जाए और फिर वह रुपये मिले तो ठीक रहेगा।

वजीर ने कहा– अच्छा तुम्हे काम भी देगे। लो यह मिश्री का टुकडा ले जाओ। इसे हीरा बनाकर ले आना। दिखने मे वह बिलकुल हीरा है मगर पानी लगने पर गल जाये।

बूढे ने बहुत ठीक कह कर विदा ली।

अचानक सहायता मिल जाने से बूढे मे कुछ उत्साह आ गया था और कारीगर तो था ही। थोडे दिनो बाद मिश्री के टुकडो को वह हीरा बना कर एक सुन्दर मखमल की डिब्बी मे सजाकर वजीर के पास आया। वजीर हीरे को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने कारीगर को बढिया–बढिया कपडे देकर कहा–तू यह कपडे पहन कर हीरा लेकर बादशाह सलामत के दरबार मे हाजिर होना।

वजीर के आदेशानुसार कारीगर जोहरी बन गया। वह नकली हीरा लेकर बादशाह के समक्ष उपस्थित हुआ।

वजीर ने कारीगर को रवाना किया ओर हीरा पास रख लिया। वजीर ने सोचा—अगर जौहरी आये तो सारा गुड गोबर हो जायगा। फिर यह चालाकी न चल सकेगी। यह सोचकर उसने पहले ही उचित व्यवस्था करने का निश्चय कर लिया।

बादशाह जब दरबार मे उठकर नहाने गया और नहाने लगा तब वजीर उसके पास पहुचा। वजीर ने कहा—हुजूर, बेहतर होगा आप ही अपने पास इसे रखे और जौहरियो को दिखला ले।

बादशाह ने वह हीरा ले लिया और वहीं कहीं रख लिया। वह नहाने लगा। बादशाह को क्या पता कि हीरा मिश्री का है और वह पानी लगने से गल जाएगा। वह नहाता रहा और पानी हीरे पर पडता रहा। नतीजा यह हुआ कि हीरा गल गया और बादशाह को पता ही न चला।

बादशाह स्नान करके अन्यत्र चला गया। उसे हीरे का खयाल न रहा। थोडी देर बाद जब उसे हीरा याद आया तो उसने स्नान—गृह मे तलाश करवाया, पर हीरा नदारद था!

बादशाह ने नौकरो को डाटा—डपटा। उनकी चमडी उधडवा लेने की धमकी दी। कोडे लगवाने का डर दिखाया। पर नतीजा कुछ न निकला। बेचारे नौकर हीरे के विषय मे क्या कहते? जब हीरा न मिला तो बादशाह ने वजीर को बुलवा कर पूछा—वजीर तुम मुझे हीरा दे गए थे न।

वजीर—जी हा जहापनाह मैं आपके हाथ मे दे गया था और आपने स्नानघर मे अपने पास ही रख लिया था।

बादशाह—मुझे ही यही याद पडता है। तुमने मुझे हीरा दिया और मैंने वही रख दिया। मैं नहाने लगा। नहाने के बाद में उसका खयाल भूल गया ओर वहा से चला आया। अब तलाश करवाया तो वह गायब है। सिवाय नौकरो के स्नान—घर मे कोई जाता नहीं हे। साफ हे कि इन्ही मे से किसी की बदमाशी है। इनकी मरम्मत करो और हीरा निकलवाओ।

वजीर ने कहा—हीरा खाने की चीज तो हे नहीं जिसे कोई खा जायगा। अगर कोई खा जायेगा तो मर जायेगा। इसके लिए मार—पीट करने से आपकी बदनामी होगी। वह परदेशी व्यापारी हे। सुनेगा तो देश—देशान्तर मे कहता फिरेगा कि इतने बडे बादशाह हीरा भी नही सभाल सके इतनी बडी सल्तनत को क्या खाक सम्भाल सकेंगे! इससे आपकी बेनामी मे धब्बा लगेगा। हीरा तो गया ही अब इज्जत क्यो जाने दी जाये? मेरी राय मे तो चुप रहना ही बेहतर हे।

वजीर की बात बादशाह समझ गया। उसने कहा—अच्छा इनकी तलाशी तो ले लो।

वजीर जानता था—हीरा पानी बन गया है। उसने इधर—उधर की तलाशी ली और जाकर बादशाह से बोला—अन्नदाता बहुत तलाश करने पर भी हीरे का पता नही चला। ऐसी बडी और बढिया चीज पर फरिश्ते भी आशिक हो जाया करते हैं। मुमकिन है कोई फरिश्ता ही उसे उडा ले गया हो। खैर हीरा गया सो गया। अब नौकरो को सख्त हिदायत दी जावे कि उसके गुम होने की खबर बाहर न पहुच सके। बादशाह की स्वीकृति से वजीर ने नौकरो को बुला कर कहा— हीरा तुम्ही लोगो मे गायब हुआ है। फिर भी तुम्हे जहापनाह माफी बख्शते हैं। मगर याद रखना हीरा गायब होने की खबर अगर बाहर गई तो सारा कसूर तुम्हारे सिर पर मढा जायेगा और तुम्हारी खाल उतरवा ली जाएगी।

सभी नौकर मन—ही—मन वजीर के प्रति कृतज्ञ हुए कि वजीर साहब ने आज हम लोगो को बचा लिया। इधर बादशाह भी वजीर के प्रति उपकृतज्ञ थे कि हीरा तो चला ही गया था वजीर ने बदनाम होने से बचा लिया। यह अच्छा हुआ।

इसके बाद बादशाह ने कहा—हीरा तो गया अब व्यापारी आएगा तो क्या करना होगा?

वजीर—व्यापारी आपको हीरा दे गया था। वह तो अपने हीरे की कीमत तो चाहेगा ही और उसे मिलनी भी चाहिये।

बादशाह— ठीक है। उसे पूरी कीमत मिलनी चाहिए।

दूसरे दिन जौहरी बना हुआ कारीगर फिर दरबार मे आया। वजीर ने उससे कहा— तुम्हारा हीरा बादशाह सलामत को पसन्द आ गया है। अपने [illegible]

कारीगर फिर वजीर के घर पहुचा। उसने वजीर से कहा—इन रुपयो का क्या किया जाये?

वजीर—यह रुपया तुम्हारी कारीगरी से मिला है, सो तुम्हीं रखो। दया से मिला है। अन्त मे वजीर और कारीगर ने आपस मे कोई समझौता किया और रुपया रख लिया गया।

यह दृष्टान्त है। पुण्य की कारीगरी से बना हुआ यह मनुष्य शरीर मिश्री के हीरे के समान है। यह शरीर मिश्री के समान ही कच्चा हे—जरा से पानी से गल जाने वाला। चक्रवर्ती और वासुदेवो के शरीर भी गल गये तो दूसरो के शरीरो की क्या चलाई है? इसका गलना तो निश्चित है ही, लेकिन किसी महात्मारूपी वजीर के द्वारा, परमात्मा की सेवा मे इसे समर्पित कर दिया जाये और वहीं गले तो कैसा अच्छा हो! अगर यह शरीर तप और शील की आराधना मे काम आये तो इससे अच्छा और क्या उपयोग हो सकता है? अतएव इस बात का विचार करो जो वस्तु तुम्हे प्राप्त हुई है उसका सदुपयोग किस प्रकार किया जा सकता है।

सुदर्शन सेठ अर्जुनमाली के सामने गये और शरीर का उत्सर्ग करके (बोसरा कर) खडे हो गये। उनके हृदय मे यह भावना उत्पन्न नहीं हुई कि अर्जुनमाली मेरा शत्रु है। उन्होने उसे मित्र ही समझा।

गजसुकुमार मुनि ने मोक्ष चाहा था—उन्होने जीवन की आकाक्षा त्याग दी थी, इसलिये उनके मस्तक पर रखी हुई आग शान्त नही हुई। मगर सुदर्शन ने जीना चाहा था, अतएव मुद्गर स्तम्भित हो गया। मैने कहा था—

खलदल प्रबल दुष्ट अति दारुण, जो चौतरफ करे घेरो।
तदपि कृपा तुम्हारी प्रभुजी दोय प्रकटे चेरो।।

सुदर्शन सेठ के लिए अर्जुन से बढ कर इस समय कौन शत्रु था? लेकिन परमात्मा की कृपा से वह शत्रुता त्याग कर मित्र बन गया। परमात्मा का बल सहायता करने के लिए वहा कैसे आया? परमात्मा—बल से शत्रु का नाश करने का परिणाम क्या हुआ? न तो शत्रु ही रहा ओर न शत्रुता ही रही। लेकिन परिणाम का बल तभी मिलता हे जब मनुष्य अपने बल का अहकार त्याग देता है। अगर आप अपने बल को छोड कर परमात्मा के अमित ओर अद्भुत बल पर विश्वास करेगे तो आपका कल्याण होगा।

(महावीर—भवन देहली— ता 15 9 31)

9. महापर्व संवत्सरी

विमल जणेसर सेविए, थारी बुद्धि निर्मल हो जाए रे।
जीवा! विषय–विकार ने तु मोहनी कर्म खपाय रे।।
जीव! विमल जिणेसर सेविये ।। जीवा ।।

आज सवत्सरी का पवित्र दिन है। इस उत्कृष्ट ओर लोकोत्तर पर्व के विषय मे शास्त्र मे कहा गया है कि यह पर्व आप ही नहीं चल पडा हे परन्तु भगवान महावीर ने अपने ज्ञान से ही निकाला है। समवायाग सूत्र मे कहा गया है–

समणे भगव महावीरे बासाण सवीसइराइमासे वइक्कते सत्तरिएहि राइदिएहि ऐसेहि वासावास पज्जोसवेइ।।

श्रमण भगवान महावीर ने चातुर्मास के एक महीना आर बीस दिन व्यतीत हो जाने पर ओर सत्तर दिन शेष रहने पर अर्थात आषाढी पूर्णिमा के एक मास ओर बीस दिवस पश्चात पर्युषण नामक पर्व की आराधना की।

जो श्रमण भगवान महावीर छद्मस्थ अवस्था मे चार ज्ञानो ओर [illegible] प्राप्त हो जाने पर अनन्त ज्ञान के धनी थे उन्होन चातुर्मास के एक मास बीस दिवस पश्चात जो पर्व निश्चित किया ह उस पर्व की कितनी महिमा [illegible] साधारण ज्योतिषी भी लौकिक व्यवहार से मुहूर्त बताता है आर [illegible] है कि इस मुहूर्त मे यह काम करने से सिद्धि होगी तब भगवान

कल्प–सूत्र मे लिखा हे कि चातुर्मास के 50 दिन वीत जाने पर ओर 70 दिन शेष रहने पर भगवान् ने सवत्सरी पर्व की आराधना की। जिस तरह और जिस समय भगवान् ने सवत्सरी पर्व की आराधना की थी, उसी तरह ओर उसी समय गोतम स्वामी ने भी की और गौतम स्वामी की ही तरह सुधर्मा स्वामी, जम्बू स्वामी आदि महापुरुषो ने भी की। आज भगवान् का सघ भी उसी परम्परागत रीति से सवत्सरी पर्व की आराधना करता है। जहा चतुर्विध सघ मिल कर इस पर्व की आराधना करता हे, वहा वालो को वे लोग धन्यवाद देते और उनका अहोभाग्य समझते हैं जहा चतुर्विध सघ नहीं होता। वे लोग भी धन्यवाद के पात्र हैं जो सवत्सरी पर्व की, भगवान् महावीर स्वामी के आदेशानुसार आराधना करके सब जीवो को शान्ति पहुचाते हैं।

सम्पूर्ण सघ सवत्सरी पर्व की आराधना जिस तरह करता आया है जिस परम्परा से इसकी आराधना होती आई है उसी तरह और उसी परम्परा से इसकी आराधना करना उचित है। इस सम्प्रदाय मे जिसके आचार्य पद का भार मेरे सिर पर है पूज्य श्री श्रीलालजी महाराज ने जिस रीति से इस पर्व की आराधना की हे, उसी रीति से हम भी इसकी आराधना करते हैं।

वाईस सम्प्रदाय मे किचित् मतभेद के कारण कुछ काल से सवत्सरी भी आगे–पीछे होती थी। एक सम्प्रदाय कभी करता था तो दूसरा सम्प्रदाय कभी। लेकिन स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस के उद्योग से तथा सब महात्माओ की एकता की दृष्टि होने से एकता को यह महान् लाभ हुआ हे कि सम्पूर्ण स्थानकवासी सम्प्रदाय मे एक ही दिन सवत्सरी पर्व की आराधना होने लगी हे। एक ही समुदाय के विभिन्न वर्गो मे पर्व की एकता न हो और भिन्न–भिन्न समयो मे उसकी आराधना की जाये तो सम्प्रदाय मे मेल–जोल और शान्ति न रहना स्वाभाविक हे। एक वर्ग कहता हे हमारी सवत्सरी सच्ची हे ओरो की झूठी हे ओर दूसरे वर्ग वाला कहता हे नही सच्ची तो हमारी है। इस अवस्था मे बहुत कम ऐसे उदार पुरुष निकलेगे जो जीत व्यवहार से सभी की सवत्सरी सच्ची माने। अपने यहा भी इसी प्रकार की वाते होती थी। प्राय सभी अपनी–अपनी सवत्सरी को सच्ची और दूसरो की सवत्सरी को झूठी वताते थे। इससे समाज मे क्लेश बना रहता था। लेकिन कान्फ्रेस के सदस्यो के उद्याग से क्लेश का मूल नष्ट हो गया ओर सभी वर्ग एक ही समय सवत्सरी मनाने लग। सवत्सरी के लिए क्लश उत्पन्न होने का कारण मिट गया। अतएव जिन लोगो ने सवत्सरी की एकता के लिए उद्योग किया हे जिन्हान शिष्ट–मडल (डप्यूटशन) मे सम्मिलित हाकर महात्माओ की सना मे

उपस्थित होकर इसके लिए प्रयत्न किया है वे सब सज्जन सघ की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं। पजाब मे भी दो सवत्सरी होने से क्लेश मे वृद्धि हो रही थी। इस वर्ष वहा भी शान्ति का सचार हुआ है। जो एकता इस वर्ष हुई है, वह स्थायी रहे सदा के लिए बनी रहे यही सबकी भावना और प्रार्थना होनी चाहिये।

सघ की एकता के इस पवित्र कार्य मे विघ्न डालना घोर पाप के बध का कारण है। भगवान् के सघ मे अनेकता उत्पन्न करना सबसे बडा पाप बताया है और सभी पाप इस पाप से छोटे हैं। चतुर्थ–व्रत खडित होने पर नवीन दीक्षा देकर साधु को शुद्ध किया जा सकता है लेकिन सघ की शाति और एकता भग करके अशाति और अनैक्य फैलाने वाला–सघ को छिन्न–भिन्न करने वाला दशवे प्रायश्चित का अधिकारी माना गया है। इससे यह स्पष्ट है कि सघ को छिन्न–भिन्न करना घोर पाप का कारण है। जो लोग अपना बडप्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके सघ मे विग्रह उत्पन्न करते हैं, वे घोर पाप करते है। अगर आप सघ की शान्ति और एकता के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करेगे तो आपका हृदय तो निष्पाप बनेगा ही साथ ही सघ मे अशाति फैलाने वालो के हृदय का पाप भी धुल जायेगा। सघ मे एकता होने से सघ की सब बुराई नष्ट हो जाती है।

यह कितने सतोष और सुख की बात है कि आज सम्पूर्ण सघ एक ही दिन सवत्सरी पर्व की आराधना कर रहा है। यह वर्ष प्रसन्नता का वर्ष है। मैने जीवन मे आज ही ऐसा शुभ दिन देखा है। अतएव भाइयो सवत्सरी पर्व की आराधना ऊपर–ऊपर से न करो अन्तरग मे उसकी उपासना करो।

1 'पर्युषण' का अभिप्राय क्या है यह देखने की आवश्यकता है। 'पर्युषण' का शाब्दिक अर्थ कभी बदल भी सकता है लेकिन हम 'पर्युषण' का जो अर्थ करते है उसके साथ रूढि परम्परा का भी बल है।

माता–पिता को विवश कर देती हैं। इस प्रकार सत्याग्रह के बल पर वे अपने माता–पिता से उपवास की स्वीकृति प्राप्त कर लेती और उपवास करती हैं। इस पर्व के उपलक्ष्य मे जब बालक और बालिकाओ की सदा यह भावना रहती है तो समझना चाहिए कि इस पर्व मे बहुत बडी शक्ति हे। कदाचित् देश के या धर्म नेताओ के आदेश से करोडो उपवास हुए होगे, मगर बालको के हृदय मे उपवास करने की ऐसी प्रबल भावना उस समय भी उत्पन्न न हुई होगी।

आज का दिन इतना पवित्र है कि कोई भी जैन अपने हृदय मे वैर–भाव न रखेगा। अगर किसी से वैर–भाव रहा होगा तो उससे क्षमा याचना करेगा और स्वय क्षमा प्रदान करेगा।

2 'पर्युषण' के अर्थ को प्रकट करने वाले प्राकृत भाषा मे दो शब्द हैं 'पज्जुसणा और 'पज्जोसवणा'। इनमे 'पज्जुसणा' का सस्कृत रूप ही 'पर्युषणा या 'पर्युषण' है और 'पज्जोसणा' का पयुर्षणा के अतिरिक्त 'पर्युशमना सस्कृत रूप और होता है। 'पर्युषण' शब्द का शाब्दिक अर्थ है–'पूर्ण से निवास करना। ओर पज्जोसवणा या पर्युशमना का अर्थ हे–'पूर्ण रूप से शान्त करना या जिसके द्वारा पूर्ण रूप से शान्त किया जावे।

यह आशका होना स्वाभाविक हे कि पयुर्षण शब्द का अर्थ यदि 'पूर्ण रूप से निवास करना हे 'तो वह निवास कहा ओर किसका होना चाहिए? इसका सामाधान है–पूर्ण रूप से आत्मा का आत्मा मे ही निवास करना 'पयुर्षणा अर्थात् आत्मानुभाव मे लीन होना आत्माभिमुख होकर रहना आत्मा के शुद्ध सिद्ध–स्वभाव का चिन्तन करना, आत्मोत्कर्ष की तेयारी करना आत्मोन्नति के साधनो का सग्रह करना आत्म–निरीक्षण करना आत्मा की शक्ति को समझना, उसकी वर्तमान कालीन दुर्बलता को दूर करना बाह्य पदार्थों से नाता तोडना आत्मा से भिन्न सासारिक पदार्थों पर निर्भर न रहना इत्यादि।

'पर्युषण' का दूसरा रूप पर्युपशमना हे। पर्युपशमना अर्थात् शान्त करना। अनादि काल से आत्मा मे विकारो की विद्यमानता होने के कारण आत्मा सतप्त रहता हे क्षुब्ध रहता हे चचल बना रहता है। इन विकारो ने आत्मा को अशान्ति का केन्द्र बना दिया हे। इन विकारो की बदोलत आत्मरमण का अद्भुत आनन्द लुप्त हो रहा है। विकारो के अधीन होने के कारण आत्मा शान्ति ओर सतोष से शून्य बन गया हे। अतएव इन विकारो का शान्त करना जिनके द्वारा विकार शान्त हो सकते हो उन शुभ भावो का विलम्बन करना अशुभ भावनाआ पर विजय प्राप्त करना पर्युपशमना हे।

यहा पर्युषण के जो दो रूप बताये गये हैं उनमे एक साध्य है और दूसरा साधन है। आत्मा मे पूर्ण रूप से निवास करने के लिए या आत्मरमण करने के लिए इन विकारो के उपशमन की आवश्यकता होती है। जब तक काम, क्रोध लोभ मोह आदि विकारो की उपशाति नही हो जाती तब तक आत्मरमण का अपूर्व आस्वादन नही किया जा सकता। अतएव 'पर्युपशमना' से विकारो को शान्त करके 'पर्युषणा' अर्थात् आत्मस्थित स्वरूप मे अवस्थान करना ही पर्युषण पर्व की आराधना करना है।

पर्युषण के उल्लिखित दोनो अर्थो पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस पवित्र पर्व पर जो अनुष्ठान किया जाए वह आत्मस्पर्शी होना चाहिये—मात्र शरीरस्पर्शी नही। जो क्रियाकाड सिर्फ शरीर पोषण करता है, पर आत्म—पोषण नही करता अर्थात् आत्मिक गुणो के विकास मे जरा भी सहायक नही होता वह आध्यात्मिक दृष्टि से निष्प्रयोजन है।

आज के दिन चौरासी लाख योनियो के समस्त प्राणियो से क्षमा याचना की जाती है। अर्थात् क्रोध और अभिमान आदि विकारो का उपशमन करना है। अतएव हमे पर्युषण का अर्थ भी याद है और उसका कार्य भी हमारी स्मृति मे है।

पर्युषण के समय हमे क्या—क्या त्यागना पडेगा इस बात का निश्चय भी इन दिनो मे किया जाता है। आने वाली ऋतु मे द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव से हमे क्या—क्या और किस—किस दृष्टि से त्यागना चाहिये तथा खाने पीने आदि की मर्यादा किस प्रकार बाधनी चाहिए आदि बातो को निश्चय करने के लिए भी यह पर्व है। आज तो पर्युषण की साधना का दिन है लेकिन पर्युषण पर्व अपना कल्प निश्चित करने के लिए है। शास्त्रो मे द्रव्य और क्षेत्र से इस विषय पर बहुत—सा विचार किया गया है।

गया हे। इन 70 दिनो मे यथाशक्ति अन्न–पानी का भी त्याग करना चाहिये। अर्थात् उपवास करना चाहिए। उपवास का अर्थ हे–

उप समीर वसनमुपवास

अर्थात् अन्न–पानी आदि की ओर से ध्यान हटा कर आत्मा को धर्म मे बसाना 'उपवास' कहलाता हे। यदि आत्मा को धर्म मे न बसाया जाये ओर भोजन–पानी का त्याग मात्र किया जाये तो उसे लघन भले ही कहा जाये पर उपवास नही कहा जा सकता। आत्मा को धर्म मे स्थापित करना ही सच्चा उपवास है। किसी ग्रन्थकार ने कहा भी है–

कशाय विषयाहारस्यागो यत्र विधीयते ।
उपवास स विज्ञेय शेष लंघनकं विदु ।।

अर्थात् उपवास वह हे जिसमे कषायो का विषयो का ओर आहार का त्याग किया जाता है। जहा इन सब का त्याग न हो–सिर्फ आहार त्यागा जाए और विषय कषाय का त्याग न किया जाये वह लघन हे–उपवास नहीं हे।

'पर्युषण' शब्द के प्रथम अर्थ के अनुसार जघन्य सात दिन ओर उत्कृष्ट छह मास तक एक जगह रहना भी पर्युषण कहलाता है। इसकी चर्चा लम्बी हे ओर उसका विस्तार करने का भी अभी समय नहीं हे।

पर्युषण के अर्थ पर विचार करने से यह स्पष्ट हो गया है कि पाप को उपशात करके आत्मा मे सद्गुणो का बसाना पर्युषण का अर्थ हे। प्राणी–मात्र के प्रति वेर–भाव भूल कर अन्त करण से प्रेमपूर्वक क्षमायाचना करना और सब प्राणियो के प्रति सात्विक प्रेम का प्रसार करना आज के दिन का विशिष्ट कार्य या उद्देश्य हे।

जिनसे किसी प्रकार का लडाई–झगडा नही है उनसे क्षमा–याचना करके परम्परा का पालन कर लिया जाये ओर जिनसे लडाई हे जिनके उचित अधिकारो का अपहरण किया हे अधिकारो के अपहरण के कारण जिन्हे घोर दु ख पहुचा है ओर उन अधिकारो को उन्हे सुपुर्द कर देने से आनन्द होता ह उन लोगो को उनके उचित अधिकार न लोटा कर ऊपर से क्षमा माग लेना उचित नहीं हे। ऐसा करना सही क्षमा–याचना नहीं हे। पर्युषण पर्व क कार्यों की सूचना एक भजन मे की गई हे। वह भजन इस प्रकार हे–

अरे ओ सज्जनो व्हाला! पियो ने प्रेमना प्याला।
धरी प्रभु–नामनी माला करो जीवन सफल आजे।।

पर्युषण पर्व आरूढ़, करो ना नाम कँइ कूडू।
बनाई शुद्ध निज हियरू,करो जीवन सफल आजे।।
करो सब वैर ने दूरे, हरो मन मैल तुम पूरे।
खमाओ भाव थी पूरे करो जीवन सफल आजे।।

मित्रो! व्हाला (प्रिय) सज्जन कौन है? क्या साधुओ के लिए भी कोई व्हाला सज्जन होता है ?

इस जीव ने अनादि काल से किस–किस प्राणी के साथ प्रीति का नाता नही जोडा है? न जाने अब तक कितने प्राणियो के साथ इस जीवन का प्रेम–सम्बन्ध जुड चुका है! साथ ही जिसके साथ प्रीति का नाता जुडा उसी के लिए प्राण भी दिए हैं। मगर जीव ने धर्म के साथ प्रीति नही जोडी। किन्तु आज शुभ दिवस है। आपकी और हमारी क्या पहिचान है ? आपके साथ हमारा क्या नाता–रिश्ता है? अगर मैं साधु न होता तो आप मुझे क्यो पूछते? यह सब भाई जो बाहर से आये हैं, इन से आप क्यो प्रेम करते है? अगर धर्म का प्रेम न होता तो आप इनका इतना आदर–सत्कार और प्रेम क्यो करते है? दिल्ली बडा शहर है भारतवर्ष की राजधानी है। यहा बहुतेरे आते और जाते रहते है। कौन किसे पूछता है ? फिर भी आप इन आगत भाइयो को देख कर क्यो इतने प्रसन्न होते है मानो आपका बहुत दिनो से बिछुडा हुआ भाई मिल गया हो? यह सब प्रेम धर्म का प्रेम है। आप मेरी जो भक्ति करते है उसे भी मै अपनी भक्ति नही समझता। वह तो भगवान् महावीर के धर्म की स्तुति है। मेरी प्रशसा मेरी नही भगवान के धर्म की प्रशसा है। धर्मानुराग के वश होकर ही आप मेरे प्रति आदर भाव प्रदर्शित करते है।

और मार्ग मे सावधान रहने की प्रेरणा करेगा। लेकिन ऐसा न करके अगर कोई आपके पास की भी वस्तु छीन ले तो उसे आप व्हाला समझेगे या शत्रु?

शत्रु।

में आप से कहता हू–आप मुझे खर्च दीजिये ओर में आपको देता हू। मुझसे अगर महाव्रतो की रक्षा न हो सके तो आप मेरे व्हाला सज्जन हें अतएव नम्र या कठोर वचन कह कर के भी मुझे ठीक रास्ते पर लाइए। इतिहास बतलाता है कि साधु कभी कोडो से पीट कर और कमी मिष्ठान्न देकर ठिकाने लाये गये है। किसी भी विधि से साधुओ को पथ पर लाया जाये मगर यह भावना बनी रहनी चाहिए कि हम सब व्हाला सज्जन हें।

प्रेम के कारण आप पर जो उत्तरदायित्व आता हे उसका दिग्दर्शन मैंने कराया है। पर साधुओ पर आने वाला उत्तरदायित्व भी हे। साधुओ से आपका सम्पर्क होता है। आप उनके प्रति आदर भाव रखते हें। आप उन्हे अपना मार्गदर्शक मानते हे। अतएव साधुओ का यह कर्त्तव्य हो जाता हे कि वे आपके वास्तविक कल्याण का मार्ग बताए आपको धर्म व्रत ओर सयम से भेट कराए। त्याग मे ही सच्चा सुख हे अतएव उस सुख की प्राप्ति के लिए आपको त्याग का उपदेश दे।

इस प्रकार साधुसघ ओर श्रावकसघ का पारस्परिक स्नेह–सबध स्थिर रहने से ही धर्म की जागृति रह सकती हे। दोनो को अपने–अपने कर्त्तव्य के प्रति सजग ओर दृढ रहना चाहिए। एक दूसरे को पथ से विचलित होते देख–कर तत्काल उचित प्रतिकार करे तभी भगवान् का शासन सुशोभित रहेगा। श्रावकसघ अगर साधु का वेष देखकर उसकी उच्च पद–मर्यादा का विचार करके साधु को पथ–भ्रष्ट होते समय भी दृढतापूर्वक नही रोकता ओर साधुसघ श्रावको के सासारिक वेभव से प्रभावित होकर या अन्य किसी कारण धर्म को लज्जित करने वाले श्रावक के कार्य देखकर भी उसे कर्त्तव्य का बोध नही कराता तो दोनो ही अपने कर्त्तव्य से भ्रष्ट हो जाते हें।

राजर्षि नेमि की माता मेणरेया (मदनरेखा) का वृत्तान्त आप जानेगे तो आपको विदित होगा कि आप अपने कुटुम्बियो के प्रति सज्जनता का व्यवहार करते हें या दुर्जनता का ?

राजर्षि नमि की माता अत्यन्त सुन्दरी थी। जेसा उसका नाम वेसा ही उसका सान्दर्य था। मेणरेया या मदनरेखा उसका नाम था। वह युगवाहु की पत्नी थी। युगवाहु के एक वडे भाई थे जिनका नाम मणिरथ था। एक दिन मणिरथ न मदन रेखा को देख लिया और देखते ही वह उस पर मुग्ध

हो गया। उसके हृदय मे पाप–वासना जाग उठी। उसने मदनरेखा को अपनी स्त्री बनाने का निश्चय कर लिया।

यद्यपि मणिरथ ने अपनी कुत्सित कामना की सिद्धि के लिए आकाश–पाताल एक कर दिया पर मदनरेखा के हृदय मे लेश–मात्र भी पाप का सचार नही हुआ। वह बचपन से ही धर्म–ध्यान और ईश्वरस्मरण मे परायण थी। मदनरेखा की इस दृढता से मणिरथ कुछ–कुछ निराश हुआ। अन्त मे उसने विचार किया कि मदनरेखा जब तक युगबाहु के पास रहेगी तब तक हाथ न आएगी। किसी प्रकार युगबाहु को उससे अलग करना चाहिए।

इस प्रकार विचार करके मणिरथ ने दौरे पर जाने का ढोग रचा। युगबाहु ने भाई से दौरे पर जाने का कारण पूछा तो मणिरथ ने कहा–राज्य की सीमा पर कुछ उपद्रवियो ने उत्पात मचा रखा है। उनका दमन करने के लिए मेरा जाना आवश्यक है। युगबाहु बोला–उपद्रवियो का दमन करने के लिए मेरे रहते आपका जाना ठीक नही है। जब तक मै जीवित हू, आपको नही जाने दूगा। अतएव कृपा कर मुझे जाने की आज्ञा दीजिए। यदि मै उनका दमन न कर सका तो फिर भविष्य मे मुझे कौन मिलेगा?

बिल्ली के भाग्य से छीका टूटा। मणिरथ जो चाहता था वही हुआ। फिर भी उसने ऊपरी मन से युगबाहु को घर रहने के लिए कहा और अन्त मे उसे विदा कर दिया।

युगबाहु के चले जाने पर मणिरथ ने उत्तमोत्तम वस्त्र आभूषण सुगन्ध की वस्तुए और खाने–पीने के अनेक स्वादिष्ट पदार्थ एक दूती के साथ मदनरेखा के पास भेजे। दूती ने मणिरथ की भेजी हुई सब विलास सामग्री मदनरेखा को भेट की । उस समय मदनरेखा ने कहा–'जिस नारी का पति परदेश गया है। उसे विलास–सामग्री की क्या आवश्यकता है? उसे तो उदास

मे अपने पति को खोज लाई। बहिनो! जरा विचार करो। जिसका पति परदेश गया है और जिसके लौट आने मे सदेह नहीं है, वह नारी भी उदासीन भाव से रहती है उत्तम वस्त्र–आभूषण नहीं पहनती सुगन्धित पदार्थों का उपयोग नहीं करती, तो जिसका पति पर–लोक चला गया हे, उसे किस प्रकार रहना चाहिये?

समय के फेर से जो, भारत देश और की और।
पहले पति परदेश सिधाते, नारी उदासी रोती।।
आज पिया परलोक सिधाते रगड–रगड पग धोती ।।समय।।

एक समय था जब पति के परदेश जाने पर स्त्रिया खाने–पीने की ओर से भी उदासीन रहती थीं, एक समय आज है जबकि पति के परलोक जाने पर स्त्रिया बनाव–सिगार करने से बाज नही आतीं।

मदनरेखा ने मणिरथ के भेजे हुए वस्त्राभूषण लाने वाली दूती को फटकार लगाई और वापिस ले जाने को कहा। दूती ने धृष्टता के साथ कहा। इन गहनो–कपडो की तो बात ही क्या है वे स्वय आपके अधीन होने वाले हैं। यह वस्त्र और आभूषण तो अपनी हार्दिक कामना प्रकट करने के लिए ही उन्होने भेजे हे।

दूती की निर्लज्जतापूर्ण बात सुनते ही मदनरेखा का अग–अग क्रोध से जल उठा। उसने अपनी दासी से अपना खड्ग मगवाया ओर दूती को उसकी भ्रष्टता का मजा चखा देने का विचार किया।

मदनरेखा की भयकर आकृति देखकर दूती सिर से पेर तक काप उठी। उसकी प्रचड मुखमुद्रा देख दूती के चेहरे पर हवाइया उडने लगी। तब मदनरेखा ने उससे कहा–'जा काला मुह कर। अपने राजा से कह देना कि वह सिहनी पर हाथ डालने की खतरनाक ओर निष्फल चेष्टा न करे अन्यथा धन परिवार सहित उसका समूल नाश हो जायगा।

दूती अपनी जान बचा कर भागी उसने मणिरथ से आद्योपान्त सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मणिरथ ने सोचा–ऐसी वीरागना स्त्री तो मेरे ही योग्य हे! '**विनाशकाले विपरीत बुद्धि** ।

एक आधी रात के समय स्वय मणिरथ मदनरेखा के महल मे जा पहुँचा। वहा पहुँच कर उसने द्वार खटखटाया। मदनरेखा सारा रहस्य समझ गई। उसने किवाड खोले बिना ही राजा को फटकारा। कहा–'इस समय तेरा यहा क्या प्रयाजन ? जा इसी समय चला जा यहा से!

राजा–मदनरेखा बिना प्रयाजन कोन किसके यहा आता हे? मैं अपना मन तुम्हे समर्पित कर चुका हू। यह तन आर बचा हे इसी को तुम्हारे

चरणो मे अर्पित करने के लिए आया हू। मदनरेखा, मेरी भेट स्वीकार करो। इस तन के साथ ही अपना विशाल राज्य भी तुम्हे सौंप दिया जायगा।

मदनरेखा—राजा, काम की अग्नि को अगर सहन नही कर सकते तो चिता की अग्नि को अपना शरीर समर्पित कर दो। अपनी कामाग्नि से सतीसाध्वी पतिव्रता नारी के धर्म को आग न लगाओ। उस आग मे नीति को भस्म न करो। अपने भविष्य को भस्म होने से बचाओ। पतित पुरुष! अपने छोटे भाई की पत्नी पर भी तू कुत्सित दृष्टि डालता है! मैं नारी होकर तुझे दुत्कारती हू और तू मेरे पैरो पडता है! कहा है तेरा पुरुषत्व? जो काम के अधीन होकर स्त्री के सामने दीनता दिखलाता है वह पुरुष नही हिजडा है। तू स्त्री और नपुसक से भी गया—बीता है। अपना भला चाहता है तो अभी—इसी क्षण यहा से चलता बन। वर्ना तुझे अपनी करतूत का मजा अभी चखाया जायेगा।

मदनरेखा ने मणिरथ को जब इस प्रकार फटकार बताई तो वह अपना—सा मुह लेकर लौट आया। फिर भी उसे सद्बुद्धि न आई। उसने सोचा—जब तक युगबाहु जीवित रहेगा तब तक यह स्त्री रत्न हाथ न लगेगा। किसी प्रकार इस काटे को निकाल फेकना चाहिए।

विनाश काले विपरीत बुद्धि ।

इस प्रकार मणिरथ का पाप बढता चला गया। लेकिन पापी का पाप बढने से ज्ञानीजन घबराते नही है। ज्ञानीजन सोचते हैं कि पाप की वृद्धि होने से ही ईश्वरीय शक्ति अर्थात् धर्म का बल प्रकाश मे आता है। अधर्म की वृद्धि से धर्मो का नया जीवन आता—जाता है। पाप के बढने से ज्ञानियो की महिमा बढती है। ज्यो—ज्यो मणिरथ का पाप बढने लगा त्यो—त्यो मदनरेखा के जीवन की शक्ति बढने लगी।

बडी घटना के विषय मे भी वह अपने पति से एक शब्द नहीं कहती। कुलीन स्त्रिया, जहा तक सम्भव होता हे भाई–भाई मे विरोध उत्पन्न नहीं होने देती। यही नही, वरन् किसी अन्य कारण से उत्पन्न हुए विरोध को भी शान्त करने का प्रयत्न करती हैं। मदनरेखा प्रथम तो स्वय वीरागना थी। उसे अपनी शक्ति पर भरोसा था। दूसरे उसने सोचा–पति के आ जाने से दुष्ट राजा रास्ते पर स्वय आ जाएगा, अतएव अब पारस्परिक कलह बढाने से क्या लाभ हे? यही सोच उसने पिछली घटना के विषय मे युगबाहु से एक शब्द भी नहीं कहा।

एक बार राजा वसन्तोत्सव मनाने के लिए वन मे गया। युगबाहु भी वसन्तोत्सव के अर्थ वन को चला। मदनरेखा ने सोचा–'पति अकेले वसन्तोत्सव मनाने जाएगे तो उन्हे उत्सव फीका लगेगा। उनका साथ छोडना उचित नहीं था। यह सोच कर वह भी युगबाहु के साथ हो चली। वन मे पहुच कर युगबाहु ने वह रात्रि वन मे व्यतीत करने का निश्चय किया। उसने मदनरेखा से भी अपना निश्चय कह सुनाया। मदनरेखा बोली–'नाथ, में आपके आनन्द मे विघ्न डालना नहीं चाहती। पर यह कह देना आवश्यक समझती हू कि वन मे अनेक आपत्तियो की आशका रहती है अतएव वन मे रात्रि के समय रहना उचित नही है। 'युगबाहु ने कहा– आपके साथ रक्षक मौजूद हैं। में स्वय कायर नही हू। फिर डर किस बात का है?

बाग मे ही युगबाहु के डेरे–तम्बू लग गये। युगबाहु ओर मदनरेखा रात–भर वही रहने के विचार से ठहरे। डेरे के आस–पास पहरा लग गया।

मदनरेखा सहित युगबाहु को बाग मे ठहरा देख मणिरथ ने विचारा– आज अच्छा अवसर हे। अगर मैंने आज युगबाहु का काम तमाम कर दिया तो मदनरेखा हाथ लग जायेगी।

इस प्रकार पाप–सकल्प करके मणिरथ घोडे पर सवार होकर अकेला ही युगबाहु के डेरे पर आया। युगबाहु के पहरेदारो ने उसे अन्दर घुसने से रोक दिया।

राजा ने कहा–में राजा हू। युगबाहु मेरा छोटा भाई हे। मुझे अन्दर जाने की मनाई कैसे हो सकती हे ?

पहरेदार–आप महाराज हे यह ठीक हे। आपकी आज्ञा सिर माथे पर। किन्तु युगबाहु सपत्नीक ठहरे हुए हे आपका अन्दर जाना ठीक नही हे। आखिर एक पहरेदार ने भीतर जाकर युगबाहु से आज्ञा ली ओर युगबाहु ने कहा–भाई भीतर आना चाहता हे तो आने दो।

मदनरेखा ने कहा–नाथ सावधान रहिए। भाई की नजर भाई की सरीखी न समझिय। व इस समय आपकी जान के ग्राहक बन कर आ रहे हॅ।

यद्यपि मदनरेखा ने युगबाहु को सब बात भली–भाति सुझाई, पर उसने उपेक्षा के साथ कहा–यह तुम्हारा भ्रम है। जिस भाई ने अपने पुत्र को युवराज न बना कर मुझे युवराज बनाया वह मेरे प्राणो का ग्राहक क्यो होगा? अगर उनके हृदय मे पाप होता तो मुझे युवराज क्यो बनाते ?

मदनरेखा एक ओर हट गई। मणिरथ डेरे मे आ गये। युगबाहु ने मणिरथ का यथोचित अभिवादन करके पूछा–इस समय आपने पधारने का कष्ट क्यो किया है ? आज्ञा दीजिए क्या कर्त्तव्य है ?

मणिरथ–तू शत्रुओ को जीत कर आया है, पर तेरे शत्रु अब भी तेरा पीछा कर रहे है। इधर तू किला छोड कर उद्यान मे आकर रहा है। इसी चिन्ता के मारे मुझे नीद नही आई और मैं दौडा चला आया।

मणिरथ ने अपने आने के विषय मे जो सफाई पेश की वह कुछ सगत नही थी। युगबाहु ने तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा–आप मुझे इतना कायर समझते हैं ? क्या मैं इतना डरपोक हू? यहा तो किला और सेना, सब समीप ही है। जहा मै युद्ध करने गया था वहा से तो यह सब दूर ही थे। फिर भी न तो मुझे किसी प्रकार का भय ही हुआ और न ही आपको चिन्ता सवार हुई। मुझे शत्रुओ से किसी प्रकार की हानि हो सकती है यह आपकी भ्रमपूर्ण सम्भावना है। ऐसे अवसर पर आपका आना ओर विशेषत उस अवस्था मे जब कि मै सपत्नीक हू, नितान्त अनुचित है। राजा स्वय मर्यादा भग करेगा तो मर्यादा का पालन कौन करेगा?

मणिरथ के चेहरे पर मुर्दनी–सी छा गई। वह बोला– अच्छा जाता हू। मगर प्यास के मारे मेरा गला सूख रहा है थोडा पानी पिलादो।

सामने ही पानी रक्खा था। युगबाहु अपने भाई को पानी पिलाने से इन्कार कैसे करता ? एक सामान्य अतिथि को पानी पिलाने के लिए ना नही की जाती। मणिरथ तो बडा भाई और राजा था। उसे पानी पिलाने से युगबाहु कैसे मुकरता?

समय मदनरेखा आ गई। उसने पति को इस अवस्था मे देखा तो क्षण भर के लिए वह किकर्त्तव्यमूढ हो गई। इस समय मदनरेखा का क्या कर्त्तव्य है? उसे क्या करना चाहिए?

अरे ओ सज्जनो! व्हाला! पियो ने प्रेम ना प्याला।
धरी प्रभु–नामनी माला करो जीवन सफल आजे।।

ऐसे प्रसग पर रुदन करके तो अपना और मरने वाले का भविष्य बिगडे, उसके विषय मे आप कहेगे कि उसे मरने वाले से बडा प्रेम है। रोना–धोना ही आज प्रेम की कसौटी समझी जाती है। लेकिन यह कसोटी भ्रम है–धोखा है–ठगाई है। सच्चा प्रेम क्या है और 'सज्जनता' किसमे है यह मदनरेखा के चरित्र से सीखना चाहिये।

मदनरेखा के जीवन मे इससे अधिक अनिष्ट क्षण दूसरा कौन सा होगा? दुष्ट मणिरथ ने उसके निरपराध पति का वध कर डाला, इससे अधिक विपदा मदनरेखा पर और क्या आ सकती है? इतना ही नही, भविष्य का भय भी उसकी आखो के आगे नाच रहा है। वह गर्भवती है। ऐसे विकट समय वह क्या करे?

कायर के लिए यह बडा भयकर समय है। मगर मदनरेखा वीर क्षत्रियाणी थी। कायरता उससे कोसो दूर थी। उसने उसी समय अपना कर्त्तव्य स्थिर कर लिया। सोचा, पतिदेव का जीवन अधिक से अधिक दो घडी का है। इन दो घडियो का मूल्य बहुत अधिक है। इतने समय मे ही मुझे ऐसा करना है, जिससे इनकी सह–धर्मिणी के नाते मैं अपना पवित्र कर्त्तव्य निभा सकू। बाहर मणिरथ और पहरेदारो मे होने वाले युद्ध के कारण कोलाहल मच रहा था। मदनरेखा दौड कर बाहर आई और द्वार रक्षको से बोली–तुम किससे युद्ध कर रहे हो? तुम्हारे स्वामी केवल दो घडी के मेहमान हैं। इन दो घडियो मे मै कुछ चीज देना चाहती हू जो उनके काम आ सके। इसलिए तुम युद्ध बद करो जिससे कोलाहल मिटे ओर शान्ति हो। अगर तुम राजा को मार डालोगे तब भी कोई लाभ न होगा। स्वामी अब जीवित नहीं हो सकते। तुम अपने स्वामी के हित चिन्तक हो पर मैं तुमसे भी अधिक उनका हित चाहती हू। राजा को भाग जाने दो। शान्त हो जाओ।

मदनरेखा की बात सुनते ही द्वार–रक्षक शान्तिपूर्वक खडे हो गये। राजा मणिरथ उस समय सोचने लगा– अब मदनरेखा मुझे चाहने लगी है। ऐसा न होता तो वह मेरी जान क्यो बचाती? अपने पति को न रो कर मेरी रक्षा क लिए क्यो दाडी आती! **विनाशकाले विपरीत बुद्धि ।**

इस प्रकार अपने विचारो से प्रसन्न होता हुआ मणिरथ घोडे पर सवार होकर वहा से भागा। लेकिन पाप का फल भोगे बिना छुटकारा कहा?

राजा मणिरथ के घोडे का पैर एक साप की पूछ पर पड गया। पूछ कुचलते ही साप उछला और उसने मणिरथ को डस लिया। मणिरथ चल बसा और चौथे नरक का अतिथि बना।

इधर मदनरेखा ने देखा–स्वामी वेदना से तडफ रहे हैं। उसने घाव पर पट्टी बाधी और उनका सिर अपनी गोद मे रखा। उसने कहा– 'नाथ। आपकी इहलोक–लीला दो घडी मे समाप्त होने जा रही है। कृपा कर मेरी बात पर ध्यान दीजिए।

युगबाहु ने आख खोल कर कहा–'मदनरेखा, मुझे तुम्हारी चिन्ता हो रही है। तुम्हारा क्या होगा। भाई तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करेगा।

मदनरेखा ने सोचा–स्वामी का मोह और क्रोध यो दूर न होगा। उसने एक ऐसा मत्र पढा जिससे करोडो सापो का भी विष दूर हो सकता था। करोडो सर्पो का विष दूर होना उतना कठिन नही है जितना क्रोध का शात होना कठिन है। उसने पति से कहा–

गुझ अने बन्धु ऊपर हो प्रीतम। राग–द्वेश परिहार।
सम परिणाम राखजो हो प्रीतम। उतरोला भव पार।।
हिरदै राखजो हो भवियन मागलिक शरणा चार।

आप परिणामो मे समता लाइए। ऐसा करने से ही आत्मा को शान्ति मिलेगी ओर अन्त मे शुभ गति का लाभ होगा।

अगर आप यह सोचते हो कि मेने आपको सदा सुख ही पहुचाया हे कभी किसी प्रकार का कष्ट नही होने दिया तव मृत्यु का कारण में केसे? तो मेरी बात सुनिये–

व्हालो सज्जन जो होवे तो प्रीतम! खर्ची बाधे साथ।
आप परलोक सिधावता हो तो प्रीतम! ये मुझ हाथ नो माथ।।
हिरदै राखजो हो भवियन मागलिक शरणा चार।

प्रियजन वही हे जो मुसाफिरी के समय साथ मे खाना बाध देता हे। आप परदेश जाते थे तब में खर्ची बाधा करती थी, परन्तु आज आप परलोक की यात्रा पर हैं। इस यात्रा के समय भी आप मेरी दी हुई खर्ची बाध लेगे तो मैं ओर आप दूर नही हैं। आप समस्त चिन्ताओ का भार हटा दीजिए ओर निश्चित होकर साम्यभाव धारण कीजिए।

मित्रो! आजकल आप लोगो का रहन–सहन और ही प्रकार का हो रहा हे। आप ऐसे 'व्हाले सज्जन के पाले पडे हें जो ऐन मोके पर धोखा दे देते हैं। मदनरेखा के समान 'व्हाले सज्जन ही अन्त समय मे इस प्रकार की खर्ची दे सकते हैं। दूसरे तो आपके पास की खर्ची भी छीन लेगे–अपने पास की देना तो दर किनार रहा।

मदनरेखा कहती हे– 'इस समय आपके लिये सबसे श्रेष्ठ यही खर्ची हे कि आप मुझ पर राग न कीजिए ओर अपने भाई पर द्वेष न कीजिए।

जब तलवार मारने वाले भाई पर ही द्वेष न रहेगा तो क्या किसी दूसरे पर वह रह सकेगा?

'नहीं!

तो फिर सब मिल कर बोलो–

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे खमतु मे।
मित्ती मे सव्वेभूएसु वेर मज्झ न केणइ।।

मदनरेखा कहती हे–नाथ! यह शान्ति का समय हे। आप सव जीवोसे क्षमा की अभिलाषा कीजिये–क्षमायाचना कीजिए ओर सर्वप्रथम अपने भाई से ही क्षमा मागिए।

मित्रा! युगवाहु का अपने भाई से अधिक वेरी कोन होगा? अगर किसी ने आपका अधिक से अधिक अनिष्ट किया होगा तो आपको धन सम्वन्धी हानि पहुचाई होगी या अन्य प्रकार से आपका चित्त दु खित किया हागा। मणिरथ न जस युगवाहु का सिर काटा उस प्रकार आपका सिर तो

किसी ने नही काटा होगा? इस प्रकार मणिरथ घोरतम अपराधी था, फिर भी अन्त समय मे युगबाहु ने ही उससे क्षमा चाही? ऐसी अवस्था मे आज परम मगलमयी सवत्सरी के दिन आप चुप रहेगे? क्या आप अपने हृदय मे राग–द्वेष रहने देगे?

मदनरेखा कहती है–'शरीर का त्याग तो करना ही है, फिर खर्ची लेकर ही शरीर का त्याग कीजिए। कहो व्हाला सज्जन कौन है? इसी से कहते हे– **अरे ओ सज्जनो! व्हाला पीजो ने प्रेम ना प्याला।**

मदनरेखा कहती है–आप मेरा दिया हुआ प्याला पीजिए। इस जीवन मे यह मेरी अन्तिम भेट है। बस राग–द्वेष का त्याग कर दीजिये।

मित्रो! आप लोग समय का ठीक–ठीक विभाग नही करते, इसलिए आपका जीवन अस्त–व्यस्त हो रहा है। दिन रात के चौबीस घण्टे होते हैं। नीद लिए बिना काम नही चलता इसलिए छह घण्टे नीद मे गए। बिना आजीविका के भी काम नहीं चलता इसलिए छह घण्टे आजीविका के निमित्त निकल गए। शेष बारह घण्टे बचे। इसमे से छह घण्टे आहार–विहार, स्नान आदि कार्यो मे व्यय हो गये क्योकि इनके बिना भी जीवन–निर्वाह नहीं हो सकता। तब भी छह घण्टे बचे रहते है। यह छह घण्टे आप मुझे दे दीजिए। अगर आप इतना समय भी नही दे सकते तो चार घण्टे ही दीजिए। यह भी न बन पड़े तो दो घण्टे और अन्त मे कम से कम एक घण्टा तो दे ही दीजिए। इतना समय भी अगर आपने धर्म कार्य मे न लगाया तो स्मरण रखो यह मनुष्य शरीर रूपी अनमोल रत्न पाकर व्यर्थ गवा दोगे। मदनरेखा के उपदेश का एक घण्टा युगबाहु के लिए क्या फल लाया? मणिरथ और युगबाहु एक ही माता के उदर से पैदा हुए थे। दोनो की साथ ही मृत्यु भी हुई। मणिरथ साप के काटने से मरा ओर युगबाहु मदनरेखा की गोद मे। लेकिन दोनो की मृत्यु मे कितना अन्तर हुआ? मणिरथ नरक की घोर यातनाओ का पात्र बना और युगबाहु स्वर्ग की दिव्य विभूति का अधिकारी हुआ।

अवयव शक्तिशाली या कार्य–क्षम हो सकते हैं। इस प्रकार भगवान् महावीर के सघ रूपी अग मे श्रावक पेट और श्राविका जघा है।

वेदान्त मे ईश्वर के विराट् रूप की चार वर्णों मे कल्पना की गई है। ईश्वर के उस विराट रूप मे ब्राह्मण को मस्तक, क्षत्रिय को भुजा, वैश्य को उदर ओर शूद्र को पैर रूप मे कल्पित किया है। इसी प्रकार भगवान महावीर का सघ ही अग है। जब तक सब अवयव एक दूसरे के सहायक न बने तब तक काम नही चलता। आज सघ तो महान् है, पर उसमे सग नहीं दिखाई देता। सग का तात्पर्य है जघा का पेट को, पेट का भुजा को, भुजा का मस्तक को मस्तक का भुजा, पेट एव जघा को भुजा का पेट, मस्तक और जघा को पेट का मस्तक और जघा को और जघा का मस्तक भुजा और पेट को सहायता देना। चारो अगो का सगठन होना चाहिये। मस्तक मे ज्ञान हो भुजा मे बल हो, पेट मे पाचन शक्ति हो और जघाओ मे गतिशीलता हो तो अभ्युदय मे क्या कसर रह जाएगी? अगर सघ शरीर के सगठन के लिए सर्वस्व का भी त्याग करना पडे तो भी वह त्याग कोई बडी बात नही होनी चाहिए। सघ के सगठन के लिए अपने प्राणी को उत्सर्ग करने मे भी पश्चात्पद नही होना चाहिए। सघ इतना महान् है कि उसके सगठन के हेतु, आवश्यकता पडने पर पद और अहकार का मोह न रखते हुए इन सब का त्याग कर देना श्रेयस्कर है। आज यदि सघ सु–सगठित हो जाए शरीर की भाति प्रत्येक अवयव एक दूसरे का सहायक बन जाए समस्त शरीर का श्रेय ही एक अवयव का मुख्य लक्ष्य हो जाए तो साधुता की वृद्धि हो, सघ शक्ति का विकास हो तथा धर्म एव समाज की विशिष्ट उन्नति हो। इस पवित्र ओर महान् लक्ष्य की प्राप्ति के लिए में तो अपनी पद मर्यादा को भी त्याग देने के लिए तैयार हू! सघ की सेवा मे पारस्परिक अनेक्य को कदापि बाधक नही होना चाहिये।

में पूछता हू, जिस कार्य से चरित्र मे वृद्धि और भगवान् की आज्ञा का पालन होता हे उसमे आप भी शरीक हें?

अवश्य हें!

मगर ऐसा न हो कि यशोलाभ के लिए शरीक भी हो जावे ओर भीतर–भीतर पोल भी चलती रहे।

मैं सघ का ऋणी हू। सघ का मुझ पर क्या ऋण हे यह वात मे साहित्य म पण्डितराज कहलाने वाले जगन्नाथ कवि की उक्ति मे कहना चाहता हू।

मुक्ता मृणाल पटली भवता नीपिता–
न्यग्वूनिनि यत्र नलिनानि निषेवितानि।
रे राजहस! वद तस्य सरोवरस्य,
कृत्येन केन भवितासि कृतोपकार ।।

यह अन्योक्ति अलकार है। भाव यह है कि–एक सरोवर पर राजहस बैठा था। एक कवि उसके पास होकर निकला। राजहस को देखकर कवि ने कहा–हे राजहस मैं यहा रहकर तेरी क्रिया देखता रहा हू। तू कमल का पराग निकाल कर खाया करता है और पराग से सुगधित हुए जल का पान करता रहता है। तू इधर से उधर फुदक कर, कमलिनी के कोमल पल्लवो पर विहार किया करता है। तू यह सब तो करता है, मगर मैं पूछता हू कि सरोवर का तुझ पर जो ऋण है उससे मुक्त होने के लिए तू क्या करेगा? तुम किस प्रतिदान से इस ऋण से उऋण होओगे ?

कवि राजहस को सम्बोधित करके कहता है–मैं तुम्हे एक काम बताता हू। अगर तुम वह काम करोगे तब तो ठीक है, अन्यथा धिक्कार के पात्र बन जाओगे। वह काम क्या है? तुम्हारी चोच मे दूध और पानी को अलग–अलग कर देने का गुण विद्यमान है। अगर इस गुण को तुम बनाये रहे तो यह सरोवर प्रसन्न होगा और कहेगा–वाह! मेरा बच्चा ऐसा ही होना चाहिये! इसके विपरीत अगर तुमने इस गुण मे बट्टा लगाया तो सरोवर के ऋणी भी रह जाओगे और ससार मे हसी के पात्र भी बनोगे।

यह अन्योक्ति अलकार है अर्थात् किसी दूसरे को सम्बोधन करके दूसरे से कहना है। इस उक्ति को मै अपने ऊपर ही घटाता हू। यह सघ मानसरोवर है। मैने सघ का अन्न खाया है। सघ ने मेरी खूब सेवा–भक्ति की है। सघ की सेवा का आश्रय पाकर मुझे किसी प्रकार का कष्ट नही पहुचता, बल्कि सघ द्वारा मै अधिकाधिक सम्मानित होता जाता हू। यह सब कुछ तो [illegible] मगर गुरु महाराज मुझसे पूछते है–तुम कौन–सा काम करोगे जिससे [illegible] ऋण से मुक्त हो सको?

एक आचार्य की हेसियत से सत्यासत्य का विवेक रखते हुए निर्णय करना मेरा कर्त्तव्य हे। सत्य–निर्णय से अगर मेरी पोल खुलती हे तो खुले दूसरे मुझ पर क्रुद्ध होते हो तो हो जाये किसी प्रकार खतरा मुझ पर आता हो तो आ जाए, फिर भी सत्य निर्णय देना मेरा कर्त्तव्य हे। यदि मेंने सत्य–असत्य का निर्णय किया तो में सघ के ऋण से मुक्त हो सकूगा। विपरीत आचरण करने से सघ का ऋण भी मुझ पर लदा रहेगा ओर मैं ससार मे धिक्कार का पात्र बन जाऊगा।

ठाणाग–सूत्र मे कहा गया हे कि निष्पक्ष होकर विवेकपूर्वक सघ मे शान्ति रखने वाला महानिर्जरा का पात्र होता है। सघ का आचार्य होने पर भी अगर मैं निष्पक्ष न बन सका मैं अपने कर्त्तव्य का भली–भाति पालन न कर सका तो सघ का ऋणी बने रहने के साथ ही कमलप्रभाचार्य के समान मेरी भी गति होगी।

कमलप्रभ आचार्य ने तीर्थंकर गोत्र बाधने की सामग्री इकट्ठी कर ली थी । उनके आने पर लोगो ने सोचा था कि अब समस्त चेत्यालयो का उद्धार हो जाएगा। किन्तु कमलप्रभ आचार्य ने साफ कह दिया कि भगवान् के नाम पर फूल की पखुरी भी चढाना सावद्य है। चेत्यालय आदि भगवान की आज्ञा के काम नही है। ऐसे निष्पक्ष और साहसी कमलप्रभाचार्य थे मगर एक विपरीत स्थापना के कारण सावद्य आचार्य कहलाने लगे।

इसी सम्बन्ध मे में आपसे एक बात ओर कहना चाहता हू। जेसे राजहस के लिए सरोवर हे, उसी प्रकार क्या आपके लिए भारतवर्ष नही हे? क्या आपने भारत का अन्न नहीं खाया हे? पानी नही पिया हे? आपने भारत मे श्वास नही लिया हे? क्या यह शरीर भारत के अन्न–जल से नही बना?

आपने इसी भारत–भूमि पर जन्म ग्रहण किया हे। इसी भूमि पर आपने शेशव–क्रीडा की हे। इसी भूमि के प्रताप से आपके शरीर का निर्माण हुआ हे। हस ने मानसरोवर से जो कुछ प्राप्त किया हे उससे कही बहुत अधिक ऋण आपके ऊपर अपनी जन्मभूमि का हे। इस ऋण को आप किस प्रकार चुकाएगे?

आपका यह शरीर भारत मे बना है या किसी विदेश मे?

भारत मे!

फिर आपने भारत को क्या बदला दिया हे? विलायती वस्त्र पहन कर विलायती सट लगा कर विलायती बिस्कुट खाकर विलायती चाय पीकर विलायती वेषभूषा धारण करक आर विलायती भावना को अपना कर

ही क्या आप अपनी जन्मभूमि का ऋण चुकाना चाहते है? ऐसा करके आप कृतकृत्यता का अनुभव करते है?

कल एक समाचार–पत्र से मैने वह सदेश सुना था जो गाधीजी ने अमेरिका को दिया था। इतना समय नही है कि मै उस सदेश का विवरण आपको समझाऊ फिर भी सक्षेप मे मैं कहता हू।

एक वे भारतीय है जो पक्षपात के वश होकर अथवा भय के कारण ऐसे दबे हुए हैं कि जानते हुए भी सत्य नही कहते है। इसके विपरीत दूसरे वे है जो भारत की ओर से अमेरिका को निर्भय, नि सकोच होकर इस प्रकार का सदेश दे सकते है। आप भगवान् महावीर के श्रावक है। आपसे जगत् न्याय की आशा करता है। अगर आप समुचित न्याय नही दे सकते या उस न्याय की मान्यता को अगीकार नही कर सकते तो फिर ऐसा कौन करेगा?

आप पर जिसका ऋण चढा है उसका ऋण चुकाये बिना केवल खमत–खामना कर लेने से ही क्या ऋण चुक जाएगा? आप आज समस्त जीवो से खमतखामना करेगे तो क्या भारत से भी 'खमतखामना' न करेगे? भारत और भारतीय मे आधार–आधेय का सबध है। यही नही लक्षणा–वृत्ति से जो अर्थ करने की पद्धतियो मे से एक पद्धति है, भारत का अर्थ भारतीय अर्थात भारत का निवासी होता है। ऐसी स्थिति मे भारत से 'खमतखामना करने का अर्थ भारतीयो से क्षमायाचना करना है। आप आज भारत से किस प्रकार क्षमायाचना करेगे? क्या इस क्षमायाचना करने के पश्चात् भी आपकी भारत का अनिष्ट करने वाली पवृति जारी रहेगी? अगर ऐसा हुआ तो आप सवत्सरी महापर्व को जगत मे उपहास्यास्पद बनाएगे। इससे आपका भी अकल्याण होगा। आपके अन्त करण मे एक प्रकार की धृष्टता उत्पन्न होगी। [illegible] अगर आप सवत्सरी के उपलक्ष्य मे निर्मल अन्त करण से भारत [illegible] करना चाहते है तो ऐसे कर्त्तव्यो को अपनाइये जिसमे आप [illegible] हो सके। भारत का मगल–साधन करने वाली प्रवृत्तियो [illegible] और [illegible] व्यापारो का परित्याग करके ही आप [illegible] कर सकते है।

स्वाधीनता के लिए शारीरिक बल का उत्कर्ष हुआ साम्य, सघबल से प्राप्त हुआ और बन्धुता सहन शक्ति से मिली। स्वाधीनता ओर साम्य के नाम पर रक्त की नदिया बही हैं, पर बन्धुता सहन कर जाती है। वह सब को क्षमा कर देती है।

जैन–शास्त्रो मे दस प्रकार के यति धर्म कहे गये हैं। क्षमा उन सब मे प्रथम है। क्षमा के लिए अहिसकता त्याग अलोलुपता आदि अनेक गुणो की आवश्यकता है। इनके विद्यमान् होने पर ही सच्ची क्षमा आती है।

गाधीजी ने इग्लैण्ड मे बैठकर अमेरिका को जो सन्देश दिया है, वह शायद सभी भाषाओ मे प्रकाशित हुआ होगा, पर मैंने हिन्दी के समाचार–पत्र मे इस प्रकार छपा देखा है–

'अभी तक ससार की जातिया आपस मे पशुओ की तरह लडती थीं। मगर भारतीयो ने अनुभव किया कि वह कानून जो पशुवृत्ति पैदा करता है मानव जाति का नेतृत्व नही कर सकता। मैं व्यक्तिगत तौर पर हिन्दुस्तान की आजादी को खूनी तरीको से लेने के बजाय सदियो की प्रतीक्षा करने को तैयार हू। ससार रक्त–लीला से तग आ गया है और मेरा विश्वास है कि शायद भारत के भाग्य मे ही ससार को उस दयनीय दशा से छुटकारा देना लिखा हो। मैं भारत के उस महान् अहिसात्मक युद्ध मे हार्दिक सहयोग देने के लिये प्रत्येक जाति को निमत्रित करता हू।

गाधीजी ने अपने सदेश के आरम्भ मे ही खूनी लडाई लडने वाली जातियो को पशु बतलाया है। अगर गाधी जी मे आत्म–बल न होता तो लोग उनके टुकडे–टुकडे कर डालते ओर कहते–'क्या हम पशु हे? किन्तु लोग उनके आत्मबल से प्रभावित होकर ही उनके कथन मे सत्य का आभास पाते हें ओर हर्ष के साथ उनका सन्देश पढते हैं।

देखो एक भारतीय वे भी है जो भारत का नमक–पानी खा करके भी भारत के साथ धोखा कर रहे हैं और गाधीजी भी भारतीय हें जो ससार मे भारतवर्ष को एक महान् आदर्श का सस्थापक बनाकर उसका गोरव बढाने मे लगे हुए हें। वे विश्व को अहिसा का अमृत प्रदान करके उसे मोत से बचा लेने के लिए छटपटा रहे हैं।

इससे आगे चल कर गाधीजी ने उस कानून को जो शस्त्रबल और मारकाट को वेध रूप प्रदान करता हे पशु–बल बतलाया हे। वह कानून मानव जाति का नेतृत्व नही कर सकता। ऐसे कानून से विश्व की मानवता का ह्रास ही हुआ और होता ह। उसने मनुष्यता का कलकित किया हे। मनुष्यता के

उज्ज्वल पट पर वह कानून एक काला धब्बा है। उसने मनुष्य को पशु बनाने मे सहायता पहुचाई है। नवयुग के प्रभात मे श्वास लेने वाला मानव ऐसे–ऐसे कलकमय कानून को अनुसरण नहीं करेगा। कौन भला आदमी, मनुष्य को पशु बनाने वाले कानून के आगे मस्तक झुकाएगा?

जैसे लोग एक चीटी को बचाने मे भी दया मानते हैं तो मनुष्य रक्षा मे क्यो नहीं मानेगे? मगर जब पृथ्वी पर मनुष्यो के रक्त की धारा नदी की भाति प्रवाहित होती है तब साहस–पूर्वक आगे आकर उसे रोकने, उसका खुलमखुल्ला विरोध करने का सामर्थ्य उनमे कहा है? वे मरते हुए पशु को तो चाहे छुडा देगे लेकिन मानवीय युद्ध के विषय मे कहेगे–'राजाओ का विग्रह तो महाराज भरत के समय से ही चला आ रहा है लेकिन आज गाधीजी पुकार कर कहते हैं–पशु–बल वाला कानून मानव जाति का नेतृत्व नही कर सकता।'

इससे आगे चलकर गाधीजी कहते हैं खूनी तरीके से अर्थात् मारकाट करने से यदि स्वराज्य मिलता हो तो मैं सैकडो वर्षो तक बिना स्वराज्य के रहना पसन्द करूगा इतने लम्बे समय तक प्रतीक्षा करता रहूगा परन्तु मार–काट के तरीके से स्वराज्य नही लूगा।

ससार रक्तलीला से घबराया हुआ है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का एक जाति दूसरी जाति का और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का गला काटते–काटते घबरा चुका है। विश्व के इतिहास के पन्ने रक्त की लालिमा से रगे हुए हैं। दुनिया की प्रत्येक मौजूदा शासन–पद्धति खून खच्चर की भयावह स्मृति है। कौन–सा राज्य है जिसकी नीव खून से न सीची गई हो! कौन–सी सत्ता है, जो मनुष्यो का खून पिये बिना मोटी–ताजा बनी हो। आज सारा ससार ही जैसे का ध्वस विनाश और सहार के बल पर सचालित होता है। यह स्थिति घबराहट पैदा करने वाली है। आखिर मनुष्य यह स्थिति कब तक सहन करता चला जाएगा?

है, लेकिन गाधीजी क्या कहते हें? गाधीजी कहते हैं—'यूरोप एशिया और अमेरिका को अर्थात् सम्पूर्ण विश्व को रक्तपात से अगर कोई बचा सकता हे तो भारत ही बचा सकता हे।' मैं पूछता हू—क्या भारत के पास तोपे मशीनगने और बम है? नहीं तो फिर भारत दुनिया को भीषणता से किस प्रकार बचा सकेगा? इसका उत्तर यह है कि भारतवर्ष के पास पाशविक शक्ति नही है परन्तु अहिसा और सत्य की दैवी सम्पत्ति से सम्पन्न है। रक्त से रक्त नहीं धुलता—पशुबल से पशुबल का विनाश नही होता। रक्त धोने के लिए निर्मल नीर अपेक्षित हे और पशुबल की सत्ता को भग करने के लिए दैवी बल की आवश्यकता है। भारतवर्ष ने अहिसा और सत्य का जो झडा गाडा है। उस झडे की शरण ग्रहण करने से ही ससार की रक्षा होगी। अन्य देश जहा तोपो और तलवारो की शिक्षा देते हैं वहा भारतवर्ष अहिसा का पाठ सिखाता है। भारत ही अहिसा का पाठ सिखा सकता है किसी दूसरे देश की सस्कृति मे यह चीज ही नजर नही आती। बन्धुता का जन्म भारत मे ही हुआ है। भारत की स्त्रियो ने ही शान्ति और प्रसन्नता के साथ लाठियो की मार खाकर दुनिया को अहिसा की महत्ता दिखलाई है। ऐसी क्षमता किसी विदेशी नारी मे है? हर्गिज नही।

अहिसा का अनमोल वरदान जब भारत ससार को दे रहा है तब भी क्या आप चर्बी के वस्त्र पहनेगे। अहिसा की प्रतिष्ठा के लिए मैं तो मिल मात्र के कपडे का निषेध करता हू।

अहिसा की प्रतिष्ठा के लिए बडी कीमत चुकाने की आवश्यकता है। भारतीय लोग आज अपने प्राणो का मूल्य देकर अहिसा की प्रतिष्ठा करने मे सलग्न हैं। स्वय मर जाना स्वीकार है पर मारने वाले को मारना स्वीकार नहीं यहा तक कि उस पर रोष का भाव उत्पन्न होने देना भी स्वीकार नही इस प्रकार की दृढता और साहस मे अहिसा की प्रतिष्ठा होती हे। भारत के धार्मिक इतिहास को देखो जैन शास्त्रो के कथानुयोग का पारायण करो तो विदित होगा कि हमारे पूर्वजो ने अहिसा का आत्मबल प्राप्त करने के निमित्त क्या किया हे? ऐसी स्थिति मे आप से अगर साधारण त्याग की आशा की जाती है तो क्या वह भी पूरी न करोगे?

भारत के वस्त्र चले जाने से भारत का गोरव मरा तो नहीं था लेकिन विलुप्त अवश्य हो गया था। अब ज्यो भारत ने अपने वस्त्र बदले वही पुराने अपने देश के वस्त्र अपनाये त्यो ही भारत मे एक नवीन दिव्य शक्ति का आविर्भाव हुआ हे। नल करकोटक के काटने से कुवडा हो गया था, परन्तु यम न उसे कपडे देकर कहा—'लो यह कपडे पहनो इन्हे पहनते ही पहले की

भाति शरीर सुन्दर–सुडौल बन जायेगा। यह पुराण का आख्यान है। भारत के साथ तुलना करने के लिए यह बडे काम का है। जैसे नल दमयन्ती के सामने उन वस्त्रो को पहनते ही पूर्व की भाति दिव्य–शरीर बन गया था उसी प्रकार भारतवर्ष भी ज्यो–ज्यो अपने वस्त्रो को अपनाता जाता है त्यो–त्यो अपने पूर्ववर्त्ती गौरव को प्राप्त करता जाता है।

भारतीय लोगो ने हिन्दुस्तान को नगा करके मेचेस्टर के कपडे पहने थे इस कारण उनमे कुरूपता आ गई थी। अब मेचेस्टर के कपडे फेक कर अपने देश के शुद्ध कपडे पहनते ही उनमे एक प्रकार की तेजस्विता आने लगी है। गाधीजी द्वारा अमेरिका को दिया गया सन्देश उस तेजस्विता का जीवित प्रमाण है।

अगर किसी की फासी रुपया देने से छूटती हो तो आप लोग इसके लिए कितना चन्दा देगे? यदि सरदार भगतसिह की फासी रुपया देने से कट सकती तो मे समझता हू गरीब–से–गरीब भारतीय भी भूख का कष्ट सहन करके पाच रुपया प्रसन्नतापूर्वक दे देता। जब एक व्यक्ति की फासी के विषय मे यह बात है तो सम्पूर्ण ससार को बचाना क्या उससे अत्यधिक मूल्यवान नही है? व्यक्ति चाहे जितना महान हो फिर भी समष्टि के मुकाबले उसकी महत्ता कम ही है। किसी भी अवस्था मे एक व्यक्ति समष्टि से अधिक वजनदार नही हो सकता क्योकि समष्टि के वजन मे उस व्यक्ति का वजन भी सम्मिलित है और साथ ही अन्य व्यक्तियो का भी जो उस समष्टि के अग है। अतएव व्यक्ति की अपेक्षा उस समूह का जिसमे वह स्वय भी सम्मिलित है सदैव अधिक मूल्य ठहरेगा। इसलिए मैं कहता हू कि एक व्यक्ति की रक्षा की अपेक्षा सम्पूर्ण विश्व की रक्षा का कार्य अधिक महत्वपूर्ण उपयोगी और [illegible] है। गाधीजी ने अमेरिका मे जो सन्देश भेजा हे उसमे समस्त ससार [illegible] का प्रयोजन है। ससार अहिसा की आराधना द्वारा ही फासी [illegible] पा सकता है। अहिसा देवी की वात्सल्यमयी गोदी मे जन प्रत्येक

भारत का यह परम सौभाग्य है कि उसे चिरन्तन प्राचीनकाल से अहिसा का आदर्श सिखलाया जाता रहा है। भारत मे अहिसा पर इतना अधिक जोर दिया गया है कि उसी को परम धर्म माना जाता है। भगवान् महावीर ने इस दैवी भावना का जीवन–व्यवहार मे प्रयोग करके उसकी व्यावहारिकता के विषय मे की जाने वाली समस्त शकाओ का निरसन किया था और आज गाधीजी ने पुन उस भावना को सजीव रूप प्रदान करने का भगीरथ प्रयत्न किया है। हा, अगर भारत मे अहिसा की भावना पहले से ही विद्यमान न होती तो कौन जाने गाधीजी किस पथ पर अग्रसर हुए होते? अगर उन्होने हिसा का पथ ही निर्माण किया होता तो, भगवान् ही जाने, कौन उनकी बात सुनता? लेकिन नही, भारत अहिसा की महिमा समझता है। इसी के बल पर तो गाधीजी आज अहिसा का सिहनाद अमेरिका तक पहुचा रहे है। इस स्थिति मे आपका यह परम कर्त्तव्य है कि आप गाधीजी के स्वर मे स्वर मिला कर उनके नाद को अधिक बुलन्द बनावे और अपने व्यवहार मे उसकी सत्यता प्रमाणित करे।

गाधीजी ने अपने सन्देश के अन्त मे ससार की समस्त जातियो को अहिसा के युद्ध मे हार्दिक सहयोग देने के लिये आमत्रित किया है।

आप यह न भूल जाए कि गाधीजी ने जो आमत्रण दिया है वह अकेले गाधीजी का आमत्रण ही है। गाधीजी देश के प्रतिनिधि होकर गये हैं। अतएव उनका दिया हुआ आमत्रण समस्त भारत का आमत्रण है। इसका अर्थ यह हुआ कि आज सारा भारतवर्ष अहिसा–युद्ध मे सहयोग देने के लिए इतर देशो को निमत्रित कर रहा है। आप भारतीय हैं, इसलिए वह निमत्रण आपको भी दिया है।

इस निमत्रण से आपके ऊपर कितना उत्तरदायित्व आ पडा है? आप दूसरो को सहयोग के लिए आमत्रित करेगे तब आप स्वय क्या करेगे ? क्या आप सर्वप्रथम सहयोग नही देगे ? बल्कि दूसरो से तो आप केवल सहयोग चाहते हैं और भी वह सहयोग सिर्फ हार्दिक ही सारा युद्ध तो आपको ही लडना है।

भारत रूपी मानसरोवर के राजहसो! अगर तुम इतना भी न कर सके तो भारत का ऋण किस प्रकार चुकाओगे ?

मैं सघ के सम्बन्ध मे आपसे कह रहा था। अगर आप सघ की विजय करवाना चाहते ह तो सघ का सगठन करो। वर्त्तमान युग इतिहास मे एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हे। वह ऐसा युग हे जिसका भविष्य के साथ गहरा सम्बन्ध रहेगा। जेनो की सख्या 11–12 लाख के करीब हे। यह सख्या

अब पचास करोड की जनसख्या मे नगण्य–सी है, फिर भी आप सब सगठित हो जाए तो वीर–सघ की प्रतिष्ठा बढा सकते हैं। अगर आप मे सगठन का बल न होगा तो आप किसी गिनती मे न रहेगे अतएव सगठित होकर अपनी शक्ति केन्द्रित करो और वीर सघ को शक्तिशाली बनाओ। सघ सेवा का बहुत बडा माहात्म्य है। यह कोई साधारण कार्य नही है। सघ की उत्कृष्ट सेवा करने से तीर्थकर गोत्र का बध हो सकता है। अगर आप सघ की सेवा करेगे तो आपका ही कल्याण होगा।

भारत की बन्धुता की अलौकिक भावना को जागृत करने का एक उत्कृष्ट साधन तप भी है। भारत मे छह करोड आदमी भूखो मरते हैं। चौबीस करोड भी दिन प्रतिदिन भोजन करते है तो अगर वे भगवान् की आज्ञा के अनुसार एक मास मे छह पोषध (परिपूर्ण उपवास) कर ले तो एक भी आदमी भूखा न रहे। अगर छह उपवास आपसे न हो सके तो चार दो या कम से कम एक ही करो। महीने मे छह पोषध करने से आत्मिक लाभ तो होगा ही, साथ ही साथ और भी लाभ होगे। डॉक्टरो की शरण नही लेनी पडेगी, अपवित्र दवाइया नही खानी पडेगी। और कॉड–लीवर–ऑइल जैसी घृणित चीजो से बच रहोगे।

आजकल अपने समाज मे ज्ञान की बहुत कमी हो रही है। अभी एक–दो दिन पहले सर्वधर्मसम्मेलन का प्रश्न मेरे सामने आया था। मैं समाज के नियमो से बधा हुआ हू, अब वहा कौन जाये? शिक्षा की कमी के कारण समाज मे अच्छे विद्वान न होने पर समाज का मुख कौन उज्ज्वल करे?

दवदहनजटाल ज्वालमालाहताना
परिगलित लताना म्लायता भूरुहाणाम्
अलि जयिधर! शैल श्रेणी श्रृगेषु तोय
वितरसि बहु कोय श्रीमदस्तावकीन ।।

कवि ने अलकार–युक्त भाषा मे कहा है–दुष्काल पडा हुआ है। ग्रीष्म की लपटे दावानल की तरह फेल रही है। उनमे बडे–बडे पेडो की शाखाए सूख–सूख कर गिर रही हैं। ससार उजडा सा प्रतीत होता है। सब जीवधारी पानी की ओर नजर लगाये बैठे हैं। ऐसी भयकर स्थिति मे मेघ की गर्जना हुई, बिजली का कडाका भी हुआ और अन्त मे पानी भी बरसा। पर बरसा कहा? पहाड की चट्टानो पर! जहा पेड सूख रहे थे वहा न बरसा! इस पर कवि कहता है–हे मेघ! तुझे भी लक्ष्मी का मद चढा है। जहा आवश्यकता है वहा तो बरसता नही और जहा आवश्यकता नही वहा मूसलाधार गिरता है!

यह उलाहना किसको है। यह बाईस सम्प्रदाय एक बगीचा है! आनन्द और कामदेव जेसे श्रावक और श्रेणिक जैसे राजा इसके अग रक्षक और पोषक थे। वे अब नही रहे। रह गये हैं आप लोग, सो आप वहा खर्च करते हैं जहा आवश्यकता नही–जैसे विवाह–शादी, मृत्यु भोज आदि मे और जहा आवश्यकता है वहा अनुदार बन जाते हैं। ऐसा करने से समाज के बच्चे इधर–उधर भटकते फिरते हैं। कई विद्याभ्यास की प्रबल अभिलाषा होने पर भी विद्या से वचित रह जाते हैं और कई तो दु खो के मारे विधर्मी और विजातीय बनकर–न करने योग्य काम भी करने लगते हैं।

आप मे सामर्थ्य है और उदारता भी है, पर है वह कवि के कहे हुए पानी के समान। आप अनाचार फेलाने वाली कुरीतियो मे नाच–गाने मे आतिशबाजी मे और 'विदौरा' निकालने मे हजारो फूक देते हैं, पर ज्ञान प्रचार ओर शिक्षा–प्रचार के लिए मितव्ययिता का सबक रटने लगते हैं।

मित्रो! आप लोग बादाम की कतली ओर पिश्ते की रोटिया खा–खा कर समाज को कब तक रुलाते रहोगे? गरीबो के मुह की रोटी छीन कर कब तक गुलछर्रे उडाओगे? गरीबो का देख–देख कर ही गाधीजी बकरी का दूध लेते हें–गाय भैंस का दूध भी नही लेते।

लन्दन मे चुगी वालो ने गाधीजी से पूछा– आपके पास महसूल के योग्य क्या सामान हे? लेकिन उनके पास क्या धरा था? उनके साथ वही सामान था जो किसी गरीब से गरीब आदमी के पास ही हो सकता था। जहा भारत का सच्चा सेवक सारे देश का एकमात्र मान्य प्रतिनिधि इतनी गरीबी धारण किय हा वहा आप अगर भोग–विलास का जीवन विताए और बादाम

की रोटियो खाकर जिव्हा लोलुपता के शिकार बने रहे क्या यह शोचनीय बात नही है? जहा व्यय करने से धर्म की जागृति होती है वहा सम्पत्ति का व्यय न करके विवाह शादी मे फूको, जीमनवारो मे बर्बाद करो, तो कवि की तरह मुझे भी आप लोगो से कहना पडेगा कि मेघ की तरह आपको अपनी लक्ष्मी का गर्व है। आज आप स्वेच्छा से इन बुरे और अनावश्यक खर्चो को भले ही न रोके समय आ रहा है, तब आपको विवश होकर रोकना पडेगा। उस समय आपको यह खर्च रोकने पडेगे और पश्चाताप करके रोकने पडेगे। भाइयो आप लोग बुरे कार्य मे धन व्यय करते हैं। इससे आपकी शक्ति मारी गई है और समाज का ह्रास हो रहा है। इसलिए धन का व्यय करते समय विवेक से काम लो। अपनी और समाज एव देश की बुराई–भलाई का विचार करो। औचित्य को स्मरण मे रखो। शिक्षा–प्रचार की ओर लक्ष्य दो। कुरिवाजो को छोडो। अनाचार फैलाने वाली प्रथाओ का परित्याग करो। बाल–विवाह, वृद्ध–विवाह आदि को रोको। ऐसा करने से ही समाज का उत्थान होगा।

आपेदिरेऽम्बर पथ परित पतगा।
भृगा रसाल मुकुलानि समाश्रयन्ति।।
सकोचमचति सरस्त्वयि दीनदीनो।
मीनो नु हन्त कतमा गतिमभ्युपैतु।।

जल से परिपूर्ण सरोवर था। किसी तरह वह सूखने लगा। उसे सूखते देखकर कवि कहता है–हे सरोवर! जब तुम सूख जाओगे तो तुम्हारे तट पर बैठकर कलरव करने वाले पक्षी दूसरी जगह चल देंगे। तुम्हारे कमलो पर गुजार करने वाले रसिक भौरे फूले हुए आम्रवृक्षो को अपना विलासस्थल बना लेगे। परन्तु तुम्हारे सूख जाने पर बेचारी मछलियो की क्या दशा होगी? ... जाएगी? वे तो तुम्हारी गोदी मे जन्मी हैं उन पर तो दया करो।

कवि की इस उक्ति मे करुणा रस कूट–कूट कर भरा है। कवि ... है–जिन्हे अपने पखो का बल है वे तो उड जाएगे लेकिन जिन्हे किसी ... नही है सिर्फ जल का ही बल है वे अनन्योपाय मछलिया क्या ... सिर्फ तुम्हारा ही भरोसा है।

वे भी अन्य का आश्रय ले लेगे। मगर जो मीन के समान हैं अनन्यगति हैं जिन्हे आपके सिवाय और दूसरे का आसरा नहीं है उन्हे आप न देगे तो वे क्या करेगे? तुम्हारे न देने से उनकी क्या गति होगी? अतएव जो गरीब आपकी शरण है उन पर दया रखो। जब उन गरीबो मे त्राहि–त्राहि मची हो तब आप वृथा और हानिकारक कार्यों मे धन का व्यय करे, यह उचित नहीं है।

अरे ओ सज्जनो! व्हाला पियो नी प्रेम का प्याला।

धरी प्रभु नामनी माला, करो जीवन सफल आजे।।

आज जीवन सफल करने का दिन है। इसे यो ही न जाने देना।

हा, तो मदनरेखा ने अपने पति से कहा–'नाथ! आप अपने भाई पर से वैर का भाव विसर जाइये।'

मदनरेखा के उपदेश से युगबाहु की आखे खुलीं। उसने हाथ जोड कर अपने सिर से लगाये और सबसे क्षमा याचना की। युगबाहु ने मदनरेखा के उपदेशामृत का पान करके राग–द्वेष का त्याग कर दिया! उसके अन्त करण मे समभाव का सचार हो गया।

आप लोग भी आज सिद्धशिला से लेकर नरक–निगोद तक के जीवो से क्षमायाचना करेगे। आपको पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजस्काय, वायुकाय वनस्पतिकाय, कीडे–मकोडे, पशु–पक्षी आदि–आदि की विभिन्न योनियो मे भटकते–भटकते प्रबल पुण्य के योग से यह सुअवसर मिला है कि आप धर्मतत्व आत्म तत्व आदि को समझ कर, प्राणीमात्र से वैरभाव भूलकर सबसे खमतखामणा कर सके। इस सुयोग को सफल करने के लिए आज का दिन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जैसे अर्जुन ने राधावेध साधा था, उसी प्रकार सध्या के समय प्रतिक्रमण को साधकर सब प्राणियो से शुद्ध अन्त करण के साथ क्षमा की याचना करोगे तो अर्जुन के समान आपका कार्य सिद्ध होगा। दो घडी के लिए भी अगर आपके परिणामो मे कोमलता समता और शुद्धता आ जायेगी तो वह साधारण बात होगी। युगबाहु को देखो, उसने दो ही घडी मे क्या का क्या कर डाला! उसने स्वर्ग के योग्य अपनी स्थिति बना ली। युगबाहु पाचवे देवलोक मे दस सागर आयुवाला देव हुआ ओर इसके विपरीत मणिरथ चौथे नरक मे इतनी ही स्थिति से नारकी हुआ।

युगबाहु का स्वर्गवास होते ही मदनरेखा ने सोचा– अब यह घर मेरा नही हे। इस घर मे रहते हुए मेरे सतीत्व की रक्षा होना कठिन हे।

इस प्रकार सोचकर मदनरेखा जगल मे निकल गई। वही उसने पुत्र का प्रसव किया। किसी–किसी जगह ऐसा कथन दिया गया हे कि वह अपने नवजात शिशु को छोडकर चल दी परन्तु यह कथन प्रामाणिक नही हे।

वास्तविक बात यह है कि मदनरेखा ने अपनी आधी साडी फाडकर शिशु को ओढा दी और झोली बनाकर उसे सुला दिया। इसके अनन्तर वह पास के सरोवर मे स्नान करने चली गई। उसने सोचा—मैं अभी सरोवर मे स्नान करके आती हू तब तक बालक वस्त्र की झोली मे पेड से टगा रहेगा।

ऐसा सोच कर मदनरेखा सरोवर पर पहुची, सयोगवश उस सरोवर पर एक मदोन्मत्त हाथी पानी पीने आया था। उसने मदनरेखा को सूड मे पकडकर आकाश मे उछाल दिया। उसी समय आकाश—मार्ग से एक विद्याधर जा रहा था। उसने ऊपर—ही—ऊपर मदनरेखा को झेल लिया। किन्तु मदनरेखा का रूप लावण्य देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और दुर्भावना से प्रेरित हो कर उसे लेकर चलता बना। बहुत अनुनय विनय करने पर भी नतीजा कुछ न निकला। विद्याधर उसे लेकर अपने घर की ओर चल पडा। मदनरेखा सोचने लगी—मैं घर की विपदा की मारी वन मे आई, अब वन मे भी यह दूसरी विपदा आ पडी। एक दुष्ट के पजे से छूटी तो दूसरे दुष्ट के चगुल मे फस गई! आह! मेरे बच्चे की अब क्या दशा होगी?

मगर मदनरेखा साधारण महिला नहीं थी। उसने किसी प्रकार धीरज बाध विद्याधर से पूछा—' आप कहा जा रहे थे और कहा जाने के लिये लोट पडे है?

विद्याधर—मेरे पिता मुनि हैं। उन्हीं के दर्शन करने जा रहा था। बीच मे तुम मिल गई इसलिये घर लौट रहा हू।

मदनरेखा—आप दर्शन करने जा रहे थे सो तो मैं मिल गई। अगर आप दर्शन कर लेते तो न जाने क्या मिलता? कितना लाभ मिलता! अगर आपकी इच्छा दर्शन करने की न हो तब भी कृपा करके मुझे तो मुनि के दर्शन करा दीजिये।

युगबाहु पाचवे स्वर्ग मे देव हुआ था। उसने अवधि–ज्ञान से मदनरेखा का आगमन जाना। वह सोचने लगा–धन्य हे मदनरेखा मेरी पूर्वभव की प्रियतमा जिसने दो ही घडी मे अमृत पिलाकर मुझे अमरता (देवत्व) प्रदान की हे।

देव अपने सब काम–काज छोड कर मदनरेखा के दर्शन करने आया। आते ही उसने मदनरेखा को मस्तक झुकाया। यह देखकर विद्याधर कहने लगा–स्त्री का रूप सोन्दर्य देवताओ को भी मुग्ध बना देता है। इस देव को देखो, मुनिराज मौजूद हें पर उन्हे तो नमस्कार किया नहीं पहले सुन्दरी को नमस्कार करता है।

मुनि ने समझाया–तुम अबोध हो। तुम्हे वास्तविकता घटना का पता नही। यो तो यह इस देव की पूर्व भव की पत्नी है और यो उसकी गुरु भी है। इसी की शिक्षा के प्रताप से उसे देवत्व प्राप्त हआ है।

विद्याधर अपने विचार पर लज्जित हुआ। उसने क्षमायाचना की और मन मे सोचा–मुनिराज की शरण को धन्य हो! में सीधा घर चला जाता तो इस सती स्त्री से छेडखानी करता। वहा यह देव भी अवश्य आता। उस समय मेरे व्यवहार से इसके कोप का पार न रहता ओर न जाने क्या अनर्थ हो जाता! मुनि महाराज की शरण आने से वह भावी अनर्थ टल गया ओर मैं पाप से भी बच गया। धन्य मेरा भाग्य!

मित्रो! आप लोग भी पराई स्त्री को माता मानते हें न?

'हा'

पर–स्त्री अगर माता हे तो उससे जन्म लेने वाले आपके भाई हुए। इसलिये सब जीवो को अपना भाई मान कर उन पर दया करो तो आपको आनन्द मिलेगा।

देव ने सती मदनरेखा से पूछा– अब आप क्या चाहती हें?

मदनरेखा जिस बालक को पेड की शाखा मे झोली बाध कर सुला आयी थी उसे मिथिला का पद्मरथ ले गया। पद्मरथ के कोई सन्तान नही थी। उसने इसी बालक को सन्तान मान कर उसका यथोचित लालन–पालन किया। यही बालक अन्त मे राजर्षि नमि के नाम से विख्यात हुआ।

देव के प्रश्न के उत्तर मे मदनरेखा ने वन मे पुत्र–जन्म होने की घटना कह सुनाई ओर उसके पास पहुचने की तथा साध्वियो का दर्शन करने की अभिलाषा प्रकट की। देव ने अपने ज्ञान मे दखा तो उसे पता चला कि मदनरेखा का बालक मिथिला नगरी मे राजा पद्मरथ के पास हे। वह सती

को मिथिला मे ले गया। मिथिला मे आकर देव ने पूछा—पहले बालक से मिलोगी या साध्वियो का दर्शन करोगी? मदनरेखा को बालक का समस्त वृत्तान्त विदित हो चुका था। उसने सोचा बालक का पालन—पोषण तो समुचित रूप से हो ही रहा है। सभव है उसे देख कर मातृ—हृदय सुलभ मोह जागृत हो जाए और मैं फिर जगत् के जगल मे पड जाऊ। अतएव वह देव से बोली—मैं अभी लडके को देखना नही चाहती। कृपा कर मुझे साध्वियो के पास ले चलिये।

देव ने मदनरेखा को साध्वियो के पास पहुचा दिया। मदनरेखा ने दीक्षा धारण की और धर्म आराधना करती हुई विचरने लगी।

मदनरेखा का एक लडका चन्द्रयश सुदर्शनपुर मे ही था। मणिरथ की मृत्यु के पश्चात् चन्द्रयश ही सुदर्शनपुर के राजसिहासन पर आसीन हुआ। दूसरा लडका नमिराज मिथिला का राजा हुआ। एक बार इन दोनो राजाओ मे एक हाथी के लिये आपस मे झगडा हो गया। दोनो ओर से युद्ध की तयारिया होने लगी। खून खच्चर होने की नौबत आ पहुची।

महासती मदनरेखा ने दोनो भाइयो को समझा कर रक्तपात टालने देने के विचार से अपनी गुरु आर्याजी से आज्ञा मागी। पहले तो उन्होने सोचा—साध्वियो को राजकीय प्रपच मे पडना ठीक नही है। किन्तु बाद मे मदनरेखा को आज्ञा दे दी। मदनरेखा नमिराज के पास आई और उसे समझाया—राजन तुम आपस मे भाई—भाई होकर रक्तपात करने पर क्यो उतारू हो? तुम्हे ऐसा तो नही करना चाहिये। चन्द्रयश तुम्हारे बडे भाई हैं। तुम्हे उनका आदर करना उचित है।

नमिराज को आश्चर्य हुआ कि चन्द्रयश के साथ भला मेरा कैसा भाई नाता? अतएव उसने बात न मानी।

मित्रो! आप लोग भी अगर इन दोनो भाइयो की भाति प्रेमपूर्वक सब प्राणियो के प्रति वैरभाव त्याग कर क्षमायाचना करेगे तो निश्चय ही आनन्द की प्राप्ति होगी।

चन्द्रयश ने अपना सम्पूर्ण राज्य नमिराज को सौंप कर दीक्षा ले ली। कुछ दिनो पश्चात् राजा नमि ने भी ससार से विरक्त हो कर दीक्षा ग्रहण की।

मित्रो! हमारा पथ शान्ति का पथ है। सब जीवो को शान्ति पहुचाते हुए सवत्सरी पर्व की आराधना करोगे तो आनन्द का लाभ होगा।

महावीर भवन, देहली ता 16 1 31

10. परमतत्त्व की उपलब्धि

घरम जिनेसर मुझ हियडे वसो, प्यारा प्राण समान।
कवहु न बिसरू हो चितारू नहीं, सदा अखण्डित ध्यान।। घरम.।।

प्रार्थना जीवन और प्राण का आधार है। प्रार्थना ही वह अनुपम साधन है जिसके द्वारा प्राणी आनन्द–धाम मे स्वच्छन्द विचरण करता है। जो प्रार्थना प्राणरूप वन जाती है वह भले ही सीधी–सादी भाषा मे कही गई हो, ग्राम्यभाषा द्वारा की जाती हो या प्राकृत–सस्कृत भाषा द्वारा की जाती हो, प्रार्थना करने वाले को चाहे सगीत से परिचय हो या न हो, उसके स्वर मे लालित्य हो या अथवा न हो वह प्रार्थना सदैव कल्याण–कारिणी होगी। आचार्य मानतुग ने कहा है–

आस्ता तव स्तवनमस्त समस्त दोष
त्वत्सकथऽपि जगता दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरण कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाजि।।

अर्हन्त अवस्था और निर्वाण प्राप्ति की कथा पूर्ण श्रद्धा के साथ श्रवण करने से, सम्यक् प्रकार से जान लेने पर आपके स्वरूप को परोक्षरूपेण जान लेने से अज्ञान का अधकार विलीन हो जाता हे।

मगर परोक्ष ज्ञान मे भी परिपूर्ण अवस्था की आवश्यकता हे। जेसे प्रभा जान लेने पर सूर्य के विषय मे अनास्था का अवकाश नहीं रहता उसी प्रकार आपकी कथा–वार्त्ता को जान लेने पर जिसके अन्त करण मे अनास्था का लेश मात्र भी नहीं रहता वही पुरुष पावन बन जाता है।

प्रार्थना का सम्बन्ध भाषा या जिव्हा से नही। जिव्हास्पर्शी भाषा तो शुक भी बोल सकता है। मगर वह भाषा केवल प्रदर्शन की वस्तु हे। निर्मल अन्त करण मे भगवान के प्रति उत्कृष्ट प्रीतिभावना जब हो उठती है तब स्वयमेव जिव्हा स्तवन की भाषा उच्चारण करने लगती हे। स्तवन के उस उच्चारण मे हृदय का रस मिला होता है। ऐसा स्तवन ही फलदायी होता है। प्रार्थना के विषय मे जो प्रवचन किया जाता हे उसका एक मात्र प्रयोजन भी यही है कि सर्वसाधारण के हृदय मे प्रार्थना के प्रति प्रीति का भाव उत्पन्न हो जाए–प्रार्थना मे अन्त करण का रस मिल जाए।

यहा प्रश्न हो सकता है कि सूर्य की प्रभा पर तो विश्वास होता है क्योकि प्रभा की लालिमा प्रत्यक्ष दीख पडती है साथ ही प्रभा के पश्चात सूर्य का प्रतिदिन निकलना भी दिखाई देता हे। किन्तु प्रभा को देख कर सूर्य पर विश्वास करने की भाति भगवत्कथा–वार्ता से भगवान् का या भगवान् पर श्रद्धान केसे किया जा सकता हे? परमात्मा सूर्य की भाति कभी प्रत्यक्ष नही होता है।

इस सम्बन्ध मे थोडा–सा कथन करना आवश्यक हे। मै पूछता हू, भूतकाल मे तो सूर्य की प्रभा आपने देखी हे लेकिन भविष्य मे उदित होने वाले सूर्य को ओर उसकी प्रभा को आपने कभी देखा हे? अगर नही देखा तो भूतकालीन प्रभा और सूर्यमडल से आपको भविष्य की प्रभा या सूर्यमडल पर विश्वास होगा या नही?

'होगा।

'सो केसे? जो अब तक नही देखा उस पर विश्वास केसा?

भूतकाल मे सूर्य ओर प्रभा को देखने से भविष्य के सूर्य ओर उसकी प्रभा का अनुमान करगे।

तो इससे प्रकट हुआ कि भूतकाल मे जो सूर्य उदित हुआ था वही भविष्य म उदित होगा यह आपका पूर्ण विश्वास हे। लेकिन भूतकाल मे अगर

सूर्योदय हुआ था तो भविष्य मे भी होगा इसका प्रमाण क्या? भूतकाल का देखना भविष्य का देखना तो नही कहला सकता। भूतकालीन सूर्य का प्रत्यक्ष भविष्य के लिए अनुमान ही ठहरता है। उसे प्रत्यक्ष तो नही कहा जा सकता।

जिस प्रकार भूतकाल सम्बन्धी सूर्य के ज्ञान से भविष्य कालीन सूर्योदय का अनुमान किया जाता है और उसमे सन्देह नही होता, इसी प्रकार परमात्मा के विषय मे भी निश्शक श्रद्धान होना चाहिये। भूतकाल मे ऐसे अनेकानेक महात्मा हुए है जिन्हे ज्ञान हुआ था और जिन्होने परमात्मा का साक्षात किया था। उन्होने अपनी परमात्मा सम्बन्धी अनुभूति को अपनी वाणी द्वारा सर्वसाधारण के लिये प्रकाशित किया है और कहा है कि परमात्मा के प्रति निश्चल श्रद्धा रखने से श्रद्धावान स्वय परमात्मा-पद प्राप्त कर लेता है। अतएव प्रभा को देख कर जैसे सूर्य का अनुमान करते हो, उसी प्रकार महात्मा पुरुषो की वाणी से परमात्मा पर भी विश्वास करो।

अनुमान को प्रमाण माने बिना काम नही चल सकता, इसी प्रकार आगम को भी प्रमाण माने बिना काम नही चलता। लोकोत्तर व्यवहार मे तो पद-पद पर महात्माओ के वचनो की आवश्यकता होती है--उनके वचनो के बिना मुमुक्ष को अज्ञान के अधेरे मे भटकना पडेगा, परन्तु लोक-व्यवहार मे भी आगम अर्थात् शब्द प्रमाण की आवश्यकता है। मुमुक्ष जीव जिस अपरिचित मार्ग पर आरूढ होता है वहा पथप्रदर्शक कौन है? आगम के बिना वह किस ओर कदम बढाएगा? व्यवहार मे माता-पिता, बन्धु आदि हितैषी जनो के वचन के अनुसार प्रवृत्ति की जाती है लेन-देन आदि व्यवहार किया जाता है तो क्या दिव्य ज्ञानी महात्मा पुरुषो की वाणी मान्य नही होनी चाहिये? अदालत साहूकार की बहिया भी प्रमाण के रूप मे स्वीकार करती है, और तुम निस्पृह, परम करुणाशील ससारोपकारक महात्माओ द्वारा प्ररुपित निर्दोष शास्त्रो को भी स्वीकार न करो तो आप ही अपना अहित करोगे। सूर्य का प्रकाश फैलने पर भी अगर कोई आख मूदकर चलेगा तो वही ठोकर खाएगा। इसमे सूर्य का क्या बिगडेगा? महात्माओ की वाणी को प्रमाणभूत न मानोगे तो तुम्ही [illegible]। यह कहा जा सकता है कि भूतकाल मे किसी को ईश्वर का [illegible] हुआ, यह बात हमारी समझ मे कैसे आये? यह मानने का आधार [illegible] किसी को परमात्मा का प्रत्यक्ष हुआ था?

तो उसके ब्यौरे के विषय मे है। इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि भिन्न–भिन्न शास्त्र ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं और उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति का भी समर्थन करते है। ईश्वर के स्वरूप–वर्णन मे भेद होने पर भी यह स्पष्ट है कि सब वर्णनो मे से किसी न किसी का वर्णन सत्य और सम्पूर्ण ही है।

इसके अतिरिक्त जो वस्तु–तत्व केवल श्रद्धागम्य है, उसे श्रद्धा द्वारा ही जाना जा सकता है। तर्क का उसमे वश नही चलता। तर्क तो वह तराजू है जिस पर स्थूल पदार्थ ही तोले जा सकते हैं। तर्क मे स्थिरता भी नहीं होती। वह पारे की तरह चपल है। सर्वत्र उसका साम्राज्य स्वीकार करने से मनुष्य–समाज अत्युपयोगी और सत्य तत्व से अपरिचित ही रह जायेगा। तात्पर्य यह है कि जैसे भूतकालीन सूर्य से भविष्यकालीन सूर्य का अनुमान किया जाता है उसी प्रकार महात्माओ के वचनो से ईश्वरत्व के विषय मे श्रद्धा रखनी चाहिये।

अगर आपका अस्तित्व शरीर से भिन्न न होता अर्थात् शरीर ही आत्मा होता तब तो मृतक शरीर और जीवित शरीर मे कुछ अन्तर ही न होता। मगर जीवित और मृत शरीरो से भिन्न कोई और तत्व है, जिसकी विद्यमानता मे शरीर जीवित कहलाता है और जिसके न रहने पर वह शरीर मृत कहलाने लगता है। यही तत्व सूक्ष्म आत्मा है और वह हाड मास आदि शरीर के अवयवो से तथा समस्त शरीर एव इन्द्रियो से भी भिन्न है।

जड को जड़ कहने वाला आत्मा है। आत्मा का अस्तित्व प्रमाणित करने वाला आत्मा है। नाना प्रकार की अभिलाषा करने वाला आत्मा है। यही नहीं वरन् जो आत्मा का निषेध करते हें वे स्वय ही आत्मा हैं, पर वे इस तथ्य को जानते नही हें। पदार्थो को अपने आप का ज्ञान नही होता, इन सब को जानने वाला आत्मा हे। आत्मा दृष्टा हे पदार्थ दृश्य है। आत्मा ज्ञाता हे पदार्थ ज्ञेय हैं।

जेसे अपने कान नेत्र नाक आदि अवयव हैं वेसे ही दूसरो के भी हें। में दोनो के अवयव देख रहा हू, लेकिन दूसरो के आख कान आदि अवयव मेरे नहीं हें यह में जानता हू। जिस प्रकार में दूसरो के आख कान आदि को अपना नही मानता इसी प्रकार अपने आख नाक कान आदि अवयवो के विषय मे भी भेद ज्ञान हो जाना चाहिये। यह ज्ञान हो जाना चाहिये कि यह अवयव भी मरे नहीं हें। मगर आत्मा दूसरे के शरीर को तो अपना नहीं मानता किन्तु जिस शरीर मे आप बेठा हे उसे अपना लेता हे। शरीर के लिए अपनापन ही परमात्मतत्व की अनुभूति म बाधक हे।

ऐसी ही भूलो से जो वस्तु दूर की है। वह पास की बन जाती है और जो पास की है वह दूर की बन जाती है। स्तुति मे कहा भी है–

ज्यो पनिहारी कुम्भ न विसरे।

पनिहारी मनुष्य है और कुम्भ मिट्टी ताबे या पीतल के होते हैं। फिर भी कभी–कभी पनिहारी शरीर की अपेक्षा भी घडे पर अधिक ध्यान देती है। लेकिन अधिक ध्यान देने से क्या घडा आत्मा बन जाता है?

'नही।

नट जब बास पर चढ कर अपना कौशल दिखलाता है तब दर्शक उसकी ओर ध्यान लगाते हैं, पर उसका ध्यान बास पर इस प्रकार केन्द्रित रहता है कि शरीर को भले ही भूल जाये पर बास को पल भर भी नही भूलता। नट बास पर इतना अधिक ध्यान देता है तो क्या बास नट का आत्मा बन जाता है?

कदापि नही।

पलक न विसरे पद्मणि पियु भणो।

पतिव्रता नारी अपने पति को शरीर से अधिक मानती है। पति के प्रेम से प्रेरित होकर वह अपने शरीर की हड्डी–चमडी भी खो देती है लेकिन पति का प्रेम नही खोती। पतिव्रता स्त्री पति के साथ इतना सन्निकट का सम्बध स्थापित कर लेती है फिर भी क्या ये दोनों स्वरूप एक से हो सकते हैं?

कदापि नही।

चकवी से सूर्य दूर रहता है फिर भी उसे सूर्य से प्रीति है कि वह उसके आगे और कुछ समझती ही नही, तथापि क्या चकवी और सूर्य एक हो सकेंगे।

जब यह निश्चित हो गया कि तू शरीर से भिन्न हे तो स्वयमेव यह प्रश्न उपस्थित होता है कि तू कोन हे? इस सम्वन्ध मे ज्ञानियो के वचनो पर विश्वास न हो, तब भी तू अपने आप से अगर विचार करेगा तो तुझे प्रतीत हो जाएगा कि वास्तव मे तू कौन हे?

ज्ञानी पुरुषो ने आत्मा को अविनाशी बतलाया है। ससार मे जितने भी दृष्टा हैं, सभी अविनाशी हैं। सुख–दु ख आदि दृश्यो को जानने वाला अविनाशी है और सुख–दु ख आदि दृश्य नाशवान् हैं।

यहा प्रश्न होता है कि दृश्य पदार्थो को नाशवान् केसे कहा जा सकता है ? वास्तव मे दृष्टा ओर दृश्य दोनो ही अविनाशी हैं। उदाहरण के लिए मोमबत्ती लीजिये। मोमबत्ती के जल चुकने पर साधारण लोग यह समझते है कि मोमबत्ती का नाश हो गया। परन्तु मोमबत्ती सर्वथा नष्ट नही होती, केवल उसका रूपान्तर होता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार बनाये हुए दो विशेष यन्त्र यदि जलती हुई मोमबत्ती के पास रख दिए जाए तो मोमबत्ती के परमाणु खीचकर उन यत्रो मे इकट्ठे हो जायेगे। उन्हे आपस मे मिला देने से फिर मोमबत्ती तैयार हो जायगी। इस प्रकार मोमबत्ती जल जाने से भी सर्वथा नष्ट नहीं सिर्फ एक अवस्था से दूसरी अवस्था मे जाती है। जैसे आत्मा एक शरीर मे रह कर अपना खेल दिखाता है, फिर दूसरे शरीर मे चला जाता है, उसी प्रकार अन्य पदार्थ एक बार पर्याय मे होते हैं, दूसरी बार दूसरे पर्याय मे। जैन शास्त्रो मे भी छहो द्रव्यो को स्वरूपत अविनाशी बतलाया हे। फिर आत्मा को अविनाशी और पुद्गल को नाशवान् कहने का आशय क्या हे।

यह विषय बडा सूक्ष्म हे। किस प्रकार द्रव्यार्थिक नय ओर पर्यायार्थिक नय की दृष्टि से पदार्थो मे नित्यता ओर अनित्यता रहती है इत्यादि चर्चा विस्तार के साथ कहने का समय नही हे। जिन्होने जेन स्याद्वाद का स्वरूप समझ लिया हे वही इस तत्व को भलीभाति समझ सकते हे। अतएव यहा थोडे शब्दो मे स्थूल चर्चा ही करता हू।

पुद्गल तीन प्रकार के होते हें–प्रायोगिक वेस्त्रासिक ओर मिश्र। हमारे शरीर मे जो पुद्गल हैं--जिन पुद्गलो से यह शरीर बना हे वे प्रायोगिक हें। वादल आदि के पुद्गल वेस्त्रासिक हें ओर वस्त्र आदि पुद्गल मिश्र हें।

घटना वढना सड जाना आदि धर्म जिसमे पाये जाते हे वह पुद्गल ह। सस्कृत भापा मे पुद्गल शव्द की जा व्युत्पत्ति की गई हे उससे भी यही अर्थ निकलता ह। 'यूरण गलत धर्म पुद्गल ।

आत्मा अविनाशी है। अतति सतत गच्छतीति आत्मा' अर्थात जिसका निरन्तर गमन होता रहता है, वह जितने प्रदेश वाला है उनमे से एक प्रदेश भी कभी कम या अधिक नही होता, जो भूत भविष्य और वर्तमान मे स्वरूपत समान रूप से रहता है, जो सडता नही गलता नही, ऐसा अविनाशी तत्व आत्मा है।

आत्मा यद्यपि एक देह का परित्याग करके दूसरे देह मे जाता है, एक योनि से दूसरी योनि मे गमन करता है, तथापि उसका मूल स्वरूप नही बदलता उसके प्रदेशो की सख्या सदैव समान रहती है। देह बदल जाती है पर आत्मा का स्वरूप नहीं बदलता। आत्मा मे जो गुण वैभाविक हैं उपाधि–जन्य हैं अर्थात् काल क्षेत्र या पर्याय आदि परनिमित्त से उत्पन्न हुए हैं, जो स्वाभाविक नही है, वे गुण बदल जाते हैं परन्तु आत्मा के स्वाभाविक गुणो मे परिवर्तन नही होता।

तात्पर्य यह है कि जैसे पुद्गल के परमाणु घटते–बढते रहते हैं, उसी प्रकार आत्मा के प्रदेश नही घटते–बढते हैं।

अगर यह आशका की जाये कि आप पुद्गल को नाशवान् कहते हैं सो यदि पुद्गल नाशवान् है तो कभी ऐसा भी समय आ सकता है जब समस्त पुद्गल नष्ट हो जाए उस समय ससार क्या पुद्गलो से शून्य हो जाएगा? छह द्रव्यो मे से सिर्फ पाच ही द्रव्य रह जाएगे? इसका समाधान यह है कि नाश का अर्थ असत् हो जाना नही है। कोई भी सत् पदार्थ कभी असत् नही हो सकता और असत पदार्थ सत् नहीं हो सकता। कहा भी है–

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत ।

अर्थात–असत्–जिसका अस्तित्व नही है–उसका कभी सद्भाव नही होता और सत का अभाव नही होता।

कभी पुद्‌गलो से शून्य वन सकता हे और न द्रव्यो की सख्या मे ही बाधा उपस्थित हो सकती हे।

अलबत्ता पुद्‌गल के परमाणु बिखर सकते हें, कभी मिलकर पिड या स्कन्ध रूप हो जाते हें स्कन्ध कभी अनेक स्कन्धो के मल से बडा हो जाता है कभी छोटा हो जाता हे। पुद्‌गल के इसी धर्म को लक्ष्य रख कर उसे नाशवान् कहा जाता हे। आत्मा मे ऐसी बात नहीं हे। उसके प्रदेश असख्यात है ओर उनमे न तो कभी एक प्रदेश घट सकता है न एक प्रदेश बढ सकता है। इस अपेक्षा से आत्मा को यहा अविनाशी कहा गया।

अब यह प्रश्न किया जा सकता हे कि आत्मा के अतिरिक्त सिर्फ पुद्‌गल ही द्रव्य नहीं हैं वरन् धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय और आकाश भी द्रव्य हैं, आत्मा के प्रदेशो मे तो दीपक के प्रकाश की तरह कभी सकोच और कभी विस्तार भी होता हे, लेकिन धर्मास्तिकाय आदि तो सदा एक से रहते है। तो इन द्रव्यो को आत्मा क्यो नही कहा?

इसका उत्तर यह हे कि धर्मास्तिकाय आदि ऊपर कहे गये द्रव्य दृश्य हैं। धर्मास्तिकाय और आकाश आदि द्रव्य न तो अपने आप को जानते हे, न दूसरे पदार्थो को ही जानते हैं। उनमे स्व–पर–सवेदन की शक्ति नही हे। इन्हे जानने वाला आत्मा ही हे। अतएव उन द्रव्यो को आत्मा नहीं कहा जा सकता।

आत्मा अविनाशी हे अर्थात सदा सत् हे लेकिन वह केवल सत स्वरूप ही नही हे , उसमे चित् ओर आनन्द भी हे।

सत् तो सभी पदार्थ हे मगर चित ओर आनन्द का अस्तित्व केवल आत्मा ही हे। चित् का अर्थ हे–ज्ञान। ज्ञानानन्दमय आत्मा ही हे। अन्य पदार्थों मे ज्ञान ओर आनन्द नही हे। अतएव चित् और आनन्द आत्मा के असाधारण धर्म हें। इस प्रकार आत्मा को सच्चिदानन्द कहा गया हे।

आनन्द आत्मा का ही गुण हे उसे पर पदार्थो के सयोग से खोजने का प्रयास करना भ्रम हे। सत्य तो यह हे कि जितने अशो मे पर का सयोग होगा उतने ही अशो मे सुख की न्यूनता होगी। आत्मा जब समस्त सयोगो से पूर्ण रूप से मुक्त हो जाता हे तभी उसके स्वाभाविक पूर्ण सुख का आविर्भाव होता हे। यह स्वाभाविक सुख ही सच्चा सुख हे। पर के निमित्त से होने वाला सुख सुखाभास ह–सुख का मिथ्या सवेदन हे।

आत्मा सच्चिदानन्द हे। यही उसका विशिष्ट रूप हे।

प्रश्न यह था कि सूर्य को तो देखते हें अतएव उस पर अनायास ही विश्वास किया जा सकता हे लकिन ईश्वर ता कही दिखाई नही पडता। फिर उस पर किस प्रकार विश्वास किया जाय?

इसका समाधान यह है कि ईश्वर को आत्मा मे देखो। आत्मा ईश्वर रूपी सूर्य की आभा है। आत्मा न होता तो ईश्वर की भी चर्चा न होती। हम है इसलिये ईश्वर की चर्चा है। हम और ईश्वर एक है। अन्तर इतना ही है कि हम (आत्मा) आवरणो से आवृत्त हैं और ईश्वर समस्त आवरणो से अतीत हो चुका है। जो शक्ति ईश्वर मे है वही सब आत्मा मे भी है। हमारी शक्ति कर्मो के आवरणो से ढकी है और ईश्वर की शक्ति कर्मक्षय के कारण समस्त आवरणो से रहित है। वह प्रकट हो चुकी है। किसी महात्मा ने कहा–

सिद्धोऽह शुद्धोऽह अणतणाणादिगुण समिद्धोऽह।।

अर्थात् मेरा आत्मा सिद्ध है शुद्ध है ओर अनन्तज्ञान आदि से युक्त है।

ऐसी स्थिति मे हम यह क्यो न माने कि जब हमारे समस्त आवरण हट जाएगे तब हम और परमात्मा एक समान हो जाएगे? उस समय आत्मा स्वयमेव ही परमात्मा बन जाएगा। दोनो के स्वरूप मे तनिक भी भेद नहीं रह जायगा।

तात्पर्य यह है कि आत्मा जब समस्त आवरणो को समूल नष्ट कर डालता है तब वही आत्मा परमात्मा बन जाता है। आत्मा के आवरणो का क्षय किस प्रकार हो सकता है? इसके लिए कहा है–

धर्म जिनेश्वर मुझ हिवडे वसो प्यारा प्राण समान।
कदहू न विसरू चितारू नही सदा अखण्डित ध्यान।। धर्म ।।

किसी शिक्षक की पढाई हुई, विद्या अगर शाला मे ही काम आये ओर अन्यत्र काम न आये तो उस विद्या से क्या लाभ है? जो दवा सिर्फ वैद्य के घर पर ही नीरोगता प्रदान करती है और वैद्य का घर छोडते ही फिर ज्यो का त्यो बीमार बना देती है उस दवा से क्या लाभ है ? इसी प्रकार जब तक यहा बैठे तब तक ईश्वर को याद किया और यहा से उठते ही उसे भुला दिया तो ऐसी कच्ची दवा किस काम की? साधुओ से ऐसी दवा लो जिससे कभी ईश्वर का विस्मरण न होने पावे।

तब आप कहेगे कि अगर ईश्वर का सतत ध्यान करते रहेगे तो घर कैसे जाएगे? अगर ईश्वर का अखण्ड ध्यान कर लिया तो घर जाकर क्या करेगे?

इसका समाधान यह है कि शिक्षक अपने विद्यार्थी को सदा शाला मे ही नही घेरे रखता है। जो विद्यार्थी विशिष्ट अध्ययन करके स्वय विद्यार्थी बन जाता है उसकी बात दूसरी है, परन्तु साधारणतया विद्यार्थी अपने घर आ ही जाता है। वास्तव मे वही शिक्षा काम की है, जिसे शाला के समय शाला मे रहे और शेष समय घर पर रह कर उस विद्या का उपयोग करे। शाला मे सीखी हुई विद्या घर आकर भुला न दी जाये, यह वाछनीय है। साधु–सगति भी ऐसी ही होनी चाहिये। साधु–सगति के द्वारा अन्त करण मे जिन उज्ज्वल भावनाओ का उदय होता है, उन भावनाओ को कायम रखना चाहिये। तभी साधु–समागम पूर्ण सफल होता हे।

पनिहारी चलती हे बोलती है हसती हे तथापि कुम्भ को नही भूलती। इसी प्रकार ससार–व्यवहार करते समय भी ईश्वर को विस्मरण नही करना चाहिये।

पनिहारी की बात चल पडी हे तो एक–दो बात इस सम्बन्ध मे कह देना उपयोगी होगा। आजकल नल हो जाने के कारण शहर की महिलाओ को पानी भर कर सिर पर नही लाना पडता। लेकिन कभी नल बेकाम हो जाये तो पानी लाना पडेगा या नही? अगर कहो कि मजदूरो से पानी भरवा लेगे तो मोल मगवा कर पानी पीने वाली ओर पिलाने वाली सेठानी सच्ची सेठानी नहीं हे। सच्ची सेठानी वह हे जो अपना काम यतना के साथ स्वय कर लेती हे।

लोग पत्थर की मूर्ति पर चढान के लिए भी हाथ से भर कर जल लात ह। सुना जाता ह कि उदयपुर के महाराणा एकलिग जी के लिये ओर उदयपुर क सरदार नाथद्वारा म अपन हाथ से पानी भरत ह। क्या पतिव्रता

स्त्री अपने पति को उतना भी महत्व नही देती जितना भावुक जन पाषाण–मूर्ति को महत्व देते है? यह दूसरी बात है कि लोग स्वय ही स्त्री से कार्य कराना अपना अपमान समझते हो और उन्होने ही पानी भरने की मनाई कर दी हो। अन्यथा जो स्त्री अपने पति को पानी भी नही पिला सकती वह प्रशसा के योग्य पतिव्रता कैसी?

जब तक अहकार है अभिमान है, तब तक भक्ति नही हो सकती। अहकार की छाया मे प्रेम का अकुर नही उगता। अहकार मे, अपने प्रति घना आकर्षण है आग्रह है और प्रेम मे घना उत्सर्ग चाहिये। दोनो भाव परस्पर विरोधी है। एक मे मनुष्य अपने आपको पकडकर बैठता है, अपना आपा खोना नही चाहता और दूसरे मे आपा खोना पडता है। इस स्थिति मे अहकार और प्रेम या भक्ति दोनो एक जगह कैसे रहेगे?

पनिहारी अक्सर दो घडे सिर पर रखती है और तीसरा अपनी बगल मे उठा लेती है। इस प्रकार तीन घडे लिये होने पर भी यदि उसके पैर मे काटा चुभ जाता है तो वह एक पैर के बल खडी होकर दूसरा पैर उठा कर एक हाथ से काटा निकाल डालती है। ऐसे समय घडे के गिर पडने की सम्भावना है? लेकिन घडा गिर नही पाता यही तो पनिहारी की विशेषता है।

भक्तजन कहते है—हे प्रभो! मेरे हृदय मे इस प्रकार बस जा जिससे मै तुझे कभी भूल ही न सकू। जब तेरा कभी विस्मरण न होगा तो स्मरण करने की जरूरत ही क्या रहेगी?

पतिव्रता नारी पति का नाम लेकर माला फेरती है?

नही!

तो क्या वह अपने पति को भूल जाती है?

नही।

सेठ, मोतीलाल सेठ कहकर अपने पति के नाम की माला जपा करती। यह देखकर छोटी ने सोचा–इस प्रकार पति का रजन होता तो मेरे आने का अवसर ही क्यो आता? सेठजी को इससे सतोष नहीं हुआ इसीलिए मुझे लाये है। तब क्या मैं भी बडी की भाति माला लेकर उनका नाम जपने बेठू? नहीं, मैं तो सीधी–सादी एक बात करूगी। वह यह कि सेठजी के काम मे अपना काम। सेठजी की खुशी मे अपनी खुशी। जिस कार्य से सेठजी को प्रसन्नता होती है उसी से मैं प्रसन्नता का अनुभव किया करूगी। इसके अतिरिक्त वे जो आज्ञा दे उसे शिरोधार्य कर लेना। उनका काम पहले से ही कर रखना, जिससे उन्हे कभी मेरा अपमान करने का मौका न मिले।

दोनो सेठानिया अपने–अपने तरीके से चलने लगी। एक दिन सेठ मोतीलाल जल्दी मे, घबराए हुए घर आये। दरवाजे के निकट पहुचते ही उन्होने पानी लाने के लिए पुकार की। उनकी पुकार सुनकर बडी सेठानी कहने लगी–'न जाने इनकी केसी समझ है। मैं इन्ही के नाम की माला फेर रही हू और यह स्वय उसमे विघ्न डाल रहे हैं। इतनी दूर चल कर आये हें तो यह नही बनता कि दो कदम आगे चले आवे ओर हाथ से भर कर पानी पी ले। यह तो करते नही और मुझ से कहते है–पानी लाओ पानी लाओ। भला मैं अपने आप को केसे खण्डित करू?'

मन ही मन इस प्रकार कह कर बडी सेठानी अपने स्थान से न हिली ओर ज्यो की त्यो बैठी–बैठी माला सरकाती रही। उधर छोटी सेठानी आवाज सुनते ही दौडी और उसी समय पानी लेकर हाजिर हो गई।

सेठ ने छोटी सेठानी की तरफ नजर फेकी ओर पानी लेकर अपनी प्यास बुझाई। जेसे ही सेठ भीतर घुसा तो देखा– बडी सेठानी बेठी–बेठी उन्ही के नाम की माला जप रही है। बडी सेठानी ने सेठ को आते देख अपना स्वर ऊचा कर दिया। अब वह तनिक जोर से 'मोतीलाल सेठ' 'मोतीलाल सेठ कह कर जपने लगी।

उधर छोटी सेठानी ने हाथ जोड कर प्रेम के साथ कहा–भोजन तेयार हे। पधारिये। भोजन का समय भी तो हो चुका हे।

आपके घर मे ऐसा हो तो आपका चित्त किस पर प्रसन्न होगा?

'छोटी पर।

पत्नी अपने पति को नही भूलती इसे स्पष्ट करने के लिये यह दृष्टान्त दिया गया हे। इस दृष्टान्त मे दाना स्त्रिया अपने पति को नही भूलती पर दाना म स प्रिय कानसी हागी?

'काम करने वाली।

ईश्वर के भजन के विषय मे भी यही बात है। ईश्वर का भजन करने वाले भी दो प्रकार के होते हैं। एक बडी सेठानी के समान ईश्वर के नाम की माला फेरने वाले और दूसरे ईश्वर की आज्ञा की आराधना करने वाले। इन दोनो भक्तो मे से ईश्वर किस पर प्रसन्न होगा।

आज्ञा की आराधना करने वाले पर।'

मैं यह नही कहता कि माला फेरना बुरा है, लेकिन इसका अर्थ यह नही कि प्यास का मारा सेठ तो पानी की पुकार करे और सेठानी बैठी–बैठी उसी के नाम की माला जपे। क्या इस प्रकार की क्रिया विवेक–शून्य नही है।

ईश्वर की आज्ञा की अवहेलना करके उसके नाम की माला जप लेने से कल्याण नही हो सकता।

कदाचित् कोई कहने लगे कि मोतीलाल सेठ की बडी सेठानी यदि सचित पानी पिलाती तो उसे पाप लगता। इसी कारण उसने पानी नही पिलाया होगा। इस सम्बन्ध मे इतना ही समझ लेना पर्याप्त होगा कि जो इस पाप से बचेगी वह मोतीलालजी की स्त्री भी न कहलाएगी। वह तो ससार सम्बन्धी समस्त व्यवहारो से विमुख होकर आत्म–कल्याण मे ही तत्पर रहेगी। जो उच्चतर स्थिति मे जा पहुचता है वह तो जगत् से नाता तोड लेता है और जगत से नाता तोड कर भी सभी से नाता जोडता है। अर्थात् वह सकुचित विचारो की परिधि से बाहर निकल जाता है। सेठ की कमाई खाना सेठ के दिये वस्त्राभूषण पहन कर बनाव शृगार करना गादी पर बैठना सेठ के नौकरो पर हुक्म चलाना ससार सम्बन्धी भोग–विलास करना इन सब के लिए तो पाप का विचार न करे और सेठ के पानी मागने पर पाप के विचार से उसे पानी न देना यह निरी आत्म–वचना नही तो और क्या है। क्या यह

धर्म का नाम लेकर कर्त्तव्य–पालन के समय कर्त्तव्य से भ्रष्ट हो जाने वाला, नीति–मर्यादा को भी तिलाजलि दे बेठने वाला समझना चाहिये धर्म के नाम पर ढोग कर रहा है। ऐसा करने वाले ने धर्म का सम्मान नहीं किया किन्तु अपमान किया है। या तो वह धर्म का स्वरूप ही नही समझता या धर्म की आड लेकर, अधर्म और अन्याय करना चाहता हे।

मैं यह कह रहा था कि जब परमात्मा की आज्ञा पालन करने का समय हो तब उसकी आज्ञा की अवहेलना करके, केवल उसके नाम को रटना धर्म नही, किन्तु चालाकी है। यह बात दूसरी है कि मुनीम अपने सेठ की आज्ञा से कोई काम न करे मगर उसे यह ध्यान रखना तो उचित ही है कि मै जब तक सेठ का वेतन पाता हू तब तक मुफ्त का न खाऊगा किन्तु बदले मे सेवा करूगा।

ढोग करने से कोई सेवक नही कहलाता। सेवक को सेवा करनी पडती है। सच्चा सेवक वह है जो स्वामी के कहने पर ही सेवा नही करता वरन् स्वामी पर ऐसी जिम्मेवारी डालता है कि उसे सेवा करानी ही पडे।

वन–गमन करते समय रामचन्द्र को नदी पार करने का काम पडा था। आपकी दृष्टि मे तो नाव खेने वाला नीच है लेकिन इसकी नाव मे बैठ कर नदी पार करते समय वही नाविक कितना प्यारा लगता है इसे कोन नही जानता?

तो रामचन्द्र जी ने जाकर निषाद से कहा– भाई हमे पार उतार दो। निषाद मन मे सोचने लगा–यह मोहनी मूर्ति कोन हे? कैसा पुरुष हे केसी नारी हे और क्या ही सोम्य इसका भाई हे।'

मन ही मन इस प्रकार सोचकर निषाद ने पूछा–मेंने सुना हे दशरथ के पुत्र रामचन्द्र जी वन को आये हें। क्या तुम्ही तो राम नहीं हो?

राम– हा भाई राम तो मे ही हू।

निषाद– में इन्हे पार उतार दूगा। पर तुम्हे न उतारूगा।

राम–क्यो क्या हम अधम है?

निषाद–अधम तो नही हें पर एक अवगुण तुम मे अवश्य है।

राम–वह कोन सा।

निषाद–मैंने सुना हे तुम्हारे पाव की धूल यदि पत्थर से लग जाती हैं तो वह पत्थर भी मनुष्य बन जाता हे। जब पत्थर भी मनुष्य बन जाता हे ता मरी नाव तो लकडी की हे। तुम्हारे पेर की धूल अगर इसे छू गई ओर यह भी मनुष्य बन गई तो मरी मुसीबत हो जायगी। में केसे कमा कर

खाऊगा। तुम्हारे पैर मे रज तो लगी ही होगी और वह नाव से लगे बिना रहेगी नही। इसलिये मै तुम्हे पार नही उतारने का।

राम–तो क्या मै तैर कर नदी पार करू? अगर बीच मे मर जाऊ तो डूब मरू।

निषाद–नही तैर कर मत जाओ। जिसके पाव की रज से पत्थर भी मनुष्य बन जाता है उसे डूबने कैसे दूगा।

इतना कह कर निषाद ने लकडी की कठौती लाकर राम के आगे रख दी। बोला–अगर आप नाव चढ कर पार जाना चाहते हैं तो इसमे पैर रख दीजिए। मै अपने हाथो से आपके पाव धो लूगा और विश्वास कर लूगा कि आपके पावो मे धूल नही है। तब नाव पर चढा कर पार पहुचा दूगा। हा, यह ध्यान रहे कि दूसरे किसी को मै आपके पैर न धोने दूगा। नही तो सभव है रज रह जाय।

तुलसीदास जी की रामायण का यह वर्णन है। निषाद यह सब बाते इस मतलब से कह रहा था कि उसे रामचन्द्रजी की सेवा करनी थी और राम अपनी सेवा किसी से कराना नही चाहते थे। वे वनवासी थे। अतएव यथाशक्य स्वावलबी रहना चाहते थे। पर निषाद ने यह कह कर रामचन्द्र को पैर धुलाने के लिए विवश कर दिया। भक्तजन ऐसे ही उपायो से अपने स्वामी को सेवा कराने के लिए विवश कर देते है।

निषाद ने राम लक्ष्मण ओर सीता इन तीनो को बैठाकर बडे प्रेम से पाव धोये। इसके पश्चात उसने उन्हे नाव मे बेठने को कहा। उसने कहा–लो यह पानी भी बडे काम का है। इसमे वह रज है जिस से पत्थर भी मनुष्य बन जाता है।

निषाद ने कहा—अभी ठहरिये, हम प्रसाद बाट रहे हैं। जब सब ले लेगे तब आएगे।

लक्ष्मण ने सोचा—मैं समझता था— रामचन्द्र का बडा भक्त मैं ही हू। पर निषाद ने मेरा अहकार चूर कर दिया। इसकी भक्ति के सामने तो मेरी भक्ति नगण्य सी हो जाती है। राम की सेवा करने मे मुझे तो कुछ आशा हो भी सकती है पर निषाद को क्या आशा है। भैया ने मुझे यहा भेजकर मेरी आखे खोल दीं। शायद उन्होंने इसी उद्देश्य से यहा भेजा है। यहा आकर मैंने जाना कि निषाद तो सेवा भक्ति कर रहा हे, मैं उसका एक अश भी नहीं कर सकता।

निषाद आया। सीता—राम और लक्ष्मण उसकी नाव मे बैठकर नदी पार कर गये। रामचन्द्र निषाद के सौजन्य की प्रशसा करते जाते थे पर निषाद अपनी प्रशसा की ओर ध्यान न देता हुआ भक्ति रस मे डूब रहा था।

रामचन्द्र जी जब दूसरे किनारे गये तब बडे सकट मे पडे। वे सोचने लगे—निषाद ने इतनी सेवा की हे और बिना बदला लिये किसी की सेवा लेना उचित नही हे। लेकिन इसे दे क्या? क्षत्रियो का यह धर्म है कि सेवा का प्रतिदान अवश्य दे। मगर देने को कुछ भी नही हे।

अब कोई देना चाहता है अगर पास मे कुछ न होने से दे नहीं सकता तब हृदय कितना सतप्त होता हे? यह बात भुक्त भोगी ही भलीभाति समझ सकता हे। रामचन्द्र ऐसी ही गहरी चिन्ता मे थे कि—

सिय पिय हिय की जाननिहारी
मणि मुन्दरी जिन दीन उतारी

सीता को अपने स्वामी के हृदय मे होने वाले सताप का पता चला। वे समझ गईं कि पति इस समय सकट और सकोच मे हैं। पति यो तो सकटो से घबराने वाले नही हैं किन्तु यह सकट तो धर्म सकट हे। जब सीता जी राम जी के साथ वन गमन के लिए तेयार हुईं तो वे भी अपने सब आभूषण घर पर ही उतार आई थी। सिर्फ एक अगूठी अगुली मे रख ली थी। इस समय सीता जी ने बिना कहे सुने ही अगूठी राम को सौंप दी। रामचन्द्र जी सीता की प्रशसा करने लगे। पत्नी हो तो ऐसी हो।

आज तो पति भी अपना कर्त्तव्य भूले हुए ह और पत्नी भी आभूषणा के लोभ म पडकर अपना कर्त्तव्य विसर वेठी। मगर राम की यह कथा पति—पत्नी का आदर्श आज भी सामने उपस्थित करती हे।

राम निषाद को वह अगूठी देते हुए बोले—भई अपनी उतराई ले लो।

निषाद—उतराई देकर क्या आप मुझे जातिभ्रष्ट करना चाहते हैं?

राम—इससे जातिभ्रष्ट कैसे हो जाओगे?

निषाद—अगर नाई नाई से बाल बनवाई के पैसे ले तो वह जाति से च्युत कर दिया जाता है। धोबी—धोबी से धुलाई वसूल करे तो वह जाति से अलग कर दिया जाता है। वे लोग अपने कुल वालो से काम करने वाले से मजदूरी नही लेगे। फिर मै आपसे मजदूरी कैसे लू। आपका और मेरा पेशा एक ही है। जो काम मै करता हू वही आप भी करते हैं। ऐसी अवस्था मे मै आपसे अपना पारिश्रमिक नही ले सकता। इससे तो मुझे जातिभ्रष्ट होना पडेगा।

राम—भाई तुम्हारा और मेरा एक ही पेशा कैसा? तुम्हारी बात ही कुछ निराले ढग की होती है।

निषाद—मै अपनी नाव मे बैठा कर नदी से पार उतारता हू और आप अपनी नौका पर चढा कर लोगो को ससार से पार उतारते हैं। पार उतारना दोनो का ही काम है। अगर मै आप से उतराई ले लूगा तो फिर आप मुझे क्यो पार करेगे? हा एक बात तो हो सकती है। अगर आप बदला दिए बिना नही रह सकते तो अच्छा सा बदला दीजिए। मैने आपको नदी से पार कर दिया है आप मुझे भव सागर से पार कर दीजिए। बस बदला हो जाएगा।

तो फिर आप महात्मा कहने वालो को रोकते क्यो नही हे। इस प्रश्न के उत्तर मे उन्होने कहा–रोकने से तो ज्यादा कहते हैं।

एक दिन इगलैण्ड मे उनसे पूछा गया–महात्मा किसे कहते हैं? गाधी जी ने कहा–जो तुच्छ से तुच्छ हो उसे महात्मा कहते हैं।

एक दिन मैंने कहा था–

पास न कौडी रही तो मैने मुफ्त खुदा को मोल लिया

ऐसा सौदा किया अनमोल और मैंने कुछ न दिया।

आपकी नजरो मे यह नाचीज ठहरेगा जिसके पास कोडी न होगी लेकिन जिसने कोडी भी रखने की चाहना नही की वही महात्मा है।

सेवा वही कर सकता हे जो अपने को जगत के लिए निछावर कर देता है, जगत् के मगल मे ही अपना मगल मानता है ओर सेवा के प्रतिफल की अभिलाषा से मुक्त हे। सच्ची सेवा–भक्ति उपकारी ही होती है। उससे अपकार की तो आशा ही नही कही जा सकती।

स्वराज्य सब चाहते है लेकिन सेवा सब लोग नही करना चाहते। आम तो सब खाना चाहते है परन्तु आम के वृक्ष को पानी कोई नही पिलाना चाहता। भाई पानी नही पिलाना चाहते हो तो न सही पर उसमे आग तो न लगाओ। लोग ऐसा ही कुछ कहते रहते हैं। कोई कहता है– अहिसा और सत्य से स्वराज्य मिलेगा यह कहना कोरी गप हे। आज तक भला किसी देश ने अहिसा के द्वार स्वराज्य भी पाया हे या हम ही पा लेगे? कोई–कोई स्वार्थ–साधु पुरुष हिन्दू–मुसलमानो मे फूट पेदा करने के उपाय रचते रहते हे। वास्तव मे वेसे लोग धर्म के रहस्य को नहीं जानते। धर्म के रहस्य को जान कर भगवान् की आज्ञा की आराधना करोगे तो कल्याण होगा।

महावीर भवन देहली ता 17–9–31

11. अंग्रेजी शिक्षा

जय–जय जगत शिरोमणि, हूँ सेवक ने थू धनी।
अब तोसौ गाढी बनी प्रभु आशा पूरो हम तनी।।
मुझ मिहर करो चद्रप्रभु जगजीवन अतरजामी।
भव दु ख हरो, सुनिये रज हमारी त्रिभुवन–स्वामी।।मुझ ।।

मुझे बतलाया गया है कि मेरे विषय मे यह कहा जा रहा हे कि में अग्रेजी भाषा की शिक्षा नही चाहता और अग्रेजी भाषा का निषेध करता हू। सभव है कुछ लोगो के दिल मे इस प्रकार के विचार आ घुसे हो अतएव अग्रेजी भाषा की शिक्षा के विषय मे मै अपने विचार स्पष्ट कर देना उचित समझता हू।

मेरे विचार अग्रेजी भाषा की शिक्षा के विषय मे यह हैं कि यदि मेरे आज्ञानुवर्ती मुनियो को स्वकीय सिद्धात का अभ्यास कर लेने के पश्चात् अवकाश और सुविधा मिले तो अग्रेजी भाषा–भाषी लोगो को जैन–धर्म के सिद्धात समझाने के उद्देश्य से मै उन्हे भी अग्रेजी पढाऊ।

परिचित होने के लिये अग्रेजी भाषा सीखे तो मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है अपितु प्रसन्नता ही होगी।

मैं यह भी बता देना चाहता हू कि मुझे अग्रेजी पढाई से किस बात मे विरोध है।

मैंने चिपलूनकर की बनाई हुई निबधावली देखी थी। चिपलूनकर बहुत थोडी अवस्था मे ही मर गये थे इस कारण उसकी ख्याति नहीं हो पाई। वे लोकमान्य तिलक की कोटि के माने जाते थे लेकिन तिलक अधिक दिनो तक जीवित रहने के कारण ख्याति पा गए और चिपलूनकर अल्पायुष्य होने के कारण ख्याति न पा सके। चिपलूनकर अधिक दिनो जीवित रहते तो अवश्य उसकी कीर्ति खूब फैली होती।

चिपलूनकर ने अपने निबध मे जो कुछ लिखा था उसके भाव और अपने विचार मिलाकर मैं इस निश्चय पर पहुचा कि भाषा स्त्री के समान है। स्त्री से द्वेष करो या भाषा से द्वेष करो एक ही बात है। जैसे स्त्री–स्त्री एक है उसी प्रकार भाषा–भाषा भी एक है। यद्यपि समस्त स्त्रिया स्त्रीत्व जाति की अपेक्षा एक हैं, लेकिन स्त्रियो मे मा भी होती है बहिन भी होती है और अन्य स्त्रिया भी होती है। अगर कोई बालक अपनी माता से अन्य स्त्रियो की अपेक्षा अधिक प्रेम करता है तो क्या वह कोई अन्याय करता है? अन्य स्त्रियो की अपेक्षा अपनी माता को विशेष पूजनीय मानना क्या कोई दोष हे?

'नहीं।'

कल्पना कीजिये उस बालक की माता को दो स्त्रिया मिली। एक बालक की माता की सखी बनने वाली हे मा का गोरव बढाने वाली हे और उसकी सेवा करने वाली है। दूसरी स्त्री बालक की माता को दासी बनाना चाहती है। मातृ–भक्त बालक ऐसी स्त्री को जो उसकी माता को दासी बनाना चाहती हे अवश्यमेव दुत्कारेगा ओर जो स्त्री माता की सखी बनना चाहती है उसे चाहेगा। यह मनुष्य की प्रकृति हे।

जो बात स्त्री के विषय मे कही गई हे वही भाषा के विषय मे समझनी चाहिये। अग्रेजी उर्दू, सस्कृत अरबी फारसी लेटिन फ्रेच जर्मन आदि कोई भी भाषा क्यो न हो वह स्त्री के समान हे। बालक को जिस भाषा मे मा ने बोलना सिखाया है, जिस भाषा के तोतले बोल बोलकर बालक ने अपनी माता की कली–कली खिला दी हे जिस भाषा के भडार मे बालक की सास्कृतिक धरोधर रखी हुई हे जिस भाषा मे बालक के पूजनीय पूर्वजा क विचारा का अनमाल खजाना छिपा हुआ हे जिस दश ने बालक को जन्म

दिया है उस देश की जो स्वभावसिद्ध भाषा है वही उसकी मातृ–भाषा है। मातृ–भाषा के द्वारा बालक ने अपनी माता का प्यार पाया है। ऐसी स्थिति मे बालक अपनी मातृभाषा से स्वभावत अधिक प्रेम करता है। अगर वह दूसरी भाषा से द्वेष या घृणा नही करता और अपनी मातृ–भाषा के प्रति भक्ति–भाव रखता है तो कौन सपूत बालक को कपूत कहने की हिम्मत करता है?

इस मातृ–भाषा को अगर कोई दूसरी भाषा सम्मानित कराती है, अथवा उसकी सखी बनना चाहती है तो मातृ–भक्त बालक उसका भी सम्मान करेगा मगर जो भाषा मातृ–भाषा को दासी बनाने के लिए उद्यत हो रही हो उसके प्रति बालक का क्या कर्त्तव्य है? अपनी माता की इज्जत बढाने वाली स्त्री का तो बालक आदर कर सकता है लेकिन जो स्त्री माता को तुच्छ बता कर कहती है–'तू हमारी गुलामी करने योग्य है, क्या ऐसी स्त्री को सम्मान देना बालक के लिए योग्य है?

हमारी मातृ–भाषा को–आर्य देश की भाषा को–जो भाषा दासी बनाती है जो हमारी मातृ–भाषा का तिरस्कार करने आई हो, जिसके आगमन से हमारी सस्कृति विकृत होती हो जिस भाषा की शिक्षा से अपने देश की सस्कृति के प्रति घृणाभाव उत्पन्न होता हो बल्कि जिस भाषा की शिक्षा देश के लिए घातक सिद्ध होती है, आर्य सस्कार और पूर्वजो की प्रतिष्ठा को मलीन बनाना जिस भाषा के आगमन का उद्देश्य हो, ऐसी भाषा की शिक्षा का मै विरोधी हू, चाहे वह अग्रेजी भाषा हो चाहे कोई दूसरी। उस भाषा से मैं अपने विरोध की घोषणा करता हू और अपने श्रोताओ को विरोधी बनने का परामर्श देता हू।

जो भाषा हमारी मातृभाषा को अपनी सखी बनाती है जो उसकी सेवा बजाती है उस भाषा को अपनी सस्कृति दूसरो को समझाने के लिए सीखा जाए इस विचार का समर्थन करने के लिए मैं तैयार हू। ऐसा करने से [illegible] मुझे [illegible] गौरव बढेगा। ऐसी भाषा सीख कर अर्हन्त भगवान् के द्वारा [illegible] लिए प्रतिपादित सन्मार्ग के प्रचार करने और उसकी महिमा [illegible] विरोधी नही हू।

काका कालेलकर ने अग्रेजी भाषा के विषय मे अपने जो उद्गार जीवन साहित्य नामक पुस्तक मे प्रकट किये हैं, वे इस प्रकार हैं–

श्री आनन्दकुमार स्वामी ने अग्रेजी शिक्षा का वर्णन इस तरह किया हे–

"हमारे यहा अग्रेजी राज्य की ऐसी विशेषता हे कि जिस वस्तु ने हिन्दुस्तान की भारी से भारी हानि की हो वही हमे अपने लिये आशीर्वाद–स्वरूप मालूम होती है। इसका उदाहरण हे–शिक्षा।"

अच्छे या बुरे उद्देश्य से शिक्षा के नाम से जो वस्तु हमे दी जाती है उसने हिन्दुस्तान कि राष्ट्रीय उत्कर्ष पर जितना मर्म–घातक प्रहार किया हे उतना ओर किसी दूसरी वस्तु ने नही।

आज दिन यदि हम स्वराज्य के लिए योग्य हैं तो इसका कारण वह सुधार नही जो शिक्षा के फलस्वरूप हमने किया हे। बल्कि अग्रेजी शिक्षा की पद्धति के द्वारा हमारी राष्ट्रीय सस्कृति और हमारी विशेष सस्थाओ का तिरस्कार तथा नाश हो जाने के बाद ओर साथ ही राष्ट्रीयता का नाश करने वाली कल्पनाओ की हम मे जड जमा देने पर भी, हम मे जो कुछ थोडा–सा राष्ट्रीय जीवन शेष रह पाया हे उसी के कारण हम स्वराज्य के योग्य हुए हे।

हम भोले ओर अज्ञानी थे सकुचित दृष्टि वाले थे हमारा सारा जीवन तरह–तरह के वहमो से ओत–प्रोत भरा था हम ससार के बारे मे कुछ भी नही जानते थे हमने स्वतत्रता का स्वाद नही चखा था थोडे मे कहे तो हम जीने के योग्य नहीं थे ऐसे समय मे अग्रेजी शिक्षा ने आकर हमारा उद्धार किया यह आम तोर से माना जाता हे। यदि कोई शिक्षा अग्रेजी शिक्षा पर एतराज करता हे तो उसके हिमायती कहते हैं कि भाषा ने कोन–सा अपराध किया हे? जेसी ससार की अनेक भाषाए हैं वेसी ही अग्रेजी भी हे। भेद तो इतना ही कि वह अधिक परिष्कृत ओर समृद्ध हे। ज्ञान का विषय एक भी ऐसा नही कि जिस पर अग्रेजी भाषा मे पुस्तक न हो ओर अग्रेज तो बिल्ली की तरह ससार के सभी प्रदेशो मे सचार करने वाली एक जाति हे इसलिये अग्रेजी भाषा के कारण हमारा परिचय ससार के साथ बढता हे। अग्रेजी भाषा सभी तरह आशीर्वाद–रूप ही सिद्ध हुई हे। बम्बई सरकार के वर्तमान शिक्षा–मत्री ने एक बार कहा था कि ऐसे हिन्दुस्तान की ता कल्पना की जा सकती ह जिसम अग्रेज न हा किन्तु ऐसा हिन्दुस्तान कल्पना मे भी आना कठिन ह जहा अग्रजी भाषा न हा।

यह उद्गार अग्रजी शिक्षा क विजय के सूचक हैं। जा काम डायर जस अधिकारिया की गालिया स न हा सका वह अग्रजी शिक्षा न कर

दिखाया है। लोग कहते है– भाषा ने कौन–सा पाप किया है?' किन्तु भाषा का अर्थ केवल व्याकरण और शब्दकोष ही नही वरन् भाषा का अर्थ है, भाषा के बोलने वालो का स्वभाव उनका धर्म उनकी समाज–सम्बन्धी कल्पना और वे सूक्ष्म सिद्धान्त तथा पणालिया जिनके अनुसार वे सोचते रहते हैं कि किस बात की प्रशसा करे और किस बात की निन्दा? भाषा होती है--समाज का प्राण समाज की पूजी और समाज की विरासत। अग्रेजी भाषा मे ही पढाई हो कोमल अवस्था मे सभी तरह के सस्कार अग्रेजी पुस्तको से ही लिये जाये, इस आग्रह का सीधा अर्थ है--'अग्रेजी की जाति मे मिल जाए।

हम अग्रेजी राज्य के खिलाफ रात–दिन आवाज उठाते रहते हैं, अग्रेजी रहन–सहन हमारे अनुकूल नही यह भी अब हम जानने लगे हैं। यह भी हम सुनते हैं कि पाश्चात्य सुधार मानवी कल्याण की नीव पर स्थित नही है योरोप की दशा हम देख रहे हैं, पर फिर भी हम मानते हैं कि जिसके भीतर अग्रेजो का स्वभाव और अग्रेजी का ही आदर्श भरा है, उसी भाषा मे बच्चो को शिक्षा देना हानिकारक नही।

अग्रेजी शिक्षा के माने है–प्रोटेस्टेण्ड शिक्षा। अग्रेजी शिक्षा का अर्थ है पारलौकिक जीवन के विषय मे लापरवाह रहने का उपदेश करने वाली शिक्षा। अग्रेजी शिक्षा को प्राप्त करने वाला मनुष्य शायद ही दया करने, ममता रखने तथा मनुष्यता का विकास करने का विचार करता है। उसकी जबान पर तो जीवन–कलह न्याय आर्थिक दृष्टि से लाभकारक प्राकृत नियम इत्यादि शब्द ही रहते है। अग्रेजी शिक्षा हमे कुटुम्ब– धर्म भुलाकर शिकार–धर्म सिखलाती है।

सस्कृति के गुण दोष बच्चो मे उतरते हैं और यदि शिक्षा की पद्धति सरल और सादी हो, तो नयी पीढी उसमे से उन्नति अश खोज सकती है। परदेशी द्वारा शिक्षा पाने से परकीय लोगो के गुणदोष की छाप पडे बिना नही रह सकती और दूसरो के गुणो को हजम करना कठिन होने के कारण कई बार उनके दोषो का ही अनुकरण होता है। इस तरह सारी चित्त–वृत्ति ही भ्रष्ट हो जाती है, सो अलग।

हमने जो अग्रेजी शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ किया वो कुछ अग्रेजो के धर्म अथवा समाज रचना विषयक आदर के कारण नही बल्कि खास कर सरकारी नौकरी प्राप्त करने के लालच से और कुछ अश मे स्वच्छन्दता करने के विचार से। इसके बाद अग्रेजो ने कहा कि हिन्दुस्तान की समाज–रचना से योरोप की समाज रचना श्रेष्ठ है। अग्रेज इस देश के राज्य कर्त्ता हुए, इसीलिए हमने उनका दावा स्वीकार किया। देश और परदेश विषयक ज्ञान मे और भौतिक शास्त्रो मे उनकी प्रगति को देखकर हमारा निश्चय हुआ कि अग्रेज हम लोगो की अपेक्षा अधिक होशियार हैं। किन्तु होशियार के मानी सुधरे हुए नही, होशियार के मानी धर्मनिष्ठ नही। यदि हम लोगो मे धर्मतेज ही होता तो भी हम अग्रेजो से चौंधिया नही जाते। किन्तु दुर्दैववश उस विषय मे हमारे देश मे आधी रात थी। इसीलिये सभी तरह अग्रेजी शिक्षा के फेलाव के लिये वह अनुकूल समय था।

अब अग्रेजी शिक्षा के कारण हम मे कौन से परिवर्तन हुए हैं यह देखना चाहिये।

सबसे पहले परिवर्तन तो यह हुआ कि हम यह मानने लगे कि अपनी आवश्यकताओ को बढाने ओर रहन–सहन को खर्चीला कर देने मे कोई दोष नही वरन् उलटा समाज हित ही हे। इसके कारण परदेशी व्यापार बढा ओर हमारी द्रव्य की थैली मे अनेक छेद हो गये।

दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि हमारे दिल मे अपने समाज के सम्बन्ध मे तिरस्कार उत्पन्न हुआ इसी के परिणाम–स्वरूप हम समाज की सहायता की अपेक्षा पेसे की सहायता से सभी काम चलाने की सुविधा खोजने लगे ओर दिन–दिन समाज मे रहने वाले लोगो का परस्पर सम्बन्ध टूटता गया।

तीसरा परिवर्तन यह हुआ कि पढा–लिखा मनुष्य अपनी साहित्य सम्बन्धी भूख ओर प्यास को अग्रेजी साहित्य के द्वारा ही मिटाने लगा। इससे निज भाषा का साहित्य ताक मे रखा रह गया। जहा इसका अध्ययन भी न हो वहा उसमे वृद्धि तो हो ही केसे सकती है ?

चौथा परिवर्तन यह हुआ कि हम अग्रेजी पढने वाले मनुष्यो को ही श्रेष्ठ समझ कर उन्ही से वाही-वाही लेने को आतुर हो उठे और अपने लेख अग्रेजी मे ही लिखने लगे। हिन्दुस्तान के शिक्षित समुदाय ने सस्कृत और देशी भाषा की पुस्तको का अग्रजी मे अनुवाद करके अग्रेजी भाषा के घर मे थोडी गुलामी नही की। हिन्दुस्तान को जीतने वाली जाति को हमारा दिया हुआ यह कर भारी है।

हमने अपनी राजनैतिक हलचल भी अग्रेजी भाषा ही मे चलाई, जिससे राज्यकर्त्ता को उत्तम शिक्षा और राज्य कार्य-सचालन-दक्षता भी प्राप्त हुई। उस परिणाम मे हम लोगो को स्वराज्य की कुछ भी शिक्षा नही मिली।

अग्रेजी जानने वालो की एक न्यारी ही जाति हो गई है। वे अग्रेजी न जानने वाले राष्ट्र के साथ समभाव नही रखते, उनके विचारो को समझ नही सकते और उनके प्रति कुछ तुच्छ भाव रखना सीखते हैं।

अग्रेजी शिक्षा के द्वारा प्राप्त किया हुआ ज्ञान वन्ध्य साबित होता है। वह न तो देशी भाषा द्वारा दिया जा सकता है। न जीवन मे अच्छी तरह उतर ही सकता है। हमारे पुराने सस्कारो के साथ उसका मेल नही बैठता और इसलिये पुराने सब मिटा कर उस जगह पाश्चात्य सृष्टि की एक नकल खडी कर देने का वह प्रयत्न करता है। दो ही पीढियो के भीतर, सारे राष्ट्र को सस्कृति की दृष्टि से दिवालिया और भिखारी बना देने का सामर्थ्य इस शिक्षा ने प्रकट किया है।

अग्रेजी शिक्षा से जीवन मे स्वच्छन्दता का तत्व इतना घुस गया है कि समाज मे से विवेक और कला दोनो लुप्त हो गई हैं। मानसिक और नैतिक दुर्बलता पर मनुष्य को जो लज्जा मालूम होनी चाहिये वह भी जाती रही ओर ज्यो ज्यो स्वच्छन्दता प्रबल होती जाती है त्यो-त्यो नैतिक आदर्श को नीचे [illegible] की ओर पढे-लिखे मनुष्यो का झुकाव दिखाई देता है। हमने अग्रेजी शिक्षा के द्वारा भौतिक शास्त्रो मे कोई भारी वृद्धि नही की। इस भारी सस्कारी [illegible] परिणाम मे हमने ऐसा भारी साहित्य भी उत्पन्न नही किया जिससे

जितना ही द्वेष करते हो परन्तु अपने आचरण के द्वारा वे अग्रेजी राज्य को सहारा ही देते हैं। स्वराज्य की हलचल मे जिन तीक्ष्ण उपायो का अवलम्बन करना जरूरी है ओर राष्ट्रीय दृष्टि मे जो परिवर्तन करना उचित हे उसमे ये अग्रेजी पढे मनुष्य ही विघ्नरूप हो जाते हे। पानी के बाहर जो दशा मछली की होती है वही दशा इन लोगो की अग्रेजी शिक्षा के वातावरण बिना हो जाती है।

अग्रेजी शिक्षा ही के कारण हिन्दुस्तान का राज्य स्वतत्र अग्रेजी भाषा मे चल सकता हे ओर उससे प्रजा पर अधिक अत्यचार होता है और प्रजा को भी यह चुपचाप सहन करना पडता हे।

अमेरिका का कोई भी मनुष्य जब अपने कुटुम्ब का इतिहास लिखने लगता हे तो उसे अपने कुटुम्ब का मूल पुरुष यूरोप मे खोजना पडता हे। हमारे अग्रेजी पढे मनुष्य भी जब कभी किसी विषय पर विचार अथवा विवेचन करते हैं, तब उन्हे सर्वदा यूरोप की परम्परा वहा के अनुभव और वहा की दलीलो को बतोर प्रमाण लेने की आदत पडी होती हे। इसका अर्थ यह हुआ कि हम अपनी विरासत को छोडकर दूसरे की विरासत पर प्रतिष्ठित होना चाहते हैं। यह भी वर्ण–सकरता के समान भारी सकट है।

इतनी सब हानि होते हुए भी हम अग्रेजी पढते हैं। किस लाभ से? इतने ही के लिये कि कुछ कमाई अधिक हो ओर राजदरबार मे अधिक अप्रतिष्ठा न सहना पडे। परन्तु यह कमाई परदेशी चीजो का व्यापार करके अथवा विदेशी सरकार को अत्याचार करने मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से सहायता प्राप्त करके प्राप्त करनी होती हे ओर जिस तरह कोई मजदूर कलेक्टर साहब का चपरासी हो जाने पर अपनी ही जाति का तिरस्कार करने मे अपने को कृतार्थ समझता हे वेसे ही कुछ–कुछ अग्रेजी पढे मनुष्य भी अपने अग्रेजी ज्ञान से फूलेखा बन कर अपने ही समाज के साथ तुच्छता का वर्त्ताव रखते हैं। अच्छे सस्कारी मनुष्यो मे ऐसे दोष कम पाये जाते हैं और उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा के कारण वे दोष ढक भी जाते हैं परन्तु इस परिस्थिति क कारण देश का अपार तेजोवध होता हे।

साराश मे कह तो अग्रेजी शिक्षा को लेकर हम अपनी सस्कृति गवा वठ समाधान गवा दिया समाज की एकता भग कर दी स्वदश का धन विदश मे भेज दिया हीन वन कर दूसरा की तरह की गुलामी की और स्वराज्य क मार्ग म एक महाविघ्न–रूप हा गय। ये सभी दाष दीपक के

समान स्पष्ट होने पर भी हम उन्हे नही देख सकते। यह भी इसी शिक्षा का प्रभाव है। हिन्दुस्तान की बर्बादी के दूसरे सब कारणो को लोग सरलता से स्वीकार कर लेते है किन्तु अग्रेजी शिक्षा भी हमारे सर्वनाश होने का एक बडा कारण है ऐसा कहते ही कितने ही मनुष्य अपना विरोध प्रकट करेगे। क्योकि दूसरे कारणो का बुरा असर तो अपनी पोशाक पर, अपनी जेब पर, अपनी कुटुम्ब व्यवस्था पर या अपनी तन्दुरुस्ती पर हुआ होगा, परन्तु अग्रेजी शिक्षा का प्रभाव तो हमारे मस्तिष्क और हृदय ही के ऊपर पडा है।

यहा हमारे कहने का आशय यह नही है कि हिन्दुस्तान मे कोई भी मनुष्य कभी अग्रेजी पढे ही नही, किन्तु हा, शिक्षा मे अग्रेजी को स्थान नही दिया जा सकता। शिक्षा से सस्कार पूरे हो जाने पर फिर जिसे अग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना हो वह बेखटके प्राप्त करे। वह उसमे से बहुत लाभ प्राप्त कर सकेगा।

यदि शिक्षा मे अग्रेजी को स्थान देना ही हो तो देर मे देर करके दिया जावे उतना ही ठीक है। क्योकि स्वदेशी, स्वकर्म, स्वधर्म, स्वभाषा और स्वराज्य के सस्कार दृढ हो जाने के बाद ही कोई अग्रेजी साहित्य का अभ्यास करे तो उसमे बहुत लाभ उठा सकता है और स्वदेश तथा इगलैण्ड को भी बहुत बडा लाभ पहुचा सकता है। आजकल अग्रेजी शिक्षा के बदौलत जो हमारी राष्ट्रीय हानि होती जा रही है, उसे तो अति–शीघ्र रोक देने की आवश्यकता है।

यदि कोई साधु भी अपनी सस्कृति का अपने सिद्धान्तो का और अपने साहित्य का अध्ययन करके, धार्मिक तत्त्व के प्रचार की दृष्टि से अग्रेजीभाषा सीखे तो मुझे कोई विरोध नहीं है लेकिन अग्रेजी शिक्षा के लिये अपने धर्म की उपेक्षा करने और केवल अग्रेजी बोल कर 'जेण्टिलमैन' बनने की धुन मे रहने का मैं अवश्य विरोध करता हू।

जो लोग कहते हैं कि मैं अग्रेजी भाषा का विरोधी हू, वे गलती पर हैं। मेरे विषय मे यदि भ्रम फैल गया हो, तो उसका निवारण हो जाना चाहिये। मैंने अपने विचार स्पष्ट रूप से प्रकट कर दिये हैं।

+ समाप्त +